एम.ए. पूर्वार्द्ध
इतिहास, चतुर्थ प्रश्नपत्र

भारत का आर्थिक इतिहास (1200-1750 AD)

[ECONOMIC HISTORY OF INDIA (1200-1750 AD)]

मध्यप्रदेश भोज (मुक्त) विश्वविद्यालय – भोपाल
MADHYA PRADESH BHOJ (OPEN) UNIVERSITY - BHOPAL

Reviewer Committee

1. Dr. Manisha Sharma
   Associate Professor
   Govt. PG College, Beena (M.P.)
2. Dr. Amita Singh
   Professor
   Govt. MLB College, Bhopal (M.P.)
3. Dr. Mamta Chansoria
   Professor
   Govt. MLB College, Bhopal (M.P.)

Advisory Committee

1. Dr. Jayant Sonwalkar
   Hon'ble Vice Chancellor
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal (M.P.)
2. Dr. L.S. Solanki
   Registrar
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal (M.P.)
3. Dr L.P. Jharia
   Director DME
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal (M.P.)
4. Dr. Manisha Sharma
   Associate Professor
   Govt. PG College, Beena (M.P.)
5. Dr. Amita Singh
   Professor
   Govt. MLB College, Bhopal (M.P.)
6. Dr. Mamta Chansoria
   Professor
   Govt. MLB College, Bhopal (M.P.)

COURSE WRITER

Mrs. Deepika Jain, Assistant Professor, Department of History, Govt. College Umariya Pan, Katni (M.P)
Units: (1-5)

Copyright © Reserved, Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal

All rights reserved. No part of this publication which is material protected by this copyright notice may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form or by any means now known or hereinafter invented, electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information storage or retrieval system, without prior written permission from the Registrar, Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal.

Information contained in this book has been published by VIKAS® Publishing House Pvt. Ltd. and has been obtained by its Authors from sources believed to be reliable and are correct to the best of their knowledge. However, the Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal, Publisher and its Authors shall in no event be liable for any errors, omissions or damages arising out of use of this information and specifically disclaim any implied warranties or merchantability or fitness for any particular use.

Published by Registrar, MP Bhoj (Open) University, Bhopal in 2020

Vikas® is the registered trademark of Vikas® Publishing House Pvt. Ltd.

VIKAS® PUBLISHING HOUSE PVT. LTD.
E-28, Sector-8, Noida - 201301 (UP)
Phone: 0120-4078900 • Fax: 0120-4078999
Regd. Office: A-27, 2nd Floor, Mohan Co-operative Industrial Estate, New Delhi 1100 44
• Website: www.vikaspublishing.com • Email: helpline@vikaspublishing.com

SYLLABI-BOOK MAPPING TABLE

भारत का आर्थिक इतिहास (1200-1750 AD)

Syllabi	Mapping in Book
इकाई–1 मध्यकालीन आर्थिक इतिहास के स्रोत; अभिलेख – धर्मशास्त्र और टीकाएं – स्मारक और स्थापत्य – तारीख–ए–फिरोजशाही – फतवा–ए–जहांदारी – बाबरनामा – अकबरनामा – आइन–ए–अकबरी – मुन्तखब–उत तवारीख – तुजुक–ए–जहांदारी– मुन्तखब–उल–लुबाब – बर्नियर का यात्रा विवरण – पेशवा दफ्तर का संकलन – राजस्थानी रुयात – परगना–री–विगत; इतिहास लेखन– विभिन्न उपागम – साम्राज्यवादी उपागम (दृष्टिकोण) – राष्ट्रवादी उपागम (दृष्टिकोण) – मार्क्सवादी उपागम (दृष्टिकोण); मध्यकालीन भारत में राज्य की प्रकृति, राजत्व का सिद्धांत, वैधता की समस्या, दबाव समूह, राज्य और क्षेत्रीय अस्मिता तथा भारतीय मूल के सिद्धांतों का उद्‌भव; सल्तनत कालीन राज्य की प्रकृति – सल्तनत कालीन राजत्व का सिद्धांत – सल्तनत कालीन राज्य की वैधता की समस्या – सल्तनत कालीन राज्य को प्रभावित करने वाले दबाव समूह – राज्य और क्षेत्रीय अस्मिता तथा भारतीय मूल के सिद्धांतों का उद्‌भव	**इकाई 1** : इतिहास लेखन के स्रोत एवं राज्य **(पृष्ठ 3–45)**
इकाई–2 मध्यकाल (सल्तनतकाल) में संस्थागत संरचना और शासन व्यवस्था का विकास; इक्ता व्यवस्था – अमरम व्यवस्था – मनसब – जागीर – मुगलकालीन शासन व्यवस्था – केंद्रीय प्रशासन– मुगल सम्राट – प्रांतीय शासन प्रबंध – ग्राम प्रशासन; शासक वर्ग– उद्‌भव, गठन, आव्रजन, स्थानीय समझौते और संघर्ष – मध्यकालीन भारत में शासक वर्ग का उद्‌भव – सत्ता वर्ग का गठन व विकास – आव्रजन – स्थानीय समझौते एवं संघर्ष; क्रमबद्ध संकट एवं विघटन : शाही व्यवस्था में अन्तर्निहित तनाव एवं संघर्ष, प्रतिरोध का स्वरूप, साम्राज्यों का पतन, क्षेत्रीय राज्यों का उदय, राज्य निर्माण प्रणाली; क्रमबद्ध संकट एवं विघटन : शाही व्यवस्था में अंतर्निहित तनाव एवं संघर्ष (दिल्ली सल्तनत एवं मुगल साम्राज्य) – प्रतिरोध का स्वरूप : दिल्ली सल्तनत एवं मुगल साम्राज्य – साम्राज्यों का पतन : दिल्ली सल्तनत एवं मुगल साम्राज्य – क्षेत्रीय राज्यों का उद्‌भव : दिल्ली सल्तनत एवं मुगल साम्राज्य – राज्य निर्माण प्रणाली : दिल्ली सल्तनत एवं मुगल साम्राज्य	**इकाई 2** : शासन व्यवस्था का ढांचा, शासकीय प्रणाली का विकास एवं पतन **(पृष्ठ 47–104)**
इकाई–3 कृषि अर्थव्यवस्था एवं राज्य : भूमि पर अधिकार और उत्पादन से संबंध; सल्तनत काल में सिंचाई के कृत्रिम साधन – दिल्ली सुल्तानों की कृषि नीति – भूमि के प्रकार एवं भू–राजस्व व्यवस्था – उत्पादन पर राज्य का हिस्सा – कृषि उत्पादन संबंधी वर्ग एवं भूमि से संबंध – ग्राम समुदाय के वर्ग; संसाधनों के आधार, कृषि उत्पादन में उपयोग होने वाले संसाधन, करों का स्वरूप और कृषि संबंध – कृषि संसाधन – मुगल साम्राज्य की आय और उसके साधन – भूमि के प्रकार – कर निर्धारण पद्धति – भूमिकर संबंधी व्यवस्था एवं सुधार – सिंचाई के साधन	**इकाई 3** : कृषि अर्थव्यवस्था एवं राज्य **(पृष्ठ 105–134)**

इकाई–4

व्यापार एवं वाणिज्य : सल्तनत एवं मुगल काल में व्यापार का विस्तार; मध्यकालीन भारत में व्यापार की संरचना एवं विस्तार – जलमार्गों तथा स्थल मार्गों द्वारा व्यापार – अरब एवं यूरोपीय व्यापारियों की भूमिका; भारतीय व्यापारी एवं उनका वाणिज्यिक व्यवहार, विनिमय का माध्यम, मुद्रा, सिक्के एवं बैंकिंग; भारतीय व्यापार एवं वाणिज्य – विनिमय के साधन (माध्यम) – मुद्रा प्रणाली – सिक्के – मध्यकालीन बैंकिंग प्रणाली; नगरों तथा कस्बों का विकास– प्रकृति तथा वर्गीकरण, जनांकिकी परिवर्तन, प्रशासन, शहरी समुदाय तथा नगरों की संरचना; मध्यकालीन भारत में नगरों एवं कस्बों का विकास : प्रकृति तथा वर्गीकरण – मध्यकालीन भारत में जनांकिकी परिवर्तन – प्रशासन : दिल्ली सल्तनत एवं मुगल काल के अंतर्गत प्रशासन – समुदाय – नगरों की संरचना

इकाई 4 : व्यापार और मौद्रिक प्रणाली : शहर और कस्बों का विकास
(पृष्ठ 135–170)

इकाई–5

मध्यकालीन उद्योग और उत्पादन तकनीक; मध्यकालीन वस्त्र उद्योग – कृषि उद्योग – धातु–कर्म तकनीकी – दस्तकारी – मध्य काल में व्यापारिक समूह और उत्पादन में उनकी भूमिका; अठारहवीं शताब्दी की व्याख्या; अठारहवीं शताब्दी का सामान्य चित्रण – अठारहवीं शताब्दी में सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक स्थिति – अठारहवीं शताब्दी के चित्रण के कारण और परिणाम

इकाई 5 : उद्योग और उत्पादन तकनीक एवं अठारहवीं शताब्दी
(पृष्ठ 171–192)

विषय–सूची

परिचय **1–2**

इकाई 1 इतिहास लेखन के स्रोत एवं राज्य **3–45**

1.0 परिचय
1.1 उद्देश्य
1.2 मध्यकालीन आर्थिक इतिहास के स्रोत
- 1.2.1 अभिलेख
- 1.2.2 धर्मशास्त्र और टीकाएं
- 1.2.3 स्मारक और स्थापत्य
- 1.2.4 तारीख–ए–फिरोजशाही
- 1.2.5 फतवा–ए–जहांदारी
- 1.2.6 बाबरनामा
- 1.2.7 अकबरनामा
- 1.2.8 आइन–ए–अकबरी
- 1.2.9 मुन्तखब–उत तवारीख
- 1.2.10 तुजुक–ए–जहांगीरी
- 1.2.11 मुन्तखब–उल–लुबाब
- 1.2.12 बर्नियर का यात्रा विवरण
- 1.2.13 पेशवा दफ्तर का संकलन
- 1.2.14 राजस्थानी रुयात
- 1.2.15 परगना–री–विगत

1.3 इतिहास लेखन– विभिन्न उपागम
- 1.3.1 साम्राज्यवादी उपागम (दृष्टिकोण)
- 1.3.2 राष्ट्रवादी उपागम (दृष्टिकोण)
- 1.3.3 मार्क्सवादी उपागम (दृष्टिकोण)

1.4 मध्यकालीन भारत में राज्य की प्रकृति, राजत्व का सिद्धांत, वैधता की समस्या, दबाव समूह, राज्य और क्षेत्रीय अस्मिता तथा भारतीय मूल के सिद्धांतों का उद्‌भव
- 1.4.1 सल्तनत कालीन राज्य की प्रकृति
- 1.4.2 सल्तनत कालीन राजत्व का सिद्धांत
- 1.4.3 सल्तनत कालीन राज्य की वैधता की समस्या
- 1.4.4 सल्तनत कालीन राज्य को प्रभावित करने वाले दबाव समूह
- 1.4.5 राज्य और क्षेत्रीय अस्मिता तथा भारतीय मूल के सिद्धांतों का उद्‌भव

1.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
1.6 सारांश
1.7 मुख्य शब्दावली
1.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
1.9 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 2 शासन व्यवस्था का ढांचा, शासकीय प्रणाली का विकास एवं पतन **47–104**

2.0 परिचय
2.1 उद्देश्य

2.2 मध्यकाल (सल्तनतकाल) में संस्थागत संरचना और शासन व्यवस्था का विकास
2.2.1 इक्ता व्यवस्था
2.2.2 अमरम व्यवस्था
2.2.3 मनसब
2.2.4 जागीर
2.2.5 मुगलकालीन शासन व्यवस्था
2.2.6 केंद्रीय प्रशासन– मुगल सम्राट
2.2.7 प्रांतीय शासन प्रबंध
2.2.8 ग्राम प्रशासन
2.3 शासक वर्ग– उद्‌भव, गठन, आव्रजन, स्थानीय समझौते और संघर्ष
2.3.1 मध्यकालीन भारत में शासक वर्ग का उद्‌भव
2.3.2 सत्ता वर्ग का गठन व विकास
2.3.3 आव्रजन
2.3.4 स्थानीय समझौते एवं संघर्ष
2.4 क्रमबद्ध संकट एवं विघटन : शाही व्यवस्था में अन्तर्निहित तनाव एवं संघर्ष, प्रतिरोध का स्वरूप, साम्राज्यों का पतन, क्षेत्रीय राज्यों का उदय, राज्य निर्माण प्रणाली
2.4.1 क्रमबद्ध संकट एवं विघटन : शाही व्यवस्था में अंतर्निहित तनाव एवं संघर्ष (दिल्ली सल्तनत एवं मुगल साम्राज्य)
2.4.2 प्रतिरोध का स्वरूप : दिल्ली सल्तनत एवं मुगल साम्राज्य
2.4.3 साम्राज्यों का पतन : दिल्ली सल्तनत एवं मुगल साम्राज्य
2.4.4 क्षेत्रीय राज्यों का उद्‌भव : दिल्ली सल्तनत एवं मुगल साम्राज्य
2.4.5 राज्य निर्माण प्रणाली : दिल्ली सल्तनत एवं मुगल साम्राज्य
2.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
2.6 सारांश
2.7 मुख्य शब्दावली
2.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
2.9 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 3 कृषि अर्थव्यवस्था एवं राज्य **105–134**

3.0 परिचय
3.1 उद्देश्य
3.2 कृषि अर्थव्यवस्था एवं राज्य : भूमि पर अधिकार और उत्पादन से संबंध
3.2.1 सल्तनत काल में सिंचाई के कृत्रिम साधन
3.2.2 दिल्ली सुल्तानों की कृषि नीति
3.2.3 भूमि के प्रकार एवं भू–राजस्व व्यवस्था
3.2.4 उत्पादन पर राज्य का हिस्सा
3.2.5 कृषि उत्पादन संबंधी वर्ग एवं भूमि से संबंध
3.2.6 ग्राम समुदाय के वर्ग
3.3 संसाधनों के आधार, कृषि उत्पादन में उपयोग होने वाले संसाधन, करों का स्वरूप और कृषि संबंध
3.3.1 कृषि संसाधन
3.3.2 मुगल साम्राज्य की आय और उसके साधन
3.3.3 भूमि के प्रकार
3.3.4 कर निर्धारण पद्धति
3.3.5 भूमिकर संबंधी व्यवस्था एवं सुधार
3.3.6 सिंचाई के साधन
3.4 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
3.5 सारांश
3.6 मुख्य शब्दावली

3.7 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
3.8 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 4 व्यापार और मौद्रिक प्रणाली : शहर और कस्बों का विकास 135–170

4.0 परिचय
4.1 उद्देश्य
4.2 व्यापार एवं वाणिज्य : सल्तनत एवं मुगल काल में व्यापार का विस्तार
4.2.1 मध्यकालीन भारत में व्यापार की संरचना एवं विस्तार
4.2.2 जलमार्गों तथा स्थल मार्गों द्वारा व्यापार
4.2.3 अरब एवं यूरोपीय व्यापारियों की भूमिका
4.3 भारतीय व्यापारी एवं उनका वाणिज्यिक व्यवहार, विनिमय का माध्यम, मुद्रा, सिक्के एवं बैंकिंग
4.3.1 भारतीय व्यापार एवं वाणिज्य
4.3.2 विनिमय के साधन (माध्यम)
4.3.3 मुद्रा प्रणाली
4.3.4 सिक्के
4.3.5 मध्यकालीन बैंकिंग प्रणाली
4.4 नगरों तथा कस्बों का विकास– प्रकृति तथा वर्गीकरण, जनांकिकी परिवर्तन, प्रशासन, शहरी समुदाय तथा नगरों की संरचना
4.4.1 मध्यकालीन भारत में नगरों एवं कस्बों का विकास : प्रकृति तथा वर्गीकरण
4.4.2 मध्यकालीन भारत में जनांकिकी परिवर्तन
4.4.3 प्रशासन : दिल्ली सल्तनत एवं मुगल काल के अंतर्गत प्रशासन
4.4.4 समुदाय
4.4.5 नगरों की संरचना
4.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
4.6 सारांश
4.7 मुख्य शब्दावली
4.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
4.9 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 5 उद्योग और उत्पादन तकनीक एवं अठारहवीं शताब्दी 171–192

5.0 परिचय
5.1 उद्देश्य
5.2 मध्यकालीन उद्योग और उत्पादन तकनीक
5.2.1 मध्यकालीन वस्त्र उद्योग
5.2.2 कृषि उद्योग
5.2.3 धातु–कर्म तकनीकी
5.2.4 दस्तकारी
5.2.5 मध्य काल में व्यापारिक समूह और उत्पादन में उनकी भूमिका
5.3 अठारहवीं शताब्दी की व्याख्या
5.3.1 अठारहवीं शताब्दी का सामान्य चित्रण
5.3.2 अठारहवीं शताब्दी में सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक स्थिति
5.3.3 अठारहवीं शताब्दी के चित्रण के कारण और परिणाम
5.4 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
5.5 सारांश
5.6 मुख्य शब्दावली
5.7 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
5.8 सहायक पाठ्य सामग्री

परिचय

टिप्पणी

प्रस्तुत पुस्तक 'भारत का आर्थिक इतिहास (1200–1750 AD)' विश्वविद्यालय द्वारा निर्धारित एम.ए. पूर्वार्द्ध (इतिहास) प्रथम वर्ष के पाठ्यक्रम के अनुरूप लिखी गई है। देश के विभिन्न क्षेत्रों में होने वाली आर्थिक गतिविधियों का अध्ययन अर्थव्यवस्था के अंतर्गत किया जाता है। वास्तव में अर्थव्यवस्था एक ऐसा ढांचा है जिसके अंतर्गत देश की आर्थिक क्रियाओं का संचालन किया जाता है। इसमें सभी क्षेत्रों द्वारा वस्तुओं एवं सेवाओं का उत्पादन करना, देश के लोगों द्वारा इनका उपभोग करना, लोगों को रोजगार प्रदान करना, निर्यात करना आदि को सम्मिलित किया जाता है।

अर्थव्यवस्था के विकास की प्रक्रिया निरंतर जारी रहती है और तभी समाज और देश प्रगतिशील रहता है और विकास की नयी ऊंचाइयों का स्पर्श करता है। भारतीय अर्थव्यवस्था अपने विकास क्रम में प्राचीन काल से लेकर अब तक विभिन्न रूपों और चरणों में विकसित होती आई है। प्रत्येक काल में सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक परिस्थितियां बदलती गईं, तद्नुसार अर्थव्यवस्था का स्वरूप भी परिवर्तित होता गया।

प्रस्तुत पुस्तक में भारत के आर्थिक विकास के विभिन्न पक्षों का सांगोपांग विवेचन किया गया है। प्रत्येक इकाई के प्रारंभ में विषय का विश्लेषण करने से पहले उसके निहित उद्देश्यों को स्पष्ट कर दिया गया है। इकाई के बीच–बीच में 'अपनी प्रगति जांचिए' के माध्यम से विद्यार्थियों की योग्यता को परखने के लिए प्रश्न दिए गए हैं। पाठ्य सामग्री तैयार करते समय विषय में विद्यार्थियों की रुचि जगाने तथा रोचकता लाने का भरपूर प्रयास किया गया है। अध्ययन की सुविधा के लिए संपूर्ण पुस्तक में पांच इकाइयों को समायोजित किया गया है, जिनका विवरण इस प्रकार है–

पहली इकाई मध्यकालीन भारत के आर्थिक इतिहास के स्रोत एवं इतिहास लेखन पर आधारित है। इसमें इतिहास के स्रोतों, लेखन, उपागमों, राज्यों की स्थिति आदि की विवेचना की गई है।

दूसरी इकाई शासन व्यवस्था, शासक वर्ग एवं विघटन पर आधारित है। इसमें मध्यकालीन शासन व्यवस्था, शासक वर्ग के उदय व साम्राज्य में संकट और विघटन की प्रक्रिया पर प्रकाश डाला गया है।

तीसरी इकाई में मध्यकालीन भारत की कृषि अर्थव्यवस्था, राज्य एवं कृषि उत्पादन में इस्तेमाल होने वाले संसाधनों का वर्णन किया गया है। साथ ही करों के स्वरूप एवं कृषि संबंधों का विश्लेषण किया गया है।

चौथी इकाई में मध्ययुगीन भारत में व्यापार वाणिज्य और मौद्रिक प्रणाली के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है। साथ ही शहर और कस्बों के विकास का भी वर्णन किया गया है।

पांचवीं इकाई मध्यकालीन उद्योग और उत्पादन तकनीक पर आधारित है। इसमें वस्त्र उद्योग, कृषि उद्योग, धातुकर्म तकनीक, दस्तकारी आदि उद्योगों का अध्ययन किया गया है। साथ ही 18वीं शताब्दी की भी विस्तार से व्याख्या की गई है।

प्रस्तुत पुस्तक में भारत के आर्थिक इतिहास को सरल भाषा में रुचिकर ढंग से प्रस्तुत किया गया है। हमें पूर्ण विश्वास है कि यह पुस्तक पाठकों की जिज्ञासा को शांत कर, भारत के आर्थिक इतिहास की प्रकृति को समझने में सहायक सिद्ध होगी।

टिप्पणी

इकाई 1 इतिहास लेखन के स्रोत एवं राज्य

संरचना

टिप्पणी

1.0 परिचय
1.1 उद्देश्य
1.2 मध्यकालीन आर्थिक इतिहास के स्रोत
1.2.1 अभिलेख
1.2.2 धर्मशास्त्र और टीकाएं
1.2.3 स्मारक और स्थापत्य
1.2.4 तारीख–ए–फिरोजशाही
1.2.5 फतवा–ए–जहांदारी
1.2.6 बाबरनामा
1.2.7 अकबरनामा
1.2.8 आइन–ए–अकबरी
1.2.9 मुन्तखब–उत तवारीख
1.2.10 तुजुक–ए–जहांगीरी
1.2.11 मुन्तखब–उल–लुबाब
1.2.12 बर्नियर का यात्रा विवरण
1.2.13 पेशवा दफ्तर का संकलन
1.2.14 राजस्थानी रुयात
1.2.15 परगना–री–विगत
1.3 इतिहास लेखन– विभिन्न उपागम
1.3.1 साम्राज्यवादी उपागम (दृष्टिकोण)
1.3.2 राष्ट्रवादी उपागम (दृष्टिकोण)
1.3.3 मार्क्सवादी उपागम (दृष्टिकोण)
1.4 मध्यकालीन भारत में राज्य की प्रकृति, राजत्व का सिद्धांत, वैधता की समस्या, दबाव समूह, राज्य और क्षेत्रीय अस्मिता तथा भारतीय मूल के सिद्धांतों का उद्भव
1.4.1 सल्तनत कालीन राज्य की प्रकृति
1.4.2 सल्तनत कालीन राजत्व का सिद्धांत
1.4.3 सल्तनत कालीन राज्य की वैधता की समस्या
1.4.4 सल्तनत कालीन राज्य को प्रभावित करने वाले दबाव समूह
1.4.5 राज्य और क्षेत्रीय अस्मिता तथा भारतीय मूल के सिद्धांतों का उद्भव
1.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
1.6 सारांश
1.7 मुख्य शब्दावली
1.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
1.9 सहायक पाठ्य सामग्री

1.0 परिचय

मध्यकालीन भारत का इतिहास विदेशी आक्रमण और उनकी शासन सत्ता स्थापित होने का इतिहास है, अरबों, इरानियों तथा तुर्कों के आक्रमण के परिणामस्वरूप साहित्य के क्षेत्र में विदेशी साहित्य और साहित्यकारों का प्रभाव बढ़ने लगा। मध्यकालीन साहित्य स्रोत तथा अरबी दार्शनिक विचारकों के विवरण से हमें तत्कालीन भारत के आर्थिक इतिहास की विस्तृत जानकारी मिलती है।

टिप्पणी

मध्यकालीन भारत के आर्थिक इतिहास लेखन के विभिन्न पक्षों ने अपने तर्क प्रस्तुत किये हैं। राष्ट्रवादी इतिहास लेखन, मार्क्सवादी इतिहास लेखन, साम्राज्यवादी इतिहास लेखन के विचारकों ने अपनी–अपनी विचारधारा से प्रभावित होकर मध्यकालीन आर्थिक इतिहास का अध्ययन किया है।

अर्थव्यवस्था किसी भी शासन तंत्र का आधार स्तंभ होता है। आर्थिक स्थिति जितनी सुदृढ़ होगी शासन व्यवस्था उतनी मजबूत होगी। प्राचीनकालीन अर्थव्यवस्था मुस्लिमों के आगमन से पतनोन्मुख थी। वही मुगलों की लंबी शासन व्यवस्था ने मध्यकालीन आर्थिक व्यवस्था को मजबूती प्रदान की।

प्रस्तुत इकाई में हम सल्तनतकालीन एवं मुगलकालीन अर्थव्यवस्था संबंधी स्रोतों की जानकारी का अध्ययन करेंगे।

1.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- मध्यकालीन इतिहास के आर्थिक स्रोतों की जानकारी प्राप्त कर पाएंगे;
- मध्यकालीन आर्थिक इतिहास के बारे में जान पाएंगे;
- मध्यकालीन पुरातात्विक, साहित्य स्रोत एवं विदेशी यात्रियों के विवरण की जानकारी प्राप्त कर पाएंगे;
- आर्थिक इतिहास के बारे में जान पाएंगे;
- मध्यकाल के आर्थिक महत्व को समझ पाएंगे;
- इतिहास लेखन के प्रति जागरुकता उत्पन्न कर पाएंगे;
- इतिहास लेखन के विभिन्न पहलुओं को समझ पाएंगे;
- साम्राज्यवादी, मार्क्सवादी एवं राष्ट्रवादी उपागम के अनुप्रयोग को समझ पाएंगे;
- मध्यकालीन लेखकों से परिचित हो पाएंगे;
- इतिहास लेखन के विभिन्न उपागमों के मध्य अंतर को समझ पाएंगे;
- दिल्ली सल्तनत के 'राजत्व सिद्धांत से अवगत हो पाएंगे;
- मुगलकाल के स्वरूप एवं राजत्व सिद्धांत को समझ पाएंगे;
- राज्य के नीति निर्धारण को प्रभावित करने वाले दबाव समूह की गतिविधियों का विश्लेषण कर पाएंगे।

1.2 मध्यकालीन आर्थिक इतिहास के स्रोत

मध्यकालीन युग दो विपरीत संस्कृतियों का युग था, एक तरफ अपनी सभ्यता संस्कृति की रक्षा करता हुआ पराधीन समाज, तो दूसरी तरफ अपनी सभ्यता संस्कृति को नये वातावरण में स्थापित करता हुआ विजेताओं का उन्माद भरा उल्लास था। इसी वातावरण में लेखन की एक नई परंपरा की शुरुआत हुई जिसकी जानकारी के लिए

अभिलेखों, सिक्कों, स्मारकों, धार्मिक साहित्य, धर्मेतर साहित्य, विदेशी यात्रियों के विवरण के आधार पर इतिहासकारों ने प्रामाणिक आर्थिक इतिहास लिखा है।

टिप्पणी

मुसलमानों के भारत आगमन से फारसी भाषा में इतिहास लेखन की परंपरा की शुरुआत हुई। उन्होंने ऐतिहासिक ग्रंथों के साथ–साथ अर्थव्यवस्था के संबंध में अपने विचार व्यक्त किये। परंतु यह इतिहास राजाओं एवं दरबारों से जुड़े हुए थे, इसलिए इन्होंने अपनी कृतियों में अपने संरक्षक का गुणगान किया। इस समय के इतिहासकारों ने अवश्य ही दरबारी इतिहास लिखा है। उनका साहित्य तत्कालीन परिस्थितियों का वर्णन करता है जो राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक पृष्ठभूमि की संकल्पनाओं को समझने में मदद करता है, इसके अलावा, इस काल की आर्थिक व्यवस्था की जानकारी हमें हिंदी, संस्कृत, भाषा साहित्य से मिलती है। विदेशी यात्रियों के विवरण से भी हमें आर्थिक जानकारी मिलती है।

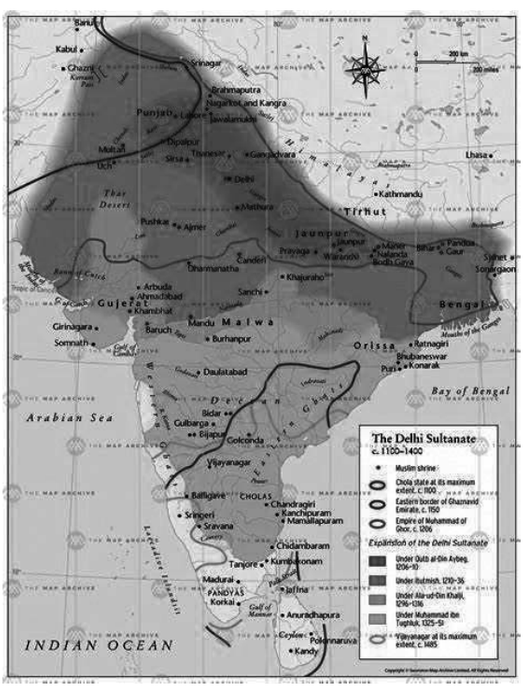

1.2.1 अभिलेख

प्राचीन काल में इतिहास के जानने के साधनों में अभिलेख महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते हैं, परंतु मध्यकाल तक आते–आते यह परंपरा कमजोर हो गई। अभिलेखों के बहुत से प्रकार मिलते हैं। जैसे– स्तंभलेख, शिलालेख, गुहालेख, ताम्र पत्र लेख, मुद्रा अभिलेख, मूर्ति अभिलेख आदि।

अभिलेखों से तत्कालीन राजाओं के प्रशासन एवं आर्थिक गतिविधियों की जानकारी मिलती है। इस काल के अभिलेख मकबरों, मस्जिदों, कब्रों, इबादतगाहों, भवनों, किलों व शिलालेखों में मिलती है। 'अढ़ाई दिन का झोपड़ा मस्जिद लेख, पृथ्वीराज चौहान का मदनपुर अभिलेख, चित्तौड़ दुर्ग का विजय स्तंभ लेख, प्रयाग प्रशस्ति में जहांगीर का लेख, अकबर का फतेहपुर सीकरी अभिलेख अजमेर के अढ़ाई दिन के झोपड़े पर कुछ पुरालेख उत्कीर्ण हैं तथा उस पर चौहान शासक विग्रहराज IV

टिप्पणी

द्वारा हरिकेली के कुछ अंश उद्धृत हैं। बलबन के समय पालम बाबली अभिलेख में दिल्ली का नाम योगिनीपुर मिलता है, अलाउद्दीन खिलजी के लेख में उसे विश्व विजेता कहा है, मोहम्मद बिन तुगलक के राजधानी परिवर्तन (1327) के समय के अभिलेख, मुगलकाल के अभिलेख, दिल्ली के किले में 'दीवान–ए–खास' की छत पर यह पंक्ति लिखी है–

"गर फिरदौस बर रूये जमी अस्त
हमीं अस्तो, हमीं अस्तो, हमीं अस्त।"

जहांगीर ने अपनी प्रेयसी अनारकली के लिए 1615 में लाहौर में कब्र बनवाई जिस पर अभिलेख लिखा "मैं अपनी प्रेयसी का चेहरा एक बार पुनः देख पाता, तो कयामत के दिन अल्लाह को धन्यवाद देता।"

मुगल काल के कुछ अभिलेख (Erigraphia Indo-moslemica 1907-1938 Inscriptions) में मिलते हैं। इसके अतिरिक्त हिंदू शासकों में विजय नगर साम्राज्य, पाल, प्रतिहार, राष्ट्रकूट, शासकों के अभिलेखों से भी महत्वपूर्ण जानकारी मिलती है। एपी ग्राफिया कर्नाटिका, एपीग्राफिया इंडिका, में भी कुछ लेख प्रकाशित हुए हैं। गुजरात के धृगंधु नामक स्थान पर गुजरात के सुल्तान अहमशाह I के काल का अभिलेख मिला है। इसमें मुस्लिम जनसंख्या की जानकारी मिलती है, वहां प्रार्थना के लिए मुर्नार शाहताई द्वारा रजब हिग्रा 840 (1337) में मस्जिद बनवाई।

इस प्रकार हमें तात्कालीन अर्थव्यवस्था को जानने में अभिलेख महत्वपूर्ण है। मुडाएं भी आर्थिक इतिहास की जानकारी की महत्वपूर्ण स्रोत है।

1.2.2 धर्मशास्त्र और टीकाएं

धर्म मनुष्य के जीवन का आवश्यक अंग है और आध्यात्मिक खोज मनुष्य की शाश्वत आकांक्षा है। यह आध्यात्मिक खोज निरंतर गतिशील रही है। प्राचीन भारत में वेदों तथा उपनिषदों में भारतीयों ने यह प्रयास किया और धर्म का रूप स्थापित किया। मध्यकाल सैनिक संघर्ष के साथ–साथ धार्मिक संघर्ष का भी काल था। जिसके कारण क्रमशः भक्ति आंदोलन और सूफी आंदोलन का उदय हुआ और उन संतों ने धार्मिक साहित्य लेखन में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया।

मुस्लिम साहित्य : सूफी आंदोलन के संतों में गेसूदराज द्वारा रचित 'मिराज–उला आशिकी' दक्खनी उर्दू की प्रारंभिक रचना है। बाबा फरीद द्वारा रचित सूफी काव्य रचना अमीर खुसरो, जायसी उनकी रचनाओं में मध्यकालीन आर्थिक जीवन की जानकारी मिलती है। इस्लाम की शासन व्यवस्था कुरान और शरिया पर आधारित थी 'अधिकतर शासक इसी के आधार पर शासन चलाते थे' तात्कालिक शासकों ने प्रजा पर कुरान के अनुसार कर लगाये– (1) खराज (भूमिकर) 1/3 की दर से (2) खम्स लूट के माल का 1/5 भाग (3) जजिया (धार्मिक कर) (4) जकात जो 2.5% मुसलमानों से लिया जाता था। इसके अतिरिक्त मुगलकाल में भी धार्मिक साहित्य आर्थिक इतिहास को जानने के महत्वपूर्ण साधन हैं।

हिंदू साहित्य– मध्यकालीन हिंदू संत कबीर, रामानुज, नानक, चैतन्य, नामदेव, तुलसीदास, मीराबाई अपने उपदेशों के माध्यम से धार्मिक साहित्य में योगदान दिया।

टिप्पणी

कबीरदास की साखी, तुलसीदास का रामचरित मानस, सूरदास का सूरसागर, रहीम के दोहे, मीरा के भजन नाभादास का भक्त माल और चौरासी वैष्णव की वार्ता, जयचंद कृत चैतन्य, मंगल, ठाकुरदास कृत चैतन्य भागवत, कृष्णदास, कविराज गोस्वामी कृत चैतन्य, सामदेव कृत रसेन्द्र चूड़ामणि, से अनेक यंत्रों के आविष्कार की जानकारी मिलती है।

इस प्रकार सुधाकर (13वीं सदी) यशोधन की कृति इसमें स्वर्ण बनाने की विधि है। विज्ञानेश्वर कृत 'मिताक्षरा' जिसमें अर्थ संबंधी जानकारी मिलती है। कल्हण की राजतंरगिणी, इस काल का महत्वपूर्ण स्रोत है। जिसे संपूर्ण ऐतिहासिक ग्रंथ का दर्जा प्राप्त है। जगनिक का आल्हाखंड, चंदबरदायी, पृथ्वीराज रासो, जगन्नाथ पंडित ने गंगाधर तथा गंगालहरी लिखा है।

इस प्रकार से तात्कालिक धार्मिक साहित्य से हमें उस समय की राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक जानकारी मिलती है और यह भी जानकारी मिलती है कि हिंदू और मुसलमानों के आपसी संबंधों में सुधार हो रहा था जो आगे भारत के नव निर्वाण में सहायक सिद्ध हुआ।

1.2.3 स्मारक और स्थापत्य

मध्यकाल में वास्तुकला पर मुसलमानों के आक्रमण का बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। भारतीय सामाजिक और धार्मिक प्रवृत्तियों की तुलना में मुस्लिम सभ्यता बहुत ही भिन्न थी जिसका प्रमाण हमें तात्कालीन स्मारक और स्थापत्य कला से मिलता है। इस प्रकार पुरातात्विक साधनों में स्मारक व स्थापत्य महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान करते हैं।

सल्तनतकालीन स्थापत्य कला : भारत में जिस समय मुसलमानों ने आक्रमण किया उससे पूर्व एशिया में एक अलग स्थापत्य शैली का विकास हुआ जो ईरान, अफगानिस्तान, मेसोपोटामिया, ट्रांस–आक्सियाना तथा अफ्रीका की विभिन्न स्थापत्य शैलियों का मिश्रण था। जिसके अंतर्गत तुर्क विजेताओं ने हिंदू तथा जैन मंदिरों की सामग्री से मस्जिदों तथा महलों का निर्माण किया। कुतुबुद्दीन ऐबक द्वारा कुरुबत उल इस्लाम मस्जिद, अजमेर में 'अढ़ाई दिन झोपड़ा' एवं कुतुबमीनार का निर्माण किया। अलाउद्दीन खिलजी, अलाई दरवाजा, मुहम्मद तुगलक द्वारा आदिल बाबा आदि स्थापत्य का निर्माण कार्य किया गया।

प्रांतीय स्थापत्य शैली में इब्राहिम शर्की अटाला मस्जिद, झंझरी मस्जिद, नुसरतशाह बाइस दरवाजा मस्जिद, हुसंगशाह हिंडोला महल, गयासुद्दीन खिलजी जहाज महल, हुसंगशाह का मकबरा, गोलकुंडा और बीजापुर के मकबरे भवन विजय नगर में हजारा मंदिर, चितौड़ का विजय स्तंभ, सोमनाथ का मंदिर आदि। सल्तनत काल की स्थापत्य शैली से उस समय के शासकों की अभिरुचि एवं आर्थिक स्थिति की जानकारी मिलती है।

मुगलकालीन स्थापत्य : मुगलकाल में स्थापत्य कला का विकास हुआ। अकबर के शासन काल तक ईरानी शैली का मुख्यतः प्रभाव रहा किंतु इसके बाद भारतीय निर्माण कला मूलतः भारतीय हो गई, मुगलकालीन निर्माण कला श्रंगार और सुंदरता के लिए प्रसिद्ध है। उनके बनवाये हुए सुंदर महल मस्जिदें आज भी उनके गौरव की कहानी कह रहे हैं। इस काल की प्रमुख इमारतों में हुमायुँ का मकबरा, हमीदाबानो, शेरशाह

टिप्पणी

का मकबरा शेरसाहसूरी, आगरा का किला, जोधाबाई का महल, बुलंद दरवाजा, पंचमहल, फतेहपुरी–सीकरी आदि है।

'फतेहपुर सीकरी' के लिए फर्ग्युसन कहता है– "महान व्यक्ति के मस्तिष्क का प्रतिबिंब है।" एतमा छदोला का मकबरा, जहांगीर का मकबरा, नूरजहां ने निर्माण करवाया। शाहजहां के समय के स्थापत्य में शीश महल, मोती मस्जिद, दीवाने आम, ताजमहल विश्व की सबसे सुंदर तथा कला के उच्चकोटि के नमूने हैं। शाहजहां का काल स्थापत्य का 'स्वर्ण काल' था। औरंगजेब के समय की बनी इमारतों में 'रबिया–उद–दौरानी', बादशाही मस्जिद, मोती मस्जिद प्रमुख हैं। इस प्रकार इस समय की कला स्थापत्य के बेजोड़ नमूने भारत की सुदृढ़ एवं मजबूत आर्थिक व्यवस्था की जानकारी के महत्वपूर्ण स्रोत हैं।

1.2.4 तारीख–ए–फिरोजशाही

रचनाकार– जियाउद्दीन बरनी

1285 से 1359 ई. सन

रचनाकाल– 1358

भाषा–फारसी अनुवाद– 'इलियट और डाउसन' अंग्रेजी में

भारतीय मूल के प्रथम मुस्लिम इतिहासकार 'जियाउद्दीन बरनी का जन्म बलबन के शासन काल में 1285 में हुआ था। वह अलाउद्दीन खिलजी के शासन काल में महत्वपूर्ण पद पर था। इसी समय उसने 'फतवा–ए–जहांदारी' ग्रंथ की रचना की। यह ग्रंथ अलाउद्दीन की आर्थिक व्यवस्था की जानकारी का महत्वपूर्ण स्रोत है। मिनहाज–ए–सिराज ने जहां अपना इतिहास समाप्त किया उससे आगे की जानकारी इस ग्रंथ में मिलती है। इसे उसने 1357 ई. में पूर्ण किया इसमें बलबन से लेकर फिरोजशाह तुगलक तक की जानकारी मिलती है तथा उस काल के सामाजिक आर्थिक तथा न्याय सुधारों का वर्णन किया है।

तारीख–ए–फिरोजशाही की विशेषताएँ

(1) अलाउद्दीन खिलजी की बाजार नियंत्रण नीति की विस्तृत जानकारी मिलती है।

(2) तात्कालीन संतों, दार्शनिकों, इतिहासकारों, कवियों, चिकित्सकों आदि की जानकारी मिलती है।

(3) अलाउद्दीन के आर्थिक सुधारों के साथ तुगलक शासकों के समय की कमजोर आर्थिक स्थिति का वर्णन करता है।

(4) उसका मानना था हिंदु महाजनों, साहूकारों के धन का अपहरण किया जाये और उन्हें दरिद्र बना दिया जाये। उनके पास इतना धन शेष न रहे कि वे सम्मानपूर्वक जीवन जी सकें।

(5) उच्चवर्गीय मुसलमानों की आर्थिक समस्याओं का निराकरण किया।

(6) वस्तुओं के दाम राज्य द्वारा निर्धारित हो।

(7) लूट का माल पूरा राजकोष में जमा नहीं होना चाहिए। कुछ भाग मुसलमानों को भी दिया जाना चाहिए।

(8) बाजार निरीक्षण के लिए अधिकारियों की नियुक्ति की जाये।

(9) 'मुहम्मद तुगलक' की कृषि योजना का मखौल उड़ाया है।

(10) भूमिकर प्रबन्धन का विस्तृत वर्णन करता है।

(11) वह राजस्व मंत्री के पद पर कार्यरत था अतः उसने अपने ग्रंथ में राजस्व की स्थिति का विस्तार से वर्णन किया है।

टिप्पणी

बरनी ने 'तारीख–ए–फिरोजशाही' को दो भागों में लिखा है– प्रथम भाग की जानकारी का श्रेय 1971 में जर्मन इतिहासकार 'प्रो. सायमन डिम्बी को जाता है। दूसरा भाग 'सर सैय्यद अहमद खां' द्वारा 1862 में प्रकाशित किया। इसकी पांडुलिपियां खुदाबक्श पटना, अरेबिक एण्ड पर्शियन इन्स्टीट्यूट टोंक राजस्थान आदि जगह सुरक्षित हैं। इसे बंगाल की एशियाटिक सोसायटी द्वारा प्रकाशित किया गया।

बरनी एक निष्पक्ष लेखक नहीं था, उसकी उपरोक्त कमियों के बावजूद उसके द्वारा लिखित सामग्री में यथार्थवादी दृष्टि है। कहीं–कहीं उसका वर्णन पूर्वाग्रह से ग्रस्त है फिर भी इस ग्रंथ का ऐतिहासिक महत्व है। इसके बिना हमारा मध्यकालीन इतिहास का ज्ञान अधूरा है।

1.2.5 फतवा–ए–जहांदारी

लेखक– 'जियाउद्दीन बरनी'

यह 'तारीख–ए–फिरोजशाही' की समकालीन तथा उसका पूरक खंड है, जिसका लेखक 'जियाउद्दीन बरनी' है। अपने पूर्व लेखन के आधार पर सल्तनत काल के राजनीति दर्शन का विशद वर्णन किया है। इसकी केवल एक हस्तलिपी इंडिया ऑफिस के पुस्तकालय में मिलती है। इसमें 248 पृष्ठ हैं। 'मिन्हाज–ए–सिराज' ने जहां अपना इतिहास समाप्त किया है वहां से इस काल की सूचनाओं का प्रमुख स्रोत है।

विशेषताएं–

(1) 'आदर्श राजनीतिक विधि संहिता का वर्णन किया है।

(2) बलबन से फिरोज तुगलक तक के शासकों की जानकारी देता है।

(3) इस्लाम के विस्तार एवं उसकी रक्षा को बढ़ावा देता है।

(4) अलाउद्दीन खिलजी के आर्थिक सुधारों की जानकारी देता है।

(5) हिंदुओं की दयनीय आर्थिक स्थिति का वर्णन किया है एवं उनकी स्त्रियों के बारे में कहता है "वे दूसरों के घरों में बर्तन मांजने लगी थीं।"

(6) उसका मानना था हिंदुओं को उनकी दौलत और व्यापार की श्रेष्ठता से पृथक कर देना चाहिए।

(7) सुल्तान की नीतियों तथा विधियों को उसके धार्मिक संदर्भ में व्यवस्थित किया है।

(8) उसने सिर्फ सुल्तान और अमीरों के चरित्र तथा व्यक्तित्व का उल्लेख किया है, उस समय के साधारण लोगों के बारे में कोई जानकारी नहीं दी है।

टिप्पणी

इस प्रकार उसकी यह कृति ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित न होकर उसके आदर्श राजनीतिक विचारों को प्रस्तुत करती है। फिर भी इससे हमें उसके आर्थिक विचारों की जानकारी मिलती है। अकाल के समय कर नहीं लेना चाहिए, निरीक्षण के लिए अधिकारियों की नियुक्ति होनी चाहिए। अनाज का भाव निश्चित होना चाहिए। यह खिलजी कालीन आर्थिक जानकारी का महत्वपूर्ण स्रोत है।

1.2.6 बाबरनामा

लेखक–बादशाह बाबर–आत्मकथा

भाषा– तुर्की

अनुवाद– मैडव बेवरीज (अंग्रेजी)

"यह उन अमूल्य ऐतिहासिक ग्रंथों में से है जो अमर है।"

बाबर ने अपनी जीवनी को चगताई तुर्की भाषा जिसे 'बाबरनामा' या 'तुजुक–ए–बाबरी' भी कहा जाता है इसका अनुवाद 'फारसी' भाषा में 'जेतुद्दीन ख्वाजा', अब्दुर्र रहीम खानखाना, मीर अबु तालिब, पायदा हसन ने किया है। इसका अंग्रेजी में अनुवाद 'मिसेज बेवरीज' ने किया है इसमें 18 वर्षों का वर्णन है।

बाबर की पुस्तक तीन भागों में विभक्त है। प्रथम भाग में सन् 1503–1504 ई. काल, द्वितीय भाग सन् 1508–1519 ई. तक और तृतीय में सन् 1520–1525 ई. तक। यह कृति बाबरकालीन इतिहास की जानकारी का प्रमुख स्रोत है। बाबर ने जो भी विवरण प्रस्तुत किया है ईमानदारी के साथ प्रस्तुत किया है। 1924 ई. में 'मिर्जा नासिरुद्दीन हैदर' ने इसके संस्मरणों का अनुवाद किया है, जो दिल्ली से प्रकाशित हुआ है।

बाबरनामा में बाबर ने भारत का विवरण अपने संस्मरण में किया है। उसने जमीन, ऋतुएं फल–फूल, व्यापार आदि के साथ देश की सामाजिक तथा राजनीतिक दशाओं पर प्रकाश डालते हुए विवरण दिया है। बाबर भारत की आर्थिक समृद्धि का भी वर्णन करता है। वह उल्लेख करता है "भारत का मुख्य आकर्षण यह है कि यह बहुत बड़ा देश है यहां सोना और चांदी का अंबार है।" वह यहां के कामगार और पेशेवर लोगों की बड़ी तारीफ करता है। कोई रोजगार या किसी कार्य के लिए हमेशा एक समूह तैयार मिलता है। माप तौल की भी जानकारी देता है।

बाबर भारत की राजनीतिक अवस्था पर भी प्रकाश डालता है। वह लिखता है कि देश छोटे–छोटे राज्यों में विभाजित था। विजयनगर को एक शक्तिशाली राज्य बताते हुए 'कृष्णदेव राय की प्रशंसा करता है, 'राणासांगा की बहादुरी' की प्रशंसा की है। अपनी मालवा, रणथम्भौर, सारंगपुर, भिलासा एवं चंदेरी, विजय का विवरण देता है।

इस प्रकार बाबर तलवार के साथ–साथ कलम का भी धनी था। बाबर ने घटनाओं तथा विवरणों का प्रस्तुतीकरण इस ढंग से किया है कि कोई छोटे से छोटा विवरण भी छूट न जाये लेकिन कुछ त्रुटियां उसके संस्मरण में है। उसके वर्णन में

भारत वर्ष के बारे में विरोधाभास मिलता है, इसके बाद भी बाबरनामा एक महत्वपूर्ण स्रोत है मुगल काल की जानकारी का।

'एलफिन्स्टन का मत है–

"यह बाबर की जीवनी ही सारे एशिया में वास्तविक ऐतिहासिक सामग्री है।"

टिप्पणी

1.2.7 अकबरनामा

लेखक – अबुल फजल

भाषा– 'फारसी'

'अकबरनामा' मुगल बादशाह अकबर के दरबारी विद्वान 'अबुल फजल' के द्वारा लिखा गया प्रामाणिक इतिहास है, उसने यह ग्रंथ अकबर के शासन काल में लिखा था 'अकबरनामा' का शाब्दिक अर्थ 'अकबर की कहानी' है। उसने यह ग्रंथ अकबर के आदेश से लिखा था। वह 'अरबी' और 'फारसी' का विद्वान था उसने अरबी और फारसी में रचित इतिहास की अनेक पुस्तकों का अध्ययन किया था। उसे शाही फरमानों और दस्तावेजों को देखने और उनका उपयोग करने की आजादी प्राप्त थी।

सात साल के कड़े परिश्रम के उपरांत अबुल फजल ने उक्त ग्रंथ अकबर को समर्पित किया। यह तीन जिल्दों में विभाजित है। तीसरी जिल्द 'आइन–ए–अकबरी' है। पहले व दूसरे खंड में तैमूर की वंशावली, बाबर के साम्राज्य व सूरी वंश और अकबर के साम्राज्य का वर्णन है, तीसरे खंड में हिंदू विद्वान, कर प्रणाली, भूगोल साम्राज्य और भारतीय कला व संस्कृति का वर्णन है।

अबुल फजल ने लेखन में इतिहास की क्रमबद्धता को बनाये रखने का प्रयास किया है और उसे अभिरुचि पूर्ण बनाने का प्रयास किया है। 'खलिक अहमद निजामी' कहते हैं कि वह बौद्धिक और भौतिक दोनों रूपों से अभिजात्य दृष्टिकोण एवं अभिरुचियों वाला व्यक्ति था। यह राजाश्रय में लिखा गया इतिहास है, वह बादशाहत को खुदा की देन एवं अकबर को 'इंसान–ए–कामिल' मानता था जो गलत कर ही नहीं सकता। उसे बादशाह की प्रशंसा करते हुए झिझक नहीं होती है। वह सत्य को छिपाता है। फिर भी अनेक दोष होते हुए भी मुगलकालीन इतिहास जानने का एक प्रामाणिक स्रोत 'अकबरनामा' है।

1.2.8 आइन–ए–अकबरी

'आइन–ए–अकबरी' का लेखक अबुल फजल है, यह ग्रंथ मुगलकालीन भारत का सबसे महत्वपूर्ण ग्रंथ है, यह फारसी भाषा में लिखा गया है। इस ग्रंथ में तत्कालीन परिस्थितियों का सुंदर चित्रण किया गया है, 'वारेन हेस्टिंग्ज' के शासन काल में 'ग्लैडविन' ने इसका आंशिक अनुवाद किया। इसके बाद 'ब्लॉकमैन' 1873 और 'जैरेट' 1891–1894 में इस ग्रंथ का अनुवाद अंग्रेजी में किया।

विशेषताएं–

(1) यह ग्रंथ पांच भागों में विभाजित है तथा सात वर्षों में तैयार किया गया।

(2) अकबर की प्रशस्ति तथा राजसी और दरबारी विवरण अंकित है।

टिप्पणी

(3) दूसरे भाग में राज्य कर्मचारी, सैनिक तथा नागरिक, पद, वैवाहिक तथा शिक्षा संबंधी नियम दिये।

(4) तीसरे भाग में न्याय तथा प्रबंधक विभागों के कानून, कृषि, शासन संबंधी विवरण है।

(5) चौथे भाग में हिंदुओं की सामाजिक दशा और उनके धर्म, दर्शन, साहित्य और विज्ञान का वर्णन है।

(6) पांचवें भाग में अकबर के समय में कहे गये कथन संकलित हैं।

यह मुगलकाल का प्रथम गजेटियर है इसके अलावा इसमें शाही टकसाल, मुद्रा, व्यवस्था, शस्त्र शाला, शाही छुड़माल दरबार के नियम, सैनिक तथा असैनिक अधिकारियों की 'तनख्वाहों' न्याय, लगान व्यवस्था, राज्य की आय और व्यय के साधन अकबर के नैतिक नियम आदि की जानकारी मिलती है।

यह ग्रंथ पूर्णतः राजाश्रय ग्रंथ है। अकबर की महानता का गुणगान किया गया है, इसमें यथार्थ कम आदर्श अधिक है। राज्य की प्रशासनिक व्यवस्था के बारे में इस ग्रंथ में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है। फिर भी यह अकबर के काल की शासन, सभ्यता और संस्कृति के बारे में जानने का मूल्यवान स्रोत है।

प्रो. लूमिया के शब्दों में– "यह नियमों, अधिकारियों, भूतल, राजस्व व्यवस्था, सामाजिक स्वभावों तथा भारत के लोगों की परंपराओं आदि बहुत सी दूसरी बातों के बारे में सूचनाओं की खान है। आइन–ए–अकबरी ऐसी एक मूल्यवान तथा महत्वपूर्ण पुस्तक है कि कोई भी इतिहासकार बिना इसके कुछ नहीं कर सकता है।"

1.2.9 मुन्तखब–उत तवारीख

लेखक– अब्दुल कादिर बदाऊंनी

भाषा– फारसी

अनुवाद– रैंकिंग तथा लव

'मुन्तखब–उत–तवारीख' की रचना अकबर के समकालीन विद्वान 'अब्दुल कादिर बदाऊँनी' ने की है। इसे 'तारीख–ए–बदायूँनी' के नाम से भी जाना जाता है। इसकी शुरुआत 1590 में हुई और 1596 में पूर्ण हुई इस किताब के तीन भाग हैं।

(1) दिल्ली के सुल्तानों– बाबर और हुमायुँ के शासन काल का वर्णन है।

(2) 1595 तक अकबर के लगभग 40 साल तक का वर्णन है।

(3) संतों, कवियों, विद्वानों की जानकारी मिलती है।

बदायूँनी कट्टर रूढ़िवादी सुन्नी मुसलमान था। उसे अकबर के समय की प्रगतिशील सहिष्णुता तथा समन्वयवादी विचारधाराओं में कोई रुचि और सहानुभूति नहीं थी। उसने इस ग्रंथ की रचना गोपनीयता के साथ की। इमसें युद्धों व विद्रोहों का विस्तृत विवरण है। प्रशासनिक व्यवस्था का भी उल्लेख किया है, अकबर के समय की घटनाओं तथा अकालों की जानकारी मिलती है, उसने अपने लेखन में सामाजिक, आर्थिक गतिविधियों को महत्वपूर्ण स्थान दिया है।

'खालिद अहमद निजामी' का मत है–

अकबर कालीन इतिहासकारों में मात्र बदायूँनी ही एक ऐसा इतिहासकार है जिसकी अपनी ऐतिहासिक दृष्टि है।

टिप्पणी

रूढ़िवादी विचारों का प्रस्तुतिकरण है इसमें तिथियों का गलत संकलन है जिससे घटना क्रम दोषपूर्ण हो जाता है। इन दोषों के बाद भी ऐतिहासिक दृष्टि से उसके ग्रंथ का अपना महत्व है। इसमें हमें अकबर कालीन व अन्य समकालीन आर्थिक इतिहास की जानकारी मिलती है।

1.2.10 तुजुक–ए–जहांगीरी

लेखक – जहांगीर

भाषा – 'फारसी'

यह जहांगीर की आत्मकथा है, जिसे जहांगीर ने स्वयं अपने सिंहासन पर बैठने के समय से लेकर अपने शासन के सत्रहवें वर्ष तक लिखा, इसके पश्चात उसने यह कार्य 'बक्शी मोत मिद खां' को सौंप दिया। उसने 19वें वर्ष तक अपना लेखन कार्य सामान्य भाषा में किया, बाद में यह कृति शहंशाह जहांगीर के निर्देशन में दूसरे इतिहासकार 'मुहम्मद हाढी' द्वारा पूर्ण की गई। जहांगीर ने अपने सिंहासन पर बैठने के अवसर पर बनाये नियमों, न्याय व्यवस्था की जानकारी इसमें दी है। उसके द्वारा 40 गज लंबी स्वर्ण की बनी हुई न्याय की जंजीर आगरा के दुर्ग में लगाई गई।

इसमें 60 घंटियां लगी थीं, जिसकी तौल 10 मन के लगभग थी।

जहांगीर के 12 अध्यादेश– इसमें उसने 12 अध्यादेशों का वर्णन किया है–

(1) जकात का निषेध

(2) आम रास्तों पर डकैती और चोरी के विषय में नियम

(3) मृतक व्यक्तियों की संपत्ति का बिना कर उत्तराधिकार

(4) समस्त मादक वस्तुओं और मद्य के विषय में

(5) मकान छीनने और अपराधियों के नाक, कान काटना निषेध

(6) गसबी (बगैर अनुमति के किसी की संपत्ति हरण) का निषेध

(7) अस्पतालों का निर्माण

(8) जानवरों का वध निषेध (कुछ दिन)

(9) रविवार के प्रति आदर

(10) मनसबों और जागीरों की आम पुष्टि

(11) आयमा एवं मदद माशा भूमियों की पुष्टि

(12) मुद्रा निर्माण के बारे में लिखा है।

अन्य विवरण निम्नानुसार हैं–

(1) यह आत्मकथा विभिन्न राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक मुद्दों पर जहांगीर के विचारों की शाही विचारधारा को बताती है।

टिप्पणी

(2) उसमें जागीरदारों का प्रबंधन और नियमन करने के फरमान थे।

(3) भ्रष्टाचार को रोकने के प्रयासों का वर्णन किया गया है।

(4) आत्मकथा में विभिन्न स्थानों की जलवायु, प्राकृतिक सौन्दर्य, फूल, पेड़, पशु–पक्षी आदि का सुंदर वर्णन है।

अतः 'तुजुक–ए जहांगीरी' जहांगीर के शासनकाल की राजनीतिक घटनाओं, इतिहास और संस्कृति को जानने के लिए मूल्यवान ग्रंथ है। इसमें जहांगीर के शासन काल का संपूर्ण विवरण है। इसकी सबसे प्रमुख विशेषता है यह बेखौफ लिखी गयी है। प्रो. लूनिया का मत है कि– "वास्तव में, संस्मरण, जहांगीर के शासन काल का एक मूल्यवान अभिलेख है और उसकी बोधगम्यता तथा स्पष्टवादिता विशिष्ट है।"

1.2.11 मुन्तखब–उल–लुबाब

लेखक – मुहम्मद हाशिम खां

भाषा–फारसी

मुहम्मद हाशिम अली खान 'खाफी खान' ने 'मुन्तखब–उल–लुबाब' अथवा 'तारीख–ए–खाफी खान' कृति में 1680 ई. से 1733 ई. की घटनाओं का विवरण दिया है। इसमें उसने राजनैतिक घटनाओं के साथ–साथ आर्थिक पक्ष का भी वर्णन किया है।

यह कृति तीन जिल्दों में लिखी गई है, इसमें भारत में मुसलमानों के आगमन से लेकर मुगल शहंशाह मुहम्मद शाह (1719–1748) के शासन काल तक का इतिहास सम्मिलित है। प्रथम जिल्द में मुसलमानों के अभियान से लोधी वंश के अंत और भारत में मुगल शासन के आरंभ का विवरण है। द्वितीय जिल्द बाबर की विजय से लेकर मुहम्मद शाह के दिनों तक का भारत में मुगलों के शासन से संबंधित है। इस पुस्तक की तृतीय जिल्द औरंगजेब के समय पर प्रकाश डालती है। चूंकि औरंगजेब ने इतिहास के लेखन पर रोक लगा दी थी। इसलिए यह कृति लंबे समय तक छिपाये रखी गई। औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात इसका प्रकाशन किया गया।

इस कृति में "खाफी खां" ने पुर्तगालियों के बारे में लिखा है। उसने लिखा है कि पुर्तगालियों के पास अनेक बंदरगाह थे। उन्होंने अनेक किले बनवा लिये थे। अशर्फी सिक्का भी चलाया। उसने औरंगजेब के काल के इतिहास को विस्तृत रूप में लिखा है। उसने दावा किया कि उसने इतिहास को निष्पक्षतापूर्ण लिखा और आधुनिक इतिहासकारों में से डॉ. जदूनाथ सरकार ने उसे एक योग्य इतिहासकार स्वीकार किया है। परंतु उसके इतिहास को पूर्णतया निष्पक्ष स्वीकार नहीं किया गया है। इसके बाद भी मुगलकालीन इतिहास को जानने का यह एक प्रमुख एवं मूल्यवान साधन है।

1.2.12 बर्नियर का यात्रा विवरण

सदियों से भारत का आकर्षण विदेशियों को लुभाता रहा है और यही कारण है कि विश्व के हर कोने से यात्री यहां भ्रमण को आते हैं। यहां आने वाले बहुत से विदेशी यात्रियों ने एक इतिहासकार की दृष्टि से भारत को देखा और तत्कालीन शासक, शासन

व्यवस्था, सांस्कृतिक–धार्मिक रीति रिवाज, आर्थिक व सामाजिक स्थिति का वर्णन किया। उन्हीं में एक यात्री 'फ्रैंकॉइज बर्नियर' था।

टिप्पणी

प्रारंभिक परिचय– बर्नियर फ्रांस का निवासी था वह चिकित्सक, राजनीतिक दार्शनिक तथा इतिहासकार था। वह मुगलकाल में 1656 में भारत आया और 1668 तक रहा। इस दौरान उसने भारत की राजनीतिक, धार्मिक एवं आर्थिक स्थिति का वर्णन अपने यात्रा वृतान्त "Travels in the Mughal Empire" में किया है।

बर्नियर जब भारत आया उस समय मुगल वंश का शासन था शाहजहां के अस्वस्थ होने से उसके पुत्रों में सत्ता प्राप्ति के लिए संघर्ष शुरू हो गया। उसके चारों पुत्रों में औरंगजेब अपने भाइयों और उनके परिवार को खत्म कर विजयी हुआ।

किताब के एक हिस्से में बर्नियर के कुछ पत्र भी शामिल हैं। उसकी दृष्टि अत्यंत खोजी एवं जिज्ञासापूर्ण थी। उसने विभिन्न क्षेत्रों के बारे में महत्वपूर्ण जानकारियां संकलित की है, जो ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं, उसने मुगल प्रशासनिक व्यवस्था, राजस्व व्यवस्था एवं कृषकों की स्थिति का सटीक वर्णन किया है।

शहरों एवं प्रांतों का वर्णन– आगरा एवं दिल्ली जैसे नगरों का वर्णन किया है। उन नगरों की बसावट एवं योजना के बारे में लिखा है, उसने इन नगरों के दस्तकारी उद्योगों के बारे में जानकारी दी है।

चरित्र चित्रण– उसने तत्कालीन समय के सभी महत्वपूर्ण व्यक्तियों के चरित्रों का सजीव वर्णन किया है। शाहजहां के पुत्र, पुत्रियों के आचार व्यवहार का उसने विस्तृत वर्णन किया है। मुगल शहजादियों के बारे में वह लिखता है कि उनकी शादी नहीं होती थी, क्योंकि वह व्यक्ति सत्ता की दावेदारी प्रस्तुत कर सकता था।

कृषकों की दशा एवं राजस्व व्यवस्था– उसने कृषकों की स्थिति एवं राजस्व व्यवस्था का वर्णन किया है, जागीरदारों पर नियंत्रण स्थापित करने के लिए उनके स्थान्तरण का नियम था। यह नीति किसानों के हित में नहीं थी। वे अपने लाभ के लिए किसानों से अधिक कर वसूलते थे। उनके अनुसार राजा के क्षेत्र में किसानों पर कर का बोझ कम था। अपने लोभी स्वामियों की मांग पूरी नहीं कर पाने के कारण गरीब लोगों को जीवन निर्वाह एवं उनके बच्चों से वंचित कर दिया जाता था। इस प्रकार 'बर्नियर' के वर्णन से मुगल राजस्व प्रशासन की तस्वीर हमें सामने दिखाई देती है।

व्यापार एवं सोना–चांदी– वह विदेशों से भारत के व्यापार का वर्णन करता है एवं वस्तु–विनिमय सोने–चांदी से किया जाता था। सोने–चांदी की प्रचुरता के बाद भी इसका उचित लाभ नहीं लिया जाता था इसका प्रमुख कारण स्त्रियों द्वारा गहने बनवाना था। सुरक्षा की दृष्टि से जमीन में दबा दिया जाता था। इसके अलावा वह कश्मीर के शाल उद्योग एवं व्यापार वाणिज्य का विस्तृत वर्णन करता है।

इसके अतिरिक्त राजपूतों की शस्त्र विद्या की परंपरा, घुड़सवारों की दक्षता एवं अमीर वर्ग के बारे में उनके वेतन से संबंधित जानकारी देता है। अमीर वर्ग फिजूलखर्ची एवं शानोशौकत पर अत्यधिक खर्च करते हैं। साथ ही वह लिखता है दिल्ली के आसपास का इलाका अत्यंत उपजाऊ है। यहां मक्का, चावल, बाजरा, नील, गन्ने की खेती होती थी।

बर्नियर के यात्रा वृतांत का महत्व इस बात में परिलक्षित होता है कि उसकी यात्रा का वर्णन फ्रांस में 1670 से 75 में प्रकाशित हुए हैं। इतावली भाषा में अनुवाद हुआ। 1684 में तीन बार अंग्रेजी में लिखा गया है।

टिप्पणी

बर्नियर का यात्रा वृतांत मुगल काल के इतिहास की जानकारी का महत्वपूर्ण स्रोत है। इससे यह पता चलता है कि उसकी दृष्टि भारत के संदर्भ में गहन थी। इसमें वह तत्कालीन भारत के समस्त पहलुओं एवं उस समय के मनुष्यों का बड़ा ही सजीव चित्रण प्रस्तुत करने में सफल रहा।

1.2.13 पेशवा दफ्तर का संकलन

मध्यकालीन इतिहास को जानने में, साहित्यिक पुरातात्विक तथा विदेशी यात्रियों का वर्णन महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाहन करते हैं। वहीं पेशवा दफ्तर का पत्र संकलन भी आर्थिक स्रोतों के बारे में जानकारी का महत्वपूर्ण साधन है।

मराठा राजनीति की शुरुआत छत्रपति शिवाजी से होती है। उनके लगभग 200 पत्र हैं जिनमें 62 पत्र एकत्र हुए हैं। शिवाजी के पत्र मराठा शासन के अधिकारियों, मित्रों, रिश्तेदारों और दुश्मनों को संबोधित करके लिखे गए। ये पत्र इंसाफ, धर्म जैसे विभिन्न मुद्दों पर उनकी जानकारी को स्पष्ट करते हैं।

पेशवा दफ्तर पत्र संग्रह में मुगल, मराठों व अंग्रेजों के संबंधों की जानकारी मिलती है। मराठा शासन व्यवस्था में पत्र संकलन का कार्य मुंशी और चिटनिस मंत्री करते थे।

(1) पेशवा दफ्तर (न्यू सीरिज) हिंदी साधने (पुणे दफ्तरांतीला ऐतिहासिक कागदपत्रे ग्रन्थमाला) (न्यू सीरिज) संपादक डॉ. रघुवीर सिंह सहायक संपादक मनोहर सिंह राणवत भाग–1 गर्वमेंट सेण्ट्रल प्रेस बंबई, महाराष्ट्र 1957। उक्त पेशवा दफ्तर संकलन ग्रंथों से जानकारी मिलती है।

(2) पेशवा दफ्तर (न्यू सीरिज) (Selections from the Peshwa Dufter, New Series) संपादक पी.एम. जोशी भाग–1 गवर्नमेंट सेण्ट्रल प्रेस बंबई महाराष्ट्र 1957

(3) पेशवे दफ्तरांतु न मिवडलेले कागद (Selections from the Peshwa Dufter) भाग 9, 21, 27, 30 गवर्नमेंट सेण्ट्रल प्रेस बंबई महाराष्ट्र।

1.2.14 राजस्थानी रुयात

रुयात इतिहास संबंधी साहित्य है। यह संस्कृत की 'रुया' धातु में क प्रत्यय जुड़ने से रुयात शब्द बना है। जिसका अर्थ "भूतकाल की घटनाओं का वर्णन करना है। ये मूलतः राजस्थान के वे ग्रंथ या साहित्य हैं, जिनमें राजा के दैनिक जीवन की घटनाओं का वर्णन है। ये प्रायः गद्य विद्या में लिखे गये हैं। लुईजी पीयो टेस्सीटोरी सर्वप्रथम एवं सर्वाधिक रुयातों को प्रकाश में लाने वाले व्यक्ति थे।"

उन रुयातों का नामकरण वंश, राज्य या लेखक के नाम से किया जाता रहा है। मुहणोत नैणसी री रुयात, जोधपुर राज्य की रुयात, बीकानेर के राठौड़ों की रुयात आदि। अबुल फजल के आइने ए अकबरी ग्रंथ की तुलना मुहणौत नैणसी की मारवाड़ का परगना की विगत रुयात से की जाती है। इन रुयातों से तत्कालीन शासन व्यवस्था, सांस्कृतिक, आर्थिक स्थिति की जानकारी मिलती है।

टिप्पणी

इन राजस्थानी रुयातों में युद्ध के तरीके, तिथि, संवत, आर्थिक संस्थाएं, व्यवसाय व अर्थ संबंधी पक्षों की जानकारी मिलती है। चूंकि दरबार में रहने वालों चारण या भाट द्वारा इनका वर्णन किया गया है तो कहीं–कहीं अतिश्योक्ति का समावेश होता दिखाई देता है। इनमें नैणसी की रुयात महत्वपूर्ण है। राजस्थानी इतिहास की जानकारी के साथ–साथ यह इस्लामी शासकों से संबंधों की जानकारी भी देता है। नैणसी की रुयात एक तथ्यपरक ऐतिहासिक कृति है। उसने अपना लेखन वैज्ञानिक ढंग से किया। इसमें कृषि, वाणिज्य, व्यापार, माप–तौल आदि की जानकारी मिलती है।

1.2.15 परगना–री–विगत

मुहता नैणसी द्वारा रचित परगना री विगत राजस्थान के इतिहास को जानने का महत्वपूर्ण स्रोत है। यह ग्रंथ 'रामनारायण दुगड़' द्वारा दो भागों में संपादित (हिंदी अनुवाद) होकर 'काशी नागरी प्रचारिणी' सभा द्वारा संवत् 1982 में प्रकाशित हुआ था। राजस्थान के प्रायः सभी रजवाड़ों के राजवंशों का इतिहास नैणसी ने लिखा है रुयात की भाषा टकसाली राजस्थानी है।

यह ग्रंथ राजस्थान की राजपूत जाति, यहां की सामाजिक संरचना, आक्रांताओं से संघर्ष, जाति–प्रथा, धार्मिक मान्यताओं, भौगोलिक स्थिति और सांस्कृतिक परिवेश की जानकारी देता है। इसके अलावा महाराजा जसवंत सिंह प्रथम के अधीन सात परगनों का विस्तार से वर्णन किया है। उसने इसमें 1643 ई. से 1666 ई. तक की ऐतिहासिक सामग्री संकलित की है। उसने मारवाड़ राज्य की प्रशासनिक भूमि व्यवस्था के साथ ही वहां की सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक व्यवस्थाओं का वर्णन किया है। नैणसी की परगना–री–विगत राजस्थान के इतिहास की जानकारी का महत्वपूर्ण साधन है।

संपूर्ण विवेचन स्पष्ट करता है कि मध्यकालीन इतिहास की अर्थव्यवस्था की प्रमाणिक जानकारी साहित्यक एवं पुरातात्विक साक्ष्यों से मिलती है। अभिलेखों, भवनों, स्मारकों, किलों, सिक्कों के साथ अरबी, फारसी संस्कृत भाषा के साहित्य से सल्तनत काल एवं मुगल काल की अर्थव्यवस्था की जानकारी मिलती है।

अपनी प्रगति जांचिए

1. 'तुजुक–ए–बाबरी' किसकी रचना है?
   (क) अकबर (ख) बाबर
   (ग) कल्हण (घ) मिनहाज–उस–सिराज
2. 'तारीख–ए–फिरोजशाही' का लेखक था?
   (क) अलबरूनी (ख) बरनी
   (ग) इब्नबतूता (घ) हसन निजामी
3. निम्न में से कौन–सा लेखक गयासुद्दीन तुगलक, मुहम्मद बिन तुगलक और फिरोज तुगलक का समकालीन था?
   (क) शम्स ए सिराज (ख) मिन्हाज–उस–सिराज
   (ग) हसन निजामी (घ) गियाउद्दीन बरनी

4. बर्नियर किस देश का था?

(क) अमेरिका (ख) फ्रांस

(ग) इटली (घ) यूनान

5. 'रुयात' किस भाषा का शब्द है?

(क) अंग्रेजी (ख) राजस्थानी

(ग) हिंदी (घ) संस्कृत

1.3 इतिहास लेखन– विभिन्न उपागम

मानव इतिहास विकास की प्रक्रिया पर आधारित है। जिनके कारण समय–समय पर सामाजिक आवश्यकताओं और मूल्यों में भी परिवर्तन होता रहा है। यही कारण है कि विद्वानों और इतिहासकारों ने अपनी आवश्यकताओं को दृष्टिगत करते हुए इतिहास लेखन की ओर ध्यान दिया है। मध्यकाल के प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोत उपलब्ध हैं जिनमें हमें आर्थिक पक्ष की जानकारी मिलती है। अलाउद्दीन खिलजी की बाजार नियंत्रण की जानकारी देने वाले बरनी एवं विदेशी यात्री इब्नबतूता ने भी अपने ग्रंथ 'रेहला' के माध्यम से दी है।

मुगल आर्थिक व्यवस्था की जानकारी के स्रोत में मुख्यतः अबुल फजल के ग्रंथों में जानकारी उपलब्ध है। मध्यकालीन इतिहासकारों का अनुसरण करते हुए आधुनिक इतिहासकारों ने भी इतिहास लेखन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किया है। साम्राज्यवादी इतिहास लेखन में महत्वपूर्ण इतिहासकार 'विन्सेंट स्मिथ, इलियट एण्ड डाउसन एवं विलियम हैरीसन, मोरलैण्ड आदि ने साम्राज्यवादी लेखन से अंग्रेजों की साम्राज्यवादी प्रवृत्ति को भारतीय इतिहास पर थोपने की कोशिश की है। उन्होंने मुस्लिम शासन व्यवस्था की बुराई कर अंग्रेजी शासन व्यवस्था की श्रेष्ठता को सिद्ध किया है।

वहीं दूसरी ओर राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने मुस्लिमों की सहिष्णुता की नीति के पक्ष में अपना लेखन कार्य किया है। इन सबके बीच मार्क्सवादी इतिहासकार जैसे– इरफान हबीब, रोमिला थापर एवं आर.एस. शर्मा ने वैज्ञानिक इतिहास लेखन का कार्य किया है। उन्होंने वास्तविक और भारतीय इतिहास की सही छवि प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

मध्यकालीन भारतीय आर्थिक इतिहास का लेखन एवं उसमें विभिन्न उपागमों का अनुप्रयोग : तथ्य, व्याख्या एवं उपागम

तथ्य ऐसा कथन होता है, जो वास्तविकता के अनुकूल हो या जिसे साक्ष्य के प्रयोग द्वारा साबित किया जा सके। तथ्य की सच्चाई परखने के लिए प्रमाण प्रस्तुत किए जाते हैं, जिनके लिए मान्य संदर्भों व स्रोतों का प्रयोग किया जाता है।

ऐतिहासिक लेखन एक साधारण कार्य नहीं है। इसका प्रमुख कारण इतिहास के तथ्यों का विशाल क्षेत्र में फैला हुआ होना है तथा तथ्य के प्रति इतिहासकार का अपना–अपना दृष्टिकोण का होना जैसे– सत्य के अनेक पहलू होते हैं। इसके बाद भी

सत्य अपरिवर्तनीय होता है। सी.पी. स्काट का मत है– तथ्य पवित्र है, निष्कर्षों पर कोई प्रतिबंध नहीं है।

टिप्पणी

तथ्यों के चयन के संदर्भ में मार्विक ने कहा है– "सामग्री को एकत्रित करने के बाद इतिहासकार का कार्य एक इन्सपेक्टर जनरल की रिपोर्ट से भिन्न होता है जो परीक्षण के दौर में अपनी सरकार को रिपोर्ट देता है।"

प्राथमिक स्रोत मध्यकालीन इतिहास को जानने के प्रमुख साधन हैं। इसके अंतर्गत तात्कालीन इतिहासकारों द्वारा रचित साहित्य एवं विदेशी यात्रियों द्वारा किया गया भारत का वर्णन है। इन प्राथमिक स्रोतों का अपने–अपने दृष्टिकोण से राष्ट्रवादी, मार्क्सवादी, साम्राज्यवादी इतिहासकारों ने वर्णन किया है। साम्राज्यवादी इतिहासकारों ने तथ्यों का वैसा ही विश्लेषण किया जो उनकी साम्राज्यवादी प्रवृति की पुष्टि करता है। यही अवधारणा राष्ट्रवादी एवं मार्क्सवादी प्रवृत्ति में परिलक्षित होती है।

ई.एच. कार का मत है– "तथ्य ऐतिहासिक अध्ययन का आधार है– बिना तथ्य के प्रमाणिक इतिहास लिखना मुश्किल है परंतु तथ्यों का आकलन बिना किसी पूर्वाग्रह से होना चाहिए। बहुत बार इतिहासकार की व्यक्तिगत रुचि भी इतिहास लेखन को प्रभावित करती है। थामसन महोदय ने लिखा है कि तथ्य स्वयं नहीं बोलते। सर जान क्लार्क महोदय ने इतिहास की तुलना एक गूदेदार फल से की है। उनके अनुसार तथ्य इस इतिहास रूपी फल की गुठली होता है जिसमें फल का बीज निहित होता है। उन्होंने तथ्य से निकाले गये निष्कर्षों को फल का गूदा कहा है। यह गूदा जायकेदार तो हो सकता है, मगर उसमें उत्पादन क्षमता नहीं होती।"

मध्यकालीन इतिहास लेखन में इतिहास के सभी पक्षों का लेखन तो हुआ है, परंतु उसमें वैज्ञानिक दृष्टिकोण की कमी थी। आधुनिक इतिहास लेखन में मार्क्सवादी, साम्राज्यवादी, राष्ट्रवादी प्रवृत्तियों के अनुसार विस्तृत लेखन किया गया है। इस प्रकार उन्होंने अपने उपागम के अनुरूप ही तथ्यों का चयन कर व्याख्या की है।

मध्यकालीन इतिहासकारों द्वारा प्रस्तुत अर्थव्यवस्था संबंधी तथ्य

इतिहास व्यक्तिगत दृष्टिकोण के साथ परिवर्तित होता रहता है। इतिहास लेखन के विभिन्न उपागम का अध्ययन यहां पर वर्णित किया गया है। जिसमें विद्यार्थी उन उपागमों का सरलता के साथ अध्ययन कर मध्यकालीन आर्थिक इतिहास लेखन एवं आधुनिक इतिहास लेखन के बीच तुलनात्मक अध्ययन से उनके बीच के अंतर को समझ सके।

मिन्हाज–उस–सिराज–

पुस्तक– "तबकात–ए–नासिरी"

भाषा–फारसी

सल्तनतकालीन इतिहास में प्रमुख इतिहासकार 'मिनहाज–उस–सिराज था जिसका ग्रंथ तबकात–ए–नासिरी फारसी भाषा में रचित था। यह ग्रंथ 23 तबकों (अध्यायों) में विभक्त है। वह इल्तुतमिश से नसिरुद्दीन महमूद तक की सेवा में रहा। तबकात–ए–नासिरी में उसने दिल्ली सल्तनत के गुलाम वंशों के सुल्तानों के शासन का वर्णन किया है। इस्लाम के उत्थान, खलीफाओं के शासन, ईरान के शासकों, भारत में

टिप्पणी

तुर्की के शासन का आरंभ, गजनी और गोर वंश का इतिहास, मुस्लिम राज्यों पर मंगोलों के आक्रमण आदि का विस्तार से वर्णन किया है। ऐतिहासिक घटनाओं के वर्णन के साथ–साथ उसने उनकी आलोचनात्मक व्याख्या भी की है। जिससे घटनाओं के कारणों और उनके परिणामों को जानने की सुविधा होती है। वह एक धार्मिक व्यक्ति था फिर भी उसका लेखन धार्मिक कट्टरता से मुक्त था। 'मिनहाज–उस सिराज ने ऐतिहासिक घटनाओं के अतिरिक्त सुल्तानों और अमीरों के व्यक्तिगत जीवन, उनके प्रेम–प्रसंगों, नागरिक जीवन, महल के षड्यंत्रों आदि का वर्णन किया है। इस प्रकार वह सत्तारुढ़ वर्ग का विशिष्ट अंग था। अतः उन्होंने राजाओं एवं अमीरों के बारे में ही अधिक लिखा, जनसामान्य के बारे में कुछ नहीं लिखा। मिनहाज की दिलचस्पी मात्र राजनीतिक सत्ता को कायम रखने में थी। अतः जो विवरण उनके इस उद्देश्य में शामिल नहीं थे, उनसे उसने कोई वास्ता नहीं रखा। फिर भी उसका ग्रंथ सल्तनतकालीन इतिहास जानने का प्रमुख स्रोत है।

जियाउद्दीन बरनी–

- इनका विवरण इसी इकाई में आप पहले पढ़ चुके हैं।

अबुल फजल– (1551–1602 ई.)

मुगल बादशाह अकबर के दरबारी विद्वान अबुल फजल का जन्म 14 जनवरी 1551 को हुआ था। इन्होंने अपनी जीविका एक अध्यापक के रूप में शुरू की और अपनी योग्यता के बल पर वह प्रधानमंत्री के पद तक पहुंचा। उसने स्वयं को बड़ा कूटनीतिज्ञ तथा राजनीतिज्ञ सिद्ध किया। एक विद्वान और इतिहासकार के बतौर उसने दो महान कृतियां– अकबरनामा और आइन–ए–अकबरी लिखी। जिन्होंने उसे मुगल काल के इतिहास लेखकों के मध्य एक अत्यंत प्रसिद्ध व्यक्ति बना दिया। आइन–ए–अकबरी को अकबरकालीन गजेटियर कहा जाता है।

इस प्रकार मुगलकाल की आर्थिक–व्यवस्था की सूक्ष्म जानकारी को आइन–ए–अकबरी में बड़े अच्छे ढंग से प्रस्तुत किया गया है। मध्यकालीन आर्थिक लेखन की समीक्षा के लिए आधुनिक इतिहासकारों ने अबुल–फजल के ग्रंथों से सहयोग लिया है।

विदेशी यात्री

(1) शेख फतह अबू अब्दुल्लाह– इब्नबतूता

यह मोरक्को का निवासी था और यात्री के रूप में भारत आया। उसने अपनी विदेश यात्रा का वर्णन अपनी पुस्तक 'रहेला' नामक ग्रंथ में किया है। 'रहेला' में उसने भारत की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक स्थितियों का विस्तृत वर्णन किया है। उसने सुल्तान 'गियासुद्दीन तुगलक' की परिस्थितियों का वर्णन किया है। उसने मुहम्मद तुगलक के शासनकाल का विस्तृत रूप से वर्णन किया है। इसमें उसने उसकी क्रूरता, उदारता, राजधानी परिवर्तन के परिणामों का वर्णन किया है। उसने दिल्ली नगर एवं विभिन्न नगरों के बाजारों, भारतीय उत्सवों, मेलों, पशु–पक्षियों, वेशभूषा, बंगाल की जलवायु आदि का वर्णन किया है। इस प्रकार ग्रंथ रहेला भारत की तात्कालिक सदी की भारत की सामाजिक, आर्थिक दशा के बारे में विस्तृत जानकारियां उपलब्ध कराता है।

टिप्पणी

मार्कोपोलो (1292–1293 ई.)

यह वेनिस निवासी इतालवी यात्री था जिसे 'मध्यकालीन यात्रियों का राजकुमार कहा गया है। उसने पांड्य नरेश मारवर्मन कुलशेखर के शासन काल में दक्षिण भारत की यात्रा की। इसने पांड्य साम्राज्य की समृद्धि, विदेश व्यापार एवं सम्राट की न्याय व्यवस्था की प्रशंसा की है।

राल्फ फिच (1583–1591) ई.

यह फतेहपुर सीकरी और आगरा पहुंचने वाला पहला अंग्रेज व्यापारी था। उसने भारत के विभिन्न भागों का भ्रमण किया। यह मुगल शासक अकबर के शासन काल में भारत आया था।

विलियम हॉकिन्स (1608–1611 ई.)

यह जहांगीर के दरबार में ब्रिटिश राजा जेम्स I का राजदूत था। यह भारत में अंग्रेजों के व्यापारिक अधिकारों की सुरक्षा के लिए भारत आया था।

जीन बैप्टिस्ट ट्रैवर्नियर (1638–1663)

फ्रांसीसी यात्री जीन बैप्टिस्ट ट्रैवर्नियर ने 1638 से 1683 के बीच भारत की छः बार यात्रा की है। वह पेशे से जौहरी था तथा उसने शाहजहां के शासन काल में भारत की यात्रा की थी। उसने अपने यात्रा वृतांत में ट्रेवल्स इन इंडिया' जिसका प्रथम प्रकाशन 1676 ई. में हुआ, में शाहजहां और औरंगजेब के शासनकाल का विस्तार से विवरण प्रस्तुत किया है। उसने समुद्री मार्गों, सिक्कों, माप तौल, निर्यात व्यापार और यातायात के विषय में भी विस्तृत वर्णन किया है।

फ्रांसिस वर्नियर (1620–1688 ई.)

यह फ्रांसीसी यात्री पेशे से चिकित्सक था। यह शाहजहां के दरबार में आया था। दारा शिकोह और औरंगजेब के बीच होने वाले उत्तराधिकार की लड़ाई का साक्षी था। उसने मुगल साम्राज्य का विस्तृत वर्णन "ट्रेवल इन द मुगल एम्पायर" नाम की पुस्तकों में किया है। मध्यकाल में अनेक यूरोपीय यात्रियों का भारत आगमन हुआ। उनके यात्रा विवरणों से तत्कालीन सामाजिक और आर्थिक स्थिति की महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है।

1.3.1 साम्राज्यवादी उपागम (दृष्टिकोण)

उन्नीसवीं शताब्दी में विकसित देशों की अन्य देशों पर आर्थिक व राजनीतिक प्रभुत्व स्थापित करने की प्रवृत्ति के कारण इतिहासकारों में इतिहास के साम्राज्यवादी दृष्टिकोण को महत्व प्राप्त हुआ। यह उपागम ब्रिटिश इतिहासकारों द्वारा अपनाया गया। जिसका प्रमुख उद्देश्य ब्रिटिश साम्राज्य को स्थायित्व एवं मजबूती प्रदान करना था। ये औपनिवेशिक संस्कृति की पुनर्रचना और नियंत्रण स्थापित करने के तरीके थे। प्रश्न यह उठता है कि साम्राज्यवादी इतिहास लेखन की आवश्यकता के क्या कारण थे?

(1) फूट डालो एवं शासन करो की नीति– अंग्रेजों ने भारत में अपने साम्राज्य का विस्तार किया, उन्हें इस कार्य में बहुत लंबा वक्त लगा। अंग्रेजों के भारत में साम्राज्य स्थापित होने के कारण हिंदू और मुसलमानों में एकता का विकास हुआ, जिसका परिणाम 1857 की क्रांति में दिखाई देता है। 1857 की क्रांति ने अंग्रेजी साम्राज्य की नींव हिला दी। क्रांति का विश्लेषण किया तो पाया कि 1857

टिप्पणी

की क्रांति के पीछे हिंदू–मुस्लिम एकता है। अतः साम्राज्यवादी लेखकों ने "फूट डालो एवं शासन करो की नीति के आधार पर लेखन कार्य शुरू किया और उन्होंने मध्यकालीन इतिहास के उन पक्षों का लेखन कार्य करना शुरू किया जिनमें मुसलमान शासकों ने हिंदुओं के ऊपर अत्याचार किया और उनकी धर्म, संस्कृति, सभ्यता को नष्ट करने का प्रयास किया तथा उनका आर्थिक शोषण किया। इस प्रकार अपने लेखन द्वारा हिंदू–मुस्लिम की एकता को तोड़ने का प्रयास किया और अंग्रेजी श्रेष्ठता को स्थापित करने का प्रयास किया।"

(2) उपयोगितावादी दृष्टिकोण– रोमिला थापर के अनुसार "उपयोगितावादियों का पक्का विश्वास था कि भारत में अंग्रेजों का आगमन एक दैवीय सुयोग था। उनका मानना था कि ब्रिटिश प्रशासन और कानून से भारत का पिछड़ापन खत्म हो जायेगा। और अब तक के निरंकुश शासकों का अटूट सिलसिला समाप्त हो जायेगा तथा भारत के जनगण में राजनीतिक चेतना का संचार होगा।"

उपयोगितावादी दृष्टिकोण से भारत का इतिहास लिखने का श्रेय उपयोगितावादी दार्शनिक 'जेम्स मिल' को जाता है। उसने छः खंडों में ग्रंथ– ब्रिटिश भारत का इतिहास History of British India की रचना उपयोगितावादी दृष्टिकोण से ईस्ट इंडिया कंपनी के प्रशासन को ध्यान में रखते हुए की है। 'जेम्स मिल' प्रथम व्यक्ति था जिसने भारतीय इतिहास के प्राचीन, मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास को क्रमशः हिंदू सभ्यता, मुस्लिम सभ्यता एवं ब्रिटिश सभ्यता का नाम देकर साम्प्रदायिकता फैलाने का प्रयास किया है।

(3) साम्राज्यवादी इतिहासकार द्वारा लेखन– साम्राज्यवादी इतिहासकारों का इतिहास लेखन का उद्देश्य ब्रिटिश साम्राज्य को स्थायित्व प्रदान करना था। वे अपने लेखन द्वारा यह बताना चाहते थे कि भारत का विकास ब्रिटिश शासन के अधीन रहकर ही हो सकता है। उन्होंने उन्हीं साक्ष्यों का अनुप्रयोग किया जो उनकी साम्राज्यवादी अवधारणा के हित में थे।

'विन्सेंट–स्मिथ की कृति' 'अर्ली हिस्ट्री ऑफ इंडिया (1924) में अपने साम्राज्यवादी दृष्टिकोण का परिचय दिया है।

अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी का विश्व साम्राज्यवादी भावना से भरा हुआ था जो उस समय के साम्राज्यवादी विचारकों के लेखन में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है।

(क) इलियट एंड डाउसन :

सर हेनरी इलियट एवं हेनरी डाउसन अंग्रेजी साम्राज्य में कलेक्टर के पद पर कार्यरत था। दोनों ने मिलकर 8 खंडों में The History of India as told by its own Historian ग्रंथ लिखा है। इसके प्रथम दो खंडों में प्राचीन भारतीय इतिहास के स्रोतों की व्याख्या की गई है। खंड 3 व 4 में सल्तनतकालीन इतिहास दिया गया है। खंड 4, 5 एवं 6 में सल्तनतकाल में जहांगीर के काल तक की विस्तृत व्याख्या की गई है। खंड 7 में शाहजहां एवं औरंगजेब कालीन इतिहासकारों के ग्रंथों का विवेचन है। इसमें 'अब्दुला हमीद लाहोरी एवं खाफी खां को अधिक स्थान दिया गया है। खंड 8 में उत्तर मुगल सम्राटों से लेकर 19वीं सदी के मध्य तक के ग्रंथों का विश्लेषण है।

टिप्पणी

दोनों के इतिहास लेखन का उद्देश्य साम्राज्यवादी था। उन्होंने अरबी एवं फारसी भाषा को सीखकर मध्यकाल के ग्रंथों का अध्ययन किया तथा उन्होंने उन्हीं पक्षों को भारतीय जनमानस के समक्ष प्रस्तुत किया जिनमें मुस्लिमों द्वारा हिंदुओं पर अत्याचार किया गया था या उनका आर्थिक शोषण किया। ऐसे बहुत से उदाहरण हमारे सामने हैं जैसे– अलाउद्दीन खिलजी द्वारा हिंदू पदाधिकारियों से कर वसूलने के अधिकार को छीन लेना। हिंदुओं से जजिया कर लेना आदि उन बहुत से तर्कों को प्रस्तुत किया गया है जिसमें हिंदू और मुसलमानों की एकता को खत्म किया जा सके और अंग्रेजों की साम्राज्यवादी प्रवृत्ति को भारतीयों के ऊपर लादा जा सके।

(ख) विलियम हैरीसन मोरलैण्ड–

विलियम हैरिसन मोरलैण्ड एक ब्रिटिश सिविल सेवक था, जिसने भारतीय सिविल सेवा में कार्य करते हुए मुगल, डच और पुर्तगाली स्रोतों के आधार पर भारत के आर्थिक इतिहास का अध्ययन कर कई पुस्तकें लिखी हैं। मोरलैण्ड का जन्म उत्तरी आयरलैण्ड के बेलफास्ट में हुआ था। कई वर्षों तक वे भारतीय भूमि लगान कार्य से जुड़े रहे तथा मध्य भारत में सलाहकार के रूप में कार्य किया। इंग्लैण्ड लौट कर उन्होंने भारतीय इतिहास का अध्ययन किया।

उनके द्वारा प्रकाशित पुस्तकें :

(1) The Agriculture of the United Provinces (1904)

(2) The Revenue Administration of the United Provinces. 1911

(3) नोट्स ऑन एग्रीकल्चर का कंडीशन्स एंड प्रॉब्लम्स ऑफ द यूनाइटिड प्रॉविन्सेज 1913.

(4) एन इंट्रोडक्शन टू इकानामिक्स फॉर इंडियन स्टूडेंट्स (1913)

(5) इंडिया एट द डेथ ऑफ अकबर : एन इकोनॉमिक स्टडी (1920)

(6) इंडिया फ्रॉम अकबर टू औरंगजेब (1923)

(7) द अग्रेरियन सिस्टम ऑफ मुस्लिम इंडिया 1929

इन पुस्तकों के माध्यम से मोरलैण्ड ने मुगलकालीन अर्थव्यवस्था के संदर्भ में विस्तृत व्याख्या की। उसने अकबर के समय आम जनता की स्थिति, व्यापार एवं उद्योगों पर मुगल प्रशासन का प्रभाव, कृषि एवं गैर कृषि उत्पादन, वाणिज्यिक स्थिति का विवरण दिया है।

इसके अतिरिक्त इनकी एक और कृति 'इंडिया फ्रॉम अकबर टू औरंगजेब' में भी इनका साम्राज्यवादी दृष्टिकोण सामने आता है। उन्होंने कृषकों की दयनीय स्थिति एवं उनसे अत्यधिक मात्रा में कर वसूलना, भ्रष्टाचार तथा भारतीय अमीरों की 'फिजूलखर्ची' का वर्णन किया है। वह यह भी कहता है कि भारतीय शासक इन प्रवृत्तियों को रोकने में सक्षम नहीं थे।

मध्यकालीन आर्थिक इतिहास की साम्राज्यवादी लेखन की परंपरा को मोरलैण्ड, इलियट, डाउसन, जेम्स मिल, कूपलैण्ड एवं विन्सेंट स्मिथ ने अपनी कृतियों में प्रमुख स्थान दिया।

टिप्पणी

1.3.2 राष्ट्रवादी उपागम (दृष्टिकोण)

राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने कड़ी मेहनत और श्रम से विद्वतापूर्ण ढंग से भारत का इतिहास लिखा। उनके अनुसंधान ने अतीत के बारे में हमारी समझ और व्याख्या को बढ़ाया। वे हमारी संस्कृति के औपनिवेशीकरण के खिलाफ सांस्कृतिक ढाल बनकर खड़े हुए। उन्होंने यह अवधारणा विकसित की कि ऐतिहासिक अनुसंधान और लेखन का प्रासंगिक होना और वर्तमान से जुड़ा होना आवश्यक है।

साम्राज्यवादी इतिहासकारों ने पूर्वाग्रह से जो इतिहास लेखन किया और ब्रिटिश शासन की तुलना में भारत के अतीत को कमतर सिद्ध करने का प्रयास किया, उसका जवाब राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने अपनी लेखनी के माध्यम से दिया।

रामशरण शर्मा ने राष्ट्रवादी इतिहास लेखन के पक्ष में अपना मत देते हुए कहा– "साम्राज्यवादी इतिहासकारों द्वारा इतिहास की एकपक्षीय व्याख्या भारतीय विद्वानों के लिए एक चुनौती के समान थी। वे एक ओर उपनिवेशवादियों द्वारा इतिहास को तोड़–मरोड़कर भारत की अतीत की छवि को धूमिल किये जाने से चिढ़े हुए थे तो दूसरी ओर भारत के पतनोन्मुख सामंती समाज और इंग्लैण्ड के फलते–फूलते समाज के मध्य छोर वैषम्य देख कर दुखी भी थे। बहुतेरे विद्वान दृढ़ संकल्प के साथ मैदान में उतरे। उनका संकल्प भारतीय समाज को सुधारना ही नहीं था बल्कि यह भी था कि भारत के प्राचीन इतिहास का इस प्रकार पुनर्निर्माण किया जाये कि उससे समाज को सुधारने में, और इससे बढ़कर स्वराज्य प्राप्त करने में सहायता मिले।"

इस प्रकार राष्ट्रवादी इतिहास लेखन ने आत्मविश्वास, आत्मभिव्यक्ति और कुछ हद तक राष्ट्रीय गौरव और चेतना को विकसित करने में मदद की। जिसने उपनिवेशवाद के खिलाफ संघर्ष करने के लिए भारतीय जनता की इच्छा शक्ति को मजबूती प्रदान की।

इलाहाबाद स्कूल ऑफ हिस्ट्री– इलाहाबाद स्कूल ऑफ हिस्ट्री (इलाहाबाद मत) ने राष्ट्रवादी इतिहास लेखन के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। डा. ताराचंद्र इलाहाबाद मत के समर्थक थे, ने Influence of Islam on Indian Culture लिखकर राष्ट्रवादी विचारों को दृढ़ता प्रदान की। इस मत के समर्थक अन्य इतिहासकार डॉ. आर. पी. त्रिपाठी की कृति– 'राइज एंड फाल ऑफ द मुगल एम्पायर' (1956), बेनी प्रसाद की कृति 'जहांगीर' एवं बनारसी प्रसाद सक्सेना की कृति 'शाहजहां' उनके राष्ट्रवादी विचारों को बताती हैं।

इलाहाबाद मत एवं अन्य मध्य कालीन आर्थिक इतिहास के ग्रंथों में राष्ट्रवादी उपागम को शामिल किया गया है। अनेक राष्ट्रवादी इतिहासकारों के लेखनों में मध्यकाल और मुस्लिमों के प्रति वैमनस्य की भावना झलकती थी, जो कहीं से भी ऐतिहासिक नहीं थी। गांधीवादी युग आते–आते इस प्रवृत्ति के इतिहास लेखन की आलोचना होने लगी। महात्मा गांधी ने स्वयं भी विभाजनकारी साम्राज्यवादी इतिहास लेखन को एक खतरे की भांति देखा और भारत का सही इतिहास लिखने की प्रेरणा दी। गांधीवादी राष्ट्रवाद से प्रभावित भारतीय इतिहासकारों ने धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रवादी इतिहास लेखन की नींव डाली। मध्यकालीन इतिहास को गैर–साम्प्रदायिक ढंग से पुनर्विश्लेषित करने के प्रयास में ताराचंद्र का इतिहास लेखन सर्वोपरि था। उन्होंने मध्यकालीन इतिहास में हिंदू–मुस्लिम समन्वय को मुख्य विषय बनाया।

टिप्पणी

इन प्रवृत्तियों के अतिरिक्त आर्थिक इतिहास लेख, की प्रवृत्ति का विकास हुआ। दादा भाई नौरोजी ने अपने ग्रंथ 'द पावर्टी एण्ड अनब्रिटिश रूल इन इंडिया में भारत के आर्थिक शोषण का वर्णन किया। आर.सी दत्त की पुस्तक 'इकानामिक्स ऑफ इंडिया' में भी भारत के आर्थिक इतिहास की महत्वपूर्ण जानकारी मिलती है। इन परंपराओं ने भारत में राष्ट्रवादी इतिहास लेखन की आधारशिला रखी।

आर.सी. दत्त ने अपना लेखन मूलतः अंग्रेज अधिकारियों के लेखों एवं सरकारी आँकड़ों के आधार पर ब्रिटिश कालीन भारत की अर्थव्यवस्था के बारे में लिखने का प्रयास किया है। 1901–02 के मध्य लिखी गई इस पुस्तक में औपनिवेशिक भारत की अर्थव्यवस्था के लगभग सभी पक्षों– कृषि, उद्योग, वाणिज्य को छूने का प्रयास किया गया था। उन्होंने माना कि भू–राजस्व की नीतियां भारत में कृषि की दुर्गति का प्रमुख कारण हैं। इन्हीं आर्थिक मुद्दों को उठाकर गांधी जी ने स्वदेशी आंदोलन एवं विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार को राष्ट्रीय आंदोलन का प्रमुख हथियार बनाया।

1.3.3 मार्क्सवादी उपागम (दृष्टिकोण)

'कार्ल हेनरिक मार्क्स (1818–1883)– समय–समय पर विभिन्न दार्शनिकों ने, अपनी–अपनी विचारधाराओं से अपने युग को प्रभावित किया है। वर्तमान युग में इतिहास लेखन पर कार्ल मार्क्स का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। कार्ल मार्क्स इतिहास दर्शन का महान विचारक, नैतिकता का महान समर्थक और सामाजिक विचारधारा का प्रबल अनुयायी था। इसके इतिहास की अवधारणा में आदर्शवाद के स्थान पर भौतिकवाद पाया जाता है। मार्क्स का दृष्टिकोण वैज्ञानिक था।

मार्क्स की विचारधारा के निम्नलिखित बिंदु हैं–

(1) द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद– मार्क्स 'विचार' को इस जगत का आधार नहीं मानता अपितु भौतिक पदार्थ को आधार स्वीकार करता है। उसका भौतिकवाद द्वन्द्वात्मक है। हीगल ने द्वन्द्वात्मक सिद्धांत को अपने विचारों के अनुरूप परिवर्तित करके उन्हें नये रूप में प्रस्तुत किया है।

विशेषताएं

(1) प्रकृति अचानक एकत्रित की गई वस्तुओं का संग्रह न होकर परस्पर सम्बद्ध पदार्थों पर निर्भर है।

(2) वह भौतिक पदार्थों की गतिशीलता में विश्वास करते हैं। धूल कण से लेकर सूर्य पिंड तक प्रत्येक पदार्थ परिवर्तनशील है।

(3) यह परिवर्तन मात्रात्मक और गुणात्मक दोनों पद्धतियों से होता है तथा मात्रा से गुणा की ओर परिवर्तन अचानक होता है।

(4) प्रत्येक वस्तु के सकारात्मक और नकारात्मक दो पक्ष होते हैं जिनके मध्य अन्तर्विरोध के कारण निरंतर द्वन्द पाया जाता है।

(2) मार्क्स के इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या– मार्क्स ने इतिहास के संबंध में अपने विचार स्पष्ट करते हुए यह उल्लेख किया है कि इतिहास एक प्रक्रिया है जो अन्य प्राकृतिक प्रक्रियाओं से इस अर्थ में भिन्न है कि– "वह मनुष्य को अपने लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए की जाने वाली क्रिया है।"

टिप्पणी

मार्क्स ने इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या करते हुए ऐतिहासिक भौतिकवाद के दो पक्ष निर्धारित किये हैं। प्रथम स्थायी और द्वितीय अस्थायी। इसमें से प्रथम के अन्तर्गत उसका संगठन का सिद्धांत आता है और दूसरे में सामाजिक विकास का सिद्धांत। वास्तव में भौतिकवाद का तात्पर्य व्यक्ति के उस अस्तित्व से है जो सामाजिक संबंधों के द्वारा परिभाषित होता है। उसका यह भी मानना है कि व्यक्ति आर्थिक शक्तियों का दास है। समस्त ऐतिहासिक घटनाओं एवं मानवीय जीवन की व्याख्या भौतिक अवस्थाओं की दृष्टि से की जा सकती है।

(3) **वर्ग संघर्ष की अवधारणा**– समाज में सदैव दो वर्गों का अस्तित्व विद्यमान रहा है– प्रथम पूंजीवादी वर्ग और द्वितीय श्रमिक वर्ग। प्रथम वर्ग का आर्थिक एवं उत्पादन के समस्त साधनों पर एकाधिकार होता है और वह मनमाने ढंग से द्वितीय वर्ग के गरीब लोगों का शोषण करता है। इस शोषित वर्ग को सर्वहारा वर्ग के नाम से जाना जाता है। इन दोनों वर्गों में परस्पर सदैव संघर्ष होता रहता है।

(4) **अतिरिक्त मूल्य का सिद्धांत**– मार्क्स के पूर्वगामी अर्थशास्त्रियों का यह विश्वास था कि जिस प्रकार भौतिक विज्ञानों में प्रत्येक पदार्थ में कुछ निहित गुण माने गये हैं, उसी प्रकार प्रत्येक वस्तु में श्रम, कीमत और लाभ निहित होता है। अपने सिद्धांत के अनुसार, मार्क्स पूंजीवादी व्यवस्था में श्रमिकों के शोषण की प्रक्रिया को प्रदर्शित करना चाहता था।

(5) **मार्क्स की राज्य की अवधारणा**– हीगल के अनुसार राज्य एक सर्वोच्च संस्था है। वह राज्य को इस पृथ्वी पर ईश्वर का अवतार स्वीकार करता है। परंतु मार्क्स की मान्यता है कि राज्य एक वर्ग का दूसरे वर्ग के दमन और शोषण का संग है। मार्क्स राज्य को वर्ग संघर्ष की उत्पत्ति और अभिव्यक्ति मानता है।

मार्क्स का मूल्यांकन– मार्क्स अपने समय के महानतम दार्शनिकों और चिंतकों में से एक हैं। वह समाजवादी, अर्थशास्त्री होने के साथ वह एक राजनीतिक वैज्ञानिक भी था। उसने प्रत्येक ऐतिहासिक समस्या को वैज्ञानिक पद्धति से समझा और एक राज्य विहीन और वर्ग विहीन समाज की रचना का स्वप्न देखा। मार्क्स ने अपना ध्यान आर्थिक पहलुओं पर केंद्रित किया।

प्रमुख मार्क्सवादी इतिहासकार– "प्रतिभाशाली इतिहासकारों के मार्क्सवाद के प्रति आकर्षण से मैं प्रभावित हूं और मुझे यह स्वीकार करने में कोई संकोच नहीं है कि प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन में अनेक उत्कृष्ट शोध मार्क्सवादी विद्वानों की देन हैं। हाल के दशकों में इतिहास विषय की गंभीरता बनाये रखने और इसके अध्ययन–अध्यापन तथा शोध के उच्च प्रतिमान स्थापित करने में मार्क्सवादी इतिहासकारों का निश्चित योगदान है।"

मार्क्सवादी उपागम के प्रमुख इतिहासकार 'इरफान हबीब' हैं। उनके संपादन में राजकमल प्रकाशन दिल्ली से 7 अंकों में मध्यकालीन भारत प्रकाशित हुआ है। राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली से ही इरफान हबीब की पुस्तक– "मध्यकालीन भारत का आर्थिक इतिहास एक सर्वे द्वारा" प्रकाशित हुआ है। इस कृति में भी इरफान हबीब का मार्क्सवादी उपागम प्रखरता के साथ परिलक्षित होता है। इसके अलावा उनकी कृति

'भारतीय इतिहास में मध्यकाल' तथा 'Agrarin System of Mughal India (1556–1767)' में भी मुगलकालीन कृषि व्यवस्था, भूराजस्व प्रणाली, व्यापार एवं कृषकों की दशा की विवेचना प्रस्तुत की गई है।

टिप्पणी

डॉ. विपिनचंद्र को मार्क्स का महत्वपूर्ण अनुयायी स्वीकार किया जा सकता है। उसने अपने एक लेख में मार्क्स के विचारों का विश्लेषण किया है। रजनीपामदत्त ने अपनी पुस्तक 'आज का भारत' में राष्ट्रवाद के विभिन्न पहलुओं का खुलकर वर्णन किया। उनकी मान्यता है कि मार्क्सवादी पद्धति सर्वाधिक वैज्ञानिक है और इसी के अनुसार, भारत में राष्ट्रवाद के उदय के कारणों का उचित मूल्यांकन संभव है। उसने आर्थिक विपन्नता के लिए अंग्रेजों को उत्तरदायी माना है।

अपनी पुस्तक 'भारतीय राष्ट्रवाद का उद्‌भव और विकास' में 'विपिन चंद्र ने राष्ट्रीय आंदोलन के आर्थिक पक्ष की खुलकर विवेचना की है। उन्होंने ब्रिटिश शासन की रूमानी धारणा का खंडन करते हुए भारत के राष्ट्रीय नेता 'दादाभाई नौरोजी', महादेव गोविंद रानाडे, गोपाल कृष्ण गोखले आदि द्वारा ब्रिटिश शासन की आर्थिक शोषण की नीतियों के विरोध की प्रशंसा की है।

डॉ. ए.आर. देसाई ने अपनी पुस्तक 'भारतीय राष्ट्रवाद का सामाजिक पृष्ठधार' में ऐतिहासिक भौतिकवाद को विश्लेषण का आधार स्वीकार करते हुए भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के सामाजिक एवं धार्मिक पक्ष का विस्तृत वर्णन किया है।

डॉ. सुमित सरकार ने भी अपने ग्रंथ 'बंगाल में स्वदेशी आंदोलन' में अपने मार्क्सवादी विचारों का विस्तृत वर्णन किया है। इसके अलावा अखिलेख त्रिपाठी और वरुण ने 'स्वाधीनता संग्राम' शीर्षक के नाम से पुस्तक लेखन का कार्य किया है। उन्होंने मार्क्सवादी पद्धति का अनुसरण करते हुए राष्ट्रीय आंदोलन का कम से कम पृष्ठों में श्रेष्ठ और संतुलित वर्णन किया है।

इस प्रकार मार्क्सवादी उपागम भारत के आर्थिक इतिहास की जानकारी के महत्वपूर्ण स्रोत हैं। मार्क्सवादी इतिहासकारों ने इस बात को रेखांकित किया कि अपना खुद का इतिहास गढ़ने में आम आदमी की सक्रिय भूमिका है। इस संदर्भ में कहा जा सकता है कि सही अर्थों में उन्होंने जन इतिहास का पथ प्रदर्शन किया। इतिहास लेखन के सिद्धांत और व्यवहार में उनका सामूहिक योगदान बहुत महत्व का है और इसने सारी दुनिया के इतिहास लेखकों के लिए एक नयी प्रवृत्ति का रास्ता दिखाया है।

अपनी प्रगति जांचिए

6. इनमें से साम्राज्यवादी इतिहासकार कौन है?

(क) इलियट (ख) अनिल सील

(ग) कोलाब्रुक (घ) कूपलैण्ड

7. राष्ट्रवादी इतिहास लेखन के इलाहाबाद मत से संबंधित इतिहासकार हैं–

(क) आर.पी. त्रिपाठी (ख) ताराचंद

(ग) के.पी. जायसवाल (घ) ए.सी. मजूमदार

8. इतिहास के मार्क्सवादी उपागम का अनुप्रयोग किसने किया है–

(क) रोमिला थापर (ख) आर.एस. शर्मा

(ग) इरफान हबीब (घ) उपर्युक्त सभी ने

9. मिनहाज–ए–सिराज की कृति का नाम क्या था?

(क) रहेला (ख) अकबरनामा

(ग) तबकात–ए–नासिरी (घ) तारीख–ए–फिरोजशाही

10. अबुल फजल किसके दरबार में था–

(क) शाहजहां (ख) अकबर

(ग) जहांगीर (घ) औरंगजेब

1.4 मध्यकालीन भारत में राज्य की प्रकृति, राजत्व का सिद्धांत, वैधता की समस्या, दबाव समूह, राज्य और क्षेत्रीय अस्मिता तथा भारतीय मूल के सिद्धांतों का उद्‌भव

मध्यकाल में मुस्लिम आक्रमण ने एक नए शासक वर्ग को स्थापित किया। यह वर्ग प्रभुत्वशाली एवं सत्तासीन था या वे हर पहलू में भारतीय परंपराओं से विपरीत थे। उन्होंने भारतीय परंपरा में आत्मसात होने की अपेक्षा भारतीयों को अपने में आत्मसात करना प्रारंभ कर दिया। इस प्रकार भारत में पहली बार शक्तिशाली मध्ययुगीन मुस्लिम राज्य का निर्माण हुआ। इस राज्य के पास विराट सुसज्जित सेना थी तथा उलेमा के पवित्र आशीर्वाद से संपन्न दिल्ली के शासक को अपनी प्रजा पर असीमित अधिकार प्राप्त था। भारतीय इतिहास में इस्लाम का आगमन एक वैचारिक परिवर्तन के रूप में भी देखा जाता है।

भारत में मुगल साम्राज्य की नींव डालने वाले सम्राट बाबर, हुमायूं का अधिकांश समय युद्धों में व्यतीत हुआ। अतः उन्होंने पूर्ववर्ती सुल्तानों द्वारा निर्मित राजनीतिक ढांचे में कोई उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं किये। मुगल शासकों ने सल्तनतकालीन राजपद संबंधी अवधारणा में परिवर्तन किया। सल्तनत कालीन शासक खलीफा को मान देते थे और उसकी अदृश्य प्रमुखता को स्वीकार कर स्वयं को सुल्तान कहते थे। इसके विपरीत मुगल बादशाही ने अपने आपको अब्बासी खिलाफत से सम्बद्ध करने की आवश्यकता नहीं समझी और 'बादशाह' की उपाधि धारण की और केंद्रीयकृत शासन प्रणाली की स्थापना की।

1.4.1 सल्तनत कालीन राज्य की प्रकृति

"ऐसा राज्य जिसके संविधान में ईश्वर को ही एकमात्र सत्ताधीश माना जाता है और राज्य के कानूनों को मानवीय अध्यादेश की अपेक्षा दैविक आदेश ही अधिक समझा जाता है, पुरोहित–वर्ग अनिवार्य रूप से अदृश्य शासक बन जाता है।"

डॉ. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव

टिप्पणी

दिल्ली सल्तनत के शासन काल की स्थापना 1206 में हुई तथा 1526 तक यह शासन व्यवस्था चलती रही। कुतुबुद्दीन ऐबक भारत में मुस्लिम साम्राज्य का संस्थापक माना जाता है। और दिल्ली में क्रमशः गुलाम वंश, खिलजी वंश, तुगलक वंश, सैय्यद एवं लोदी वंश ने शासन किया। प्रश्न यह उठता है कि भारत वर्ष में नवस्थापित मुस्लिम साम्राज्य का स्वरूप कैसा था? विभिन्न इतिहासकारों ने अपने तर्क प्रस्तुत कर दिल्ली सल्तनत की प्रकृति का वर्णन किया है।

दिल्ली सल्तनत धर्म पर आधारित राज्य– मध्य काल में भारत में मुस्लिम राज्य का स्वरूप धर्म–निरपेक्ष न होकर मुस्लिम धर्म से संबंधित था। संपूर्ण मध्यकाल में इस्लाम राज्य धर्म बना रहा, इसलिए डॉ. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव ने लिखा है– "मध्ययुगीन भारतीय राज्य एक मजहबी राज्य था।" अन्य देशों की भांति भारत का राज्य धर्मतांत्रिक था। इसके विपरीत डॉ. कुरैशी का मत है कि "दिल्ली सल्तनत धर्म पर केंद्रित अवश्य थी, परंतु पूर्णतया धर्म पर अवलम्बित नहीं थी, क्योंकि धर्मावलंबित राज्य की मुख्य विशेषता यह है कि वहां दीक्षित पुरोहित–वर्ग का शासन होना चाहिए।"

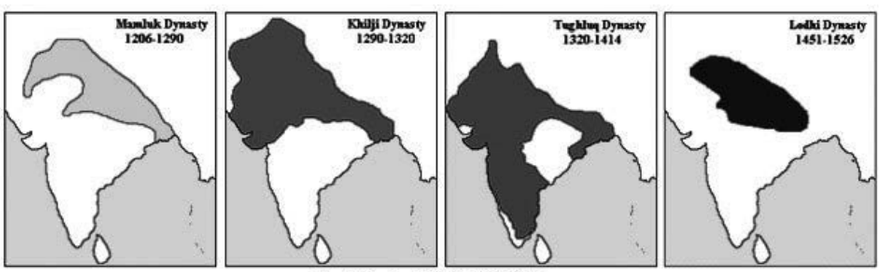

The Sultanate of Delhi, 1206-1526

वस्तुतः संपूर्ण मध्य युग में स्थिति एक सी नहीं रही अपितु विभिन्न सुल्तानों के काल में उसका स्वरूप परिवर्तित होता रहा है। अलाउद्दीन खिलजी ने भी सल्तनत युग में धर्म को राजनीतिक से अलग कर दिया था परंतु वह उस समय की राजनीतिक आवश्यकता थी।

डा. आर.पी. त्रिपाठी– "मुस्लिम राज्य मजहबी था। मुसलमानों द्वारा अपनाए गए अथवा विकसित किए गए समस्त संस्थानों का उद्देश्य उन धार्मिक कानूनों की सेवा करना था जिनका जन्म उनसे पूर्व हो चुका था।"

मजहबी राज्य में वास्तविक शासक 'खुदा' होता था और शासक उसका एकमात्र प्रतिनिधि स्वीकार किया जाता था जिसका कर्तव्य कुरान के अनुकूल उस देश पर शासन करना होता था। वह इस्लाम का रक्षक और उसके सम्मान को बढ़ाने वाला माना जाता था। अपने व्यक्तिगत जीवन एवं शासन, दोनों में उसे शरियत का अनुकरण करना पड़ता था।

अपनी पुस्तक The Central Structure of the Mughal Empire में इबन हसन ने लिखा है कि शरीयत के दो पहलू थे। एक तो शरा के ज्ञान का विस्तार करना था और दूसरा शरीअत को राज्य में लागू करना था। उसके लिए बहुत से विद्वानों की आवश्यकता थी जो कि शूरा के ज्ञान को फैला सकें।

जजिया कर– सिंध के विजेता आक्रमणकारी मुहम्मद बिन कासिम को भारत में प्रवेश के पश्चात यहां की अधिकांश हिंदू जनता का वध करना उचित नहीं लगा। अतः उसने

हनीफा से अधिकांश हिंदुओं को आंशिक स्वतंत्रता प्रदान करने का अधिकार प्राप्त कर लिया। अतः हिंदू प्रजा जजिया कर अदा करे तब इस्लामिक राज्य में निवास कर सकती है। इसके पश्चात समस्त मुस्लिम विजेताओं ने इसका अनुकरण किया।

टिप्पणी

हिंदुओं की दयनीय स्थिति– डॉ. ईश्वरी प्रसाद ने लिखा है– "मूर्ति पूजा का विनाश, इस्लाम विरोधी धर्मों का विध्वंस और काफिरों का धर्म–परिवर्तन, आदर्श मुस्लिम राज्य के कार्य–स्वीकार किये गये हैं।"

मुस्लिम शासकों के हिंदुओं के प्रति, भेदभावपूर्ण व्यवहार के कारण हिंदुओं की दयनीय स्थिति हो गई थी। हिंदुओं को ऐसी निम्न स्थिति में डाल दिया गया था कि उन्हें खुले और सार्वजनिक रूप से अपने धार्मिक रीति–रिवाजों का पालन करने, वैध रूप से धर्म प्रचार करने, नये मंदिरों को बनाने या पुरानों की मरम्मत की अनुमति नहीं थी। वास्तव में उन्हें राज्य का नागरिक ही नहीं समझा जाता था। उनके साथ अछूतों जैसा व्यवहार किया जाता था।

सल्तनतकालीन राज्य मजहबी होने के कारण उलेमाओं को राज्य में अनेक विशेषाधिकार प्राप्त थे। शेख–उल इस्लाम उलेमाओं का प्रतिनिधि था। मुस्लिम राज्य में उसका महत्वपूर्ण स्थान था। सुल्तान शरियत संबंधी मामलों में उलेमाओं की सलाह लेता था तथा उनके निर्णय को टाल देने की उसमें सामर्थ्य नहीं होती थी।

खलीफा– सल्तनत काल के सुल्तानों ने सिद्धांततः अपने आपको खलीफा का अधीनस्थ स्वीकार किया परंतु व्यावहारिक रूप में पूर्णतया स्वतंत्र थे। उन्होंने समय–समय पर खलीफा के नाम का सहारा लेकर मनमाने अत्याचार किये। खलीफा मुस्तासिम के समय तक शासकों द्वारा खलीफा के नाम का सहारा लेकर अत्याचार चलता रहा। इसके अतिरिक्त महत्वपूर्ण स्थिति में होने के कारण इमाम का भी महत्वपूर्ण स्थान था, जिसका उल्लेख करते हुए डा. त्रिपाठी ने लिखा है "वह मुस्लिम धर्म की रक्षा करते हुए राज्य पर शासन करता था। विधि ज्ञाताओं ने उसे सैनिक व असैनिक दोनों प्रकार की शक्तियां प्रदान की थीं। वह दूसरे देशों से युद्ध कर सकता था अथवा संधि स्थापित कर सकता था। वह सैनिक व असैनिक कर्मचारियों को नियुक्त अथवा पदच्युत कर सकता था। कर लगा सकता था और झगड़ों का निर्णय कर सकता था। वह लोगों के हितों की रक्षा और इस्लाम की एकता और पवित्रता को बनाये रखने के उपाय कर सकता था। अतः वह बहुत ही शक्तिशाली होता था।"

उलेमाओं का योगदान– उलेमा मुस्लिम समाज के धर्मज्ञ होते थे। इनको 'इस्तारुवान्दा' के नाम से पुकारा जाता था। न्याय, धर्म, शिक्षा, संबंधी उच्च पदों पर इनका एकाधिकार होता था। कुरान, हदीस आदि मुस्लिम धर्मग्रंथों में निपुण व्यक्ति ही इस पद के अधिकारी होते थे।

सल्तनत काल में उलेमा वर्ग समाज का अत्यंत प्रभावशाली अंग था। अलाउद्दीन खिलजी के अतिरिक्त सभी दिल्ली सल्तनतकालीन सुल्तान उलेमाओं की आज्ञा का पालन करते थे। उन्होंने सुल्तान के पद की प्रतिष्ठा एवं गौरव को बढ़ाने में बहुत योगदान दिया। सुल्तान नासिरुद्दीन ने सफलता प्राप्त करने हेतु बहुमूल्य उपहार देकर उलेमाओं को अपनी ओर मिला लिया या बलवन जैसे कठोर शासक भी उलेमाओं की सहानुभूति प्राप्त किये रखने के लिए प्रयास करता था।

टिप्पणी

अलाउद्दीन खिलजी के शासन काल में उलेमाओं की स्थिति में परिवर्तन आया। उसने अपने संबंध में कहा था "मैं नहीं जानता कि शरियत में क्या है और क्या उसके विरुद्ध है। जो मैं राज्य की अच्छाई के लिए अथवा भलाई के लिए उचित समझता हूं, वही करने का आदेश देता हूं। कयामत के दिन क्या होगा। मैं कुछ नहीं जानता।" इस प्रकार अलाउद्दीन और उसके पुत्र मुबारकशाह के शासन में उलेमा वर्ग का प्रभाव नहीं था।

तुगलक वंश में उलेमाओं की स्थिति में परिवर्तन आ गया था। फिरोज तुगलक ने उलेमाओं को अत्यधिक महत्व दिया।

लोदी वंश में बहलोल लोदी के काल में उलेमाओं के प्रभाव में गिरावट आयी। वहीं सिकंदरलोदी के काल में उनकी शक्ति में पुनः वृद्धि हुई।

इस प्रकार उलेमाओं द्वारा निर्देशित सुल्तानों के मार्ग में अनेक कठिनाइयां आयीं, किंतु मुस्लिम जनता को प्रसन्न रखने के लिए तथा उनकी भावनाओं को ठेस न पहुंचाने की दृष्टि से उलेमाओं को महत्व दिया जाता रहा।

सैनिक शक्ति पर आधारित शासन– दिल्ली सल्तनत की नीति सैनिक शक्ति पर आधारित थी। जिस सुल्तान की सैनिक शक्ति अधिक होती थी और जो अपनी सेना का प्रिय सेनानायक होता था, वही ठीक से शासन कर पाता था। उस समय का शासन प्रेम, सद्भावना और सहानुभूति पर आधारित न था वरन सैनिक बल पर टिका हुआ था।

इस प्रकार कहा जा सकता है सल्तनतकालीन राज्य की प्रकृति उससे संबंधित जन, परंपराओं, धारणाओं के और विश्वासों, शासक वर्ग के चरित्र एवं शासन प्रणाली पर निर्भर रहती है। भारत के राज्यों के संबंध इस्लामी चिंतन अथवा व्यवहारों से काफी प्रभावित थे। यद्यपि वे अपनी कबीलाई/वंशीय परंपराओं से पूरी तरह अलग नहीं हो पाए। उन्होंने अपने राजनीतिक क्रियाकलापों में अत्यंत व्यावहारिकता का परिचय दिया और साथ ही इस्लामी कानून के दायरे में रहने का प्रयास किया।

1.4.2 सल्तनत कालीन राजत्व का सिद्धांत

इस्लाम का उदय मध्यकालीन इतिहास की ही नहीं अपितु विश्व इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना थी इसने भारत के राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक, सांस्कृतिक जीवन को प्रभावित किया। सल्तनत काल की आधारशिला का श्रेय कुतुबुद्दीन ऐबक को जाता है। प्रारंभिक शासक राजत्व के सिद्धांत में कुछ नया नहीं कर पाये। बलबन, अलाउद्दीन खिलजी, मुहम्मद बिन तुगलक जैसे शासकों ने राजत्व के सिद्धांत के विकास की प्रक्रिया में नये–नये सिद्धांतों को सल्तनत कालीन शासन व्यवस्था में जोड़ने का प्रयत्न किया और भारत में उसे गति प्रदान की।

भारत में महमूद गजनबी और मोहम्मद गोरी के आक्रमण से मुस्लिम साम्राज्य का विस्तार हुआ। तत्पश्चात कुतुबुद्दीन ऐबक (1206–1210) शासनकाल कम होने के कारण कोई भी नये नियमों का संचालन नहीं कर पाया।

इल्तुतमिश भी दास कुल से संबंधित था इसी कारण उसने तुर्कान–ए–चहलगामी दल का गठन किया और उसी के बल पर शासन को संचालित किया लेकिन उसकी मृत्यु के पश्चात यह दल अधिक शक्तिशाली होने लगा और कोई भी योग्य शासक सत्ता

टिप्पणी

पर आसीन नहीं हो पाया। वे शासक की शक्ति को ही सीमित करने का प्रयास करने लगे और इस प्रयोग के दौरान उन्होंने एक के बाद एक शासकों की हत्या कर दी। इस प्रकार मध्यकालीन भारत में राज्य के स्वरूप के संबंध में इतिहासकारों में पर्याप्त मतभेद हैं। इतिहासकारों का एक वर्ग राज्य को धर्म प्रधान मानता है, वहीं कुछ अन्य इतिहासकारों का मानना है कि मध्य काल में राज्य का स्वरूप सैनिक था परंतु वास्तव में सुल्तानों ने अपनी परिस्थितियों के अनुसार राजत्व के सिद्धांत निर्धारित किये थे।

बलबन का राजत्व सिद्धांत– जिस समय बलबन दिल्ली के सिंहासन पर बैठा, सुल्तान पद की प्रतिष्ठा पूर्ण रूप से नष्ट हो चुकी थी। दीर्घ राजनीतिक अनुभव ने उसे सिखा दिया था कि तुर्की के अमीरों की शक्ति का नाश किए बिना सुल्तान न तो राजशक्ति का उपभोग कर सकता है और न ही अपनी प्रजा के सम्मान का पात्र बन सकता है। अतः बलबन ने ताज की प्रतिष्ठा और शक्ति में वृद्धि का प्रयास करने का संकल्प लिया।

विशेषताएं–

राजत्व का दैवीय उत्पत्ति का सिद्धांत– बलबन ने राजत्व के दैवीय उत्पत्ति के सिद्धांत को मान्यता दी। यह सिद्धांत फारस के राजत्व सिद्धांत से प्रेरित था। बलबन सुल्तान को पृथ्वी पर अल्लाह का प्रतिनिधि मानता था। उसे 'नियावते खुदाई' कहा जाता था तथा उसे 'जिल्ले इलाही' अर्थात् ईश्वर का प्रतिबिंब भी मानता था। उसका मानना था ईश्वर ने राजसी दायित्वों की पूर्ति के लिए उसे भेजा है। उसका मत था–

"राजा का हृदय ईश्वर–कृपा का विशेष कोष है और समस्त मनुष्य जाति में उसके समान कोई नहीं है। राजत्व निरंकुशता का शारीरिक रूप है। इस प्रकार की निरंकुशता सुल्तान की हत्या का खतरा उत्पन्न करती थी। अतः उसे अपनी सुरक्षा के प्रति सावधान रहना चाहिए और जनता में अपने प्रति भय की भावना जागृत करना चाहिए।"

- **अलौकिकता का प्रदर्शन** : बलबन ने अपने पद और प्रतिष्ठा को एक ऐसी ऊँचाई पर प्रतिष्ठित कर दिया जहां तक पहुंचना आम आदमी के वश में नहीं था। दरबार के शिष्टाचार, अनुशासन तथा मर्यादाओं का पालन करना अनिवार्य था। उसने अपने राजत्व सिद्धांत के आधार पर अभिजात्य वर्ग पर विशेष प्रभाव बना दिया।

फारसी एवं ईरानी परंपराओं का अनुकरण– उसने फारसी एवं ईरानी परंपराओं, रीति रिवाज तथा रहन–सहन के नियमों का कठोरता से अनुकरण किया। उसने अपने पुत्रों के नाम फारस के शाही घरानों के अनुकरण पर रखे उसने अपना संबंध फारस के शासक 'आफरासिपाब' से जोड़ा तथा 'पायबोस (सुल्तान के पैर चूमना)' सिजदा (घुटने पर सिर झुकाना) जैसी परंपराओं को प्रारंभ किया। उसने गद्दी पर बैठते ही अपने जीवन में भी बहुत परिवर्तन किया। दरबार की गंभीरता बनाये रखने के लिए वह न तो स्वयं कभी दरबार में हंसता था और न किसी को हंसी मजाक करने देता था।

बर्नी का कहना है कि "वास्तव में उसका राजत्व खून–खंजर की वैसाखी पर नाचता था।" उसके राजत्व सिद्धांत की जानकारी बर्नी की 'बसाया' से प्राप्त होती है।

इस प्रकार उसने अपने राजत्व सिद्धांतों के द्वारा दिल्ली सल्तनत को मजबूती प्रदान की।

टिप्पणी

खिलजी वंश 1290–1320 ई. तक– बुजुर्ग जलालुद्दीन खिलजी ने जिस प्रकार दास वंश के शासन को समाप्त किया उससे तुर्क दास वंश का खोखलापन उजागर हुआ।

जलालुद्दीन की हत्या कर दिल्ली की गद्दी पर अधिकार कर लिया। उसने अपने बाहुबल तथा अपनी सेना की सहायता से विशाल साम्राज्य की स्थापना की। अतः प्रारंभ में ही उसकी सत्ता निरंकुश थी।

अलाउद्दीन खिलजी का राजत्व सिद्धांत– 1296–1316 बलबन की मृत्यु के पश्चात् सुल्तान पद की प्रतिष्ठा कमजोर हो गई थी जिसे अलाउद्दीन ने पुनः स्थापित किया। उसने बलबन के विचारों का अनुसरण किया। उसका विश्वास था– राजा सामान्य मनुष्यों से पृथक, उच्च और दैवी शक्ति संपन्न होता है अतः राजा की इच्छा ही कानून थी। सारी प्रजा उसको मानने के लिए बाध्य थी। उसने अमीरों पर भी नियंत्रण स्थापित किया। बरनी लिखता है कि अमीर वर्ग इतना भयभीत रहता था कि वे केवल इशारों से बात करते थे। उसने उलेमा वर्ग को भी इतना दुर्बल कर दिया कि वे उसकी नीतियों पर प्रभाव नहीं डाल सकते थे। उसने अपनी सत्ता को मजबूत करने के लिए खलीफा के नाम का सहारा नहीं लिया। उसने कभी खलीफा से अधिकार पत्र प्रदान करने की प्रार्थना नहीं की।

उसने स्थायी सेना का निर्माण किया और अमीरों को सेना रखने की आज्ञा नहीं दी अतः उसके राज्य को सैनिक तंत्र कहा गया है। सैनिकवाद और निरंकुशता उसके राजत्व के दो मुख्य आधार थे।

डॉ. ईश्वरी प्रसाद के अनुसार "अलाउद्दीन का शासन काल मुस्लिम निरंकुशता के चूड़ान्त विकास का द्योतक है।"

तुगलक वंश का सिद्धांत– मुहम्मद बिन तुगलक का राजत्व सिद्धांत भी दैवी सिद्धांत की तरह था। उसका विश्वास था सुल्तान बनना ईश्वर की इच्छा है। उसने अपने सिक्कों पर 'अल सुल्तान जिल्ली अल्लाह' (सुल्तान ईश्वर की छाया है) अंकित करवाया। उसका शासन भी स्वेच्छाचारी तथा निरंकुश था। यद्यपि सुल्तान सर्वेसर्वा था, परंतु वह शासन के महत्वपूर्ण मामलों में अपने प्रमुख अमीरों तथा अधिकारियों से परामर्श लिया करता था परंतु उनके परामर्श को मानना उसकी इच्छा पर निर्भर था। इसी प्रकार उसने उलेमा वर्ग को भी अपने शासन में हस्तक्षेप नहीं करने दिया।

सुल्तान फिरोज तुगलक धार्मिक प्रवृत्ति का था और धार्मिक व्यक्तियों तथा विद्वानों की संगत पसंद करता था। उसने स्वयं को खलीफा का नायब घोषित किया जिससे सुल्तान तथा खलीफा के संबंध स्पष्ट हों। उसका शासन भी स्वेच्छाचारी तथा निरंकुश था। उसका राज्य पूर्ण रूप से धर्मतंत्र बन गया। उसी के आधार पर उसने कार्य किये।

(1) ब्राह्मणों पर भी जजिया कर लगाया

(2) शिया मत के नेताओं को मृत्युदंड

(3) शरीयत के आधार पर कर निर्धारण

टिप्पणी

लोदी वंश का राजत्व सिद्धांत– बहलोल लोदी अफगानी था, उसकी शक्ति अफगान सरदारों के सहयोग और समर्थन पर निर्भर थी इसलिए उन्हें उसने संतुष्ट करने का प्रयास किया। वह अपने मुख्य सरदारों के साथ कालीन पर बैठता था। वह विजय में लूटी हुई संपत्ति में भी उन्हें बराबर का हिस्सा देता था। इस प्रकार उसने अपने सरदारों के साथ सुल्तान की तरह व्यवहार नहीं किया।

सुल्तान की शक्ति में वृद्धि करने तथा अमीरों को नियंत्रित करने के लिए सिकंदर लोदी ने कठोर नीति का अनुसरण किया। उसने दरबार और दरबार के बाहर सुल्तान के प्रति सम्मान प्रदर्शित करने के नियम बनाये जो सरदार सुल्तान की आज्ञा की अवहेलना करते थे, उन्हें कठोर दंड दिया जाता था परंतु उसने जहां तक हो सका, अमीरों की भावनाओं का सम्मान किया। 'इब्राहिम लोदी' ने सिंहासन पर अपनी स्थिति सुरक्षित करने के बाद तुर्क सुल्तानों के समान पूर्ण निरंकुशता की नीति अपनाने का निश्चिय किया। तुर्की प्रमुख सिद्धांत से प्रभावित होकर उसने मूर्खतापूर्ण घोषणा की कि सुल्तान का कोई संबंधी नहीं होता। सभी सुल्तान के अधीनस्थ सामंत अथवा प्रजा होते हैं। वह दरबार में उच्च स्थान पर बैठता था। सुल्तान जब तक दरबार में उपस्थित न हो कोई बैठ नहीं सकता था। इस प्रकार उसने भी दरबार में कठोर नियम लागू किये।

अतः दिल्ली सल्तनत के सुल्तानों ने स्वेच्छाचारी, निरंकुश एवं रक्त पर आधारित सैनिक शासन व्यवस्था को लागू कर सल्तनत को स्थायित्व प्रदान किया।

1.4.3 सल्तनत कालीन राज्य की वैधता की समस्या

जिस प्रकार ईश्वर एक है उसी प्रकार सब मुसलमानों का एक ही शासक होना चाहिए। किंतु जब खलीफा का साम्राज्य बढ़ गया तो मुस्लिम शासकों को एक प्रकार का गवर्नर मान लिया गया। सल्तनत काल में सुल्तानों ने अपने आपको खलीफा का अधीनस्थ स्वीकार किया।

जब कभी कोई शक्ति संपन्न सूबेदार अथवा अमीर अपनी स्थिति का लाभ प्राप्त करके नवीन प्रदेशों पर विजय प्राप्त कर लेता था और स्वतंत्र शासक बन बैठता था तब भी वह अपने पद को स्थायित्व देने के लिए खलीफा से खिलाअत तथा मान्यता प्राप्त करता था। सल्तनतकालीन सुल्तानों ने अपनी स्थिति को सुदृढ़ता प्रदान करने के लिए स्वयं को खलीफा का प्रतिनिधि घोषित किया। जबकि उनके शासन की पद्धति पूर्णरूप से निरंकुश और स्वेच्छाचारी थी। उन्होंने खुतबे में खलीफा के नाम से उच्चारित करवाया तथा अपने सिक्कों पर भी उसके नाम को उत्कीर्ण करवाया।

मुइजुद्दीन मुहम्मद गोरी के दिल्ली में ढाले हुये उसके प्रारंभिक सिक्कों पर शासक के रूप में खलीफा का अंकन मिलता है। इल्तुतमिश दिल्ली सल्तनत का पहला सुल्तान था जिसको 1229 में बगदाद के खलीफा ने मान्यता दी थी। इस प्रकार इल्तुतमिश की सल्तनत को मान्यता एवं स्वतंत्रता दोनों ही मिल गई थी। खलीफा ने इल्तुतमिश को उन सारे क्षेत्रों के शासक के रूप में मान्यता दे दी थी जिन्हें उसने जीता था। इस प्रकार इल्तुतमिश की मनोकाना की पूर्ति हुई।

खलीफा की मृत्यु के बाद चार दशकों तक उनका नाम दिल्ली के सुल्तानों के सिक्कों में लिखा जाता रहा। अलाउद्दीन खिलजी ने अपने आपको 'यामीन–उल–खिलाफत' (खलीफा का दाहिना हाथ) और 'नासिर–ए–अमीर–उल–मोमीन (खलीफा का सहायक)

टिप्पणी

घोषित किया किंतु दूसरी ओर इला खां के साथ (जो खलीफा का शत्रु था) कूटनीतिक संबंध बनाये। इस प्रकार अलाउद्दीन एक महत्वाकांक्षी सम्राट था। जिसने अपने शासन को 'रक्त एवं लौह की नीति से कायम रखा। उसके पुत्र मुबारक खां खिलजी जो कि विचित्र कार्यों के लिए भी जाना जाता है, उसने अपने आपको खलीफा घोषित किया और उसने उनके नाम तक की चर्चा नहीं की।

मुहम्मद तुगलक जो कि इतिहास में पागल और सनकी सुल्तान के रूप में जाना जाता है उसने खलीफा के नाम की चर्चा नहीं की है। पर बाद में उसने अपने सिक्कों में खलीफाओं के नाम अंकित किये हैं। उसके कुछ सिक्कों में इस प्रकार के शीर्षक मिलते हैं। उसका कहना था जो सुल्तान की आज्ञा का पालन करता है वह सच्चे रूप में ईश्वर की आज्ञा का पालन करता है।

फिरोज तुगलक ने मिश्र के नाममात्र के खलीफा के प्रति श्रद्धा प्रकट की थी। खलीफा अल हकीम, अल मुबाजिद और अल मुतावक्किल का नाम फिरोज के सिक्कों पर पाया जाता है।

इस प्रकार बाद के शासकों के सिक्कों पर भी खलीफा का नाम मिलता है परंतु निश्चित तौर पर यह नहीं कहा जा सकता कि वे खलीफा की पूर्ण अधीनता स्वीकार करते थे। परंतु इस बात से भी इन्कार नहीं किया जा सकता है कि दिल्ली सल्तनत पर खलीफा का प्रभाव था।

1.4.4 सल्तनत कालीन राज्य को प्रभावित करने वाले दबाव समूह

सल्तनत कालीन शासन व्यवस्था स्वेच्छाचारिता, निरंकुशवादी नीतियों पर आधारित था, उसके बाद भी उनकी नीतियों पर नियंत्रण स्थापित करने के लिए कुछ ऐसे दबाव समूह थे जो उनकी दैवीय उत्पत्ति के सिद्धांत की परिकल्पना पर अंकुश रखने का कार्य करते थे।

सल्तनत कालीन शासन व्यवस्था में अमीरों की स्थिति बहुत मजबूत थी जो राजा के उत्थान और पतन में बहुत सहायक होते थे। वे राज्य के प्रमुख प्रशासनिक पदों पर अपना एकाधिकार रखते थे। राजा की शक्ति बहुत कुछ उन्हीं पर निर्भर करती थी, पर उन्हें नियुक्ति और पदच्युत करने का अधिकार सुल्तान के पास ही होता था। रजिया के पतन में महत्वपूर्ण भूमिका इन्हीं अमीरवर्ग की ही थी।

ये अमीर गुलाम के रूप में अपनी सेवा शुरू करते थे और इक्तादार, वजीर, मंत्री जैसी बड़े पद तक पहुंचते थे। इल्तुतमिश का सिंहासन एक तुर्क सिंहासन था जिसे एक तुर्क द्वारा अधिकारियों व गैर–तुर्की विदेशियों का समर्थन प्राप्त था। इल्तुतमिश के शासन प्रबंध में भिन्न राजनीतिक पृष्ठभूमि के दो तत्व थे– एक वंशानुगत और दूसरा नौकरशाही/राह नौकरशाही जो मुख्यतः तुर्कों के एकाधिकार में थे।

शासक की सफलता इस बात पर भी निर्भर करती थी कि उसके पास कितने योग्य मंत्री, अमीर सेनानायक हैं। अलाउद्दीन खिलजी के साम्राज्य विस्तार की सफलता का मुख्य कारण उसके योग्यतम सेनानायक थे, परंतु शासक के कमजोर पड़ते ही ये अधिकारी वर्ग वंशों के पतन में सर्वाधिक सहायक होते थे। इल्तुतमिश को सल्तनत काल का वास्तविक संस्थापक माना जाता है। इसका मुख्य कारण उसका

टिप्पणी

तुर्क–ए–चहलगामी दल अर्थात वे जो सुल्तान के प्रति पूर्णतः स्वामीभक्त थे, वे इल्तुतमिश के प्रमुख सलाहकार थे परंतु उसकी मृत्यु के पश्चात ये दास शक्तिशाली हो गये और उसके उत्तराधिकारी अयोग्य साबित हुये। जिससे शासन व्यवस्था में अराजकता, षड्यंत्र, सत्ता के संघर्ष की शुरुआत हुई और इन्हीं दासों में से एक बलबन शासक बन गया और राजत्व के सिद्धांत को एवं दिल्ली सल्तनत की गति को नई दिशा प्रदान की।

परंतु उसके उत्तराधिकारी अयोग्य साबित हुये और एक बुजुर्ग जलालुद्दीन खिलजी ने उसके उत्तराधिकारी की हत्या कर खिलजी क्रांति को जन्म दिया। उसे यह सत्ता न तो वंशाधिकार से प्राप्त हुई न चुनाव अथवा षड्यंत्र से। उन्होंने सैनिक शक्ति के बल पर राज्य सत्ता पर अधिकार किया और उन्होंने यह भी बताया कि राज्य के लिए धर्म का कोई स्थान नहीं है। उन्होंने न जनता, न अमीर वर्ग और न उलेमा का समर्थन प्राप्त किया। एक प्रकार से उनका सिद्धांत "रक्त एवं लौह" की नीति पर आधारित था।

अलाउद्दीन खिलजी भारत का प्रथम मुस्लिम सम्राट था, जिसने शासन के सिद्धांतों को अपनी महत्वाकांक्षा के लिए परिवर्तित कर दिया और उत्तर से दक्षिण तक इस्लाम का प्रभुत्व स्थापित किया। इसी को 'खिलजी क्रांति' कहा गया है। प्रशासन के क्षेत्र में साहसपूर्ण प्रयोग करने वाला भी वह प्रथम मुस्लिम शासक था। उसने दिखा दिया कि राजत्व सिद्धांत किसी वर्ग विशेष का विशेषाधिकार नहीं है, बल्कि वह उन लोगों की पहुंच के भीतर है, जो उसे धारण करने की योग्यता रखते हैं।

दिल्ली सल्तनत की राजनैतिक व्यवस्था अपने पूर्वगामी राजपूत सामंतों से भिन्न थी। वह इक्ता व्यवस्था पर आधारित थी। इत्तादारी प्रणाली वह प्रणाली थी जिसमें सुल्तान ने अपने प्रशासनिक, सैनिक व भू–राजस्व व्यवस्था का संगठन किया। इस व्यवस्था में भूखंड दिया जाता था उससे आने वाला भू–राजस्व किसी भी अधिकारी या सैनिक का वेतन होता था। यह एक क्षेत्रीय अनुदान था जिसके पाने वाले को मुक्ति, वली और इत्तेदार कहा जाता था जब–जब सुल्तान कमजोर हुये, इत्तेदार शक्तिशाली हुये। इस प्रणाली के कारण ही दिल्ली सल्तनत वजूद में आई। सुल्तान ने वली, मुक्ति या इत्तेदारों पर जब तक कड़ा नियंत्रण रखा तब तक इत्तेदारों ने दिल्ली सल्तनत के फैलाव, सुदृढ़ीकरण तथा इसको आगे बढ़ाने में अपना भरपूर योगदान दिया।

फिरोज तुगलक ने इत्तेदार का पद वंशानुगत कर दिया था। बलबन ने ख्वाजा नामक अधिकारी की नियुक्ति की थी। अलाउद्दीन खिलजी ने इस व्यवस्था पर नियंत्रण स्थापित किया। इस प्रकार शासक वर्ग के कमजोर होते ही ये लोग अधिक शक्तिशाली हो जाते थे और आगे चलकर इसी व्यवस्था ने दिल्ली सल्तनत को कमजोर कर दिया।

मुगलकालीन राज्य का स्वरूप

दिल्ली सल्तनत के पतन के पश्चात मुगल सल्तनत की स्थापना हुई। 1526–1857 ई. तक बाबर से लेकर औरंगजेब तक के शासकों ने मुगल सल्तनत को सुदृढ़ता प्रदान की। प्रश्न यह है कि मुगलकालीन राज्य का स्वरूप कैसा था? विद्वानों में मध्यकालीन भारत के शासक के स्वरूप के विषय को लेकर अनेक मत प्रचलित हैं। डॉ. आर.पी. त्रिपाठी, डॉ. ए.एल. श्रीवास्तव, डॉ. ईश्वरी प्रसाद, डॉ. ए.सी. बैनर्जी आदि के विचार में

उस समय के भारत का शासन धर्मतन्त्रात्मक था, किंतु डॉ. आई.एच. कुरैशी और प्रो. मुहम्मद हबीब इस मत से सहमत नहीं हैं।

टिप्पणी

अपनी पुस्तक 'आइने अकबरी में – लेखक ने लिखा है कि यद्यपि इस्लाम में राजपुरोहित नहीं थे तथापि उनमें उलेमा लोग थे जो बड़े–बड़े पदों पर नियुक्त थे। वे लोग सुन्नी धर्म के अनुयायी थे और उनका बादशाह पर काफी नियंत्रण था। साधारणतः मुस्लिम शासक शरीअत के अनुसार शासन करते रहे। अकबर की नीति का उलेमा वर्ग ने विरोध किया था क्योंकि उसने इस्लाम को राज्य का आधार नहीं बनाया था तथा अन्य धर्मावलंबियों को भी राज्य में समान अधिकार प्रदान किये थे।

इस कारण से मुगल काल में उलेमाओं की शक्ति को तीव्र आघात पहुंचा। प्रारंभिक शासक बाबर और हुमायूं निरंतर युद्धों में उलझे रहे अतः उन्हें इस ओर ध्यान देने का अवसर ही प्राप्त नहीं हुआ। अकबर का शासन काल इस्लामिक सिद्धांतों का स्थापना काल न होकर राष्ट्रीयता की विचारधारा से प्रभावित था, क्योंकि उसने यह भली प्रकार अनुमान कर लिया था कि हिंदुओं के सक्रिय सहयोग के बिना भारत में स्थायी मुस्लिम शासन की स्थापना संभव नहीं है। उसने राजनीतिक एवं धार्मिक नीतियों में अपनी उदारता का प्रदर्शन किया। उसके उदार शासनकाल में मुल्ला, मौलवी और उलेमा लोगों का प्रभाव नगण्य रह गया था। इबाब्तखाने की स्थापना से उसका धार्मिक दृष्टिकोण अधिक व्यापक हो गया था और 'मजहर की घोषणा के बाद अकबर स्वयं धर्म एवं राजनीति दोनों में प्रधान हो गया था। बदायूंनी ने लिखा है– "पांच या छह वर्ष के अल्पकाल में उसके हृदय में इस्लाम का प्रभाव लेशमात्र भी नहीं रह गया था।"

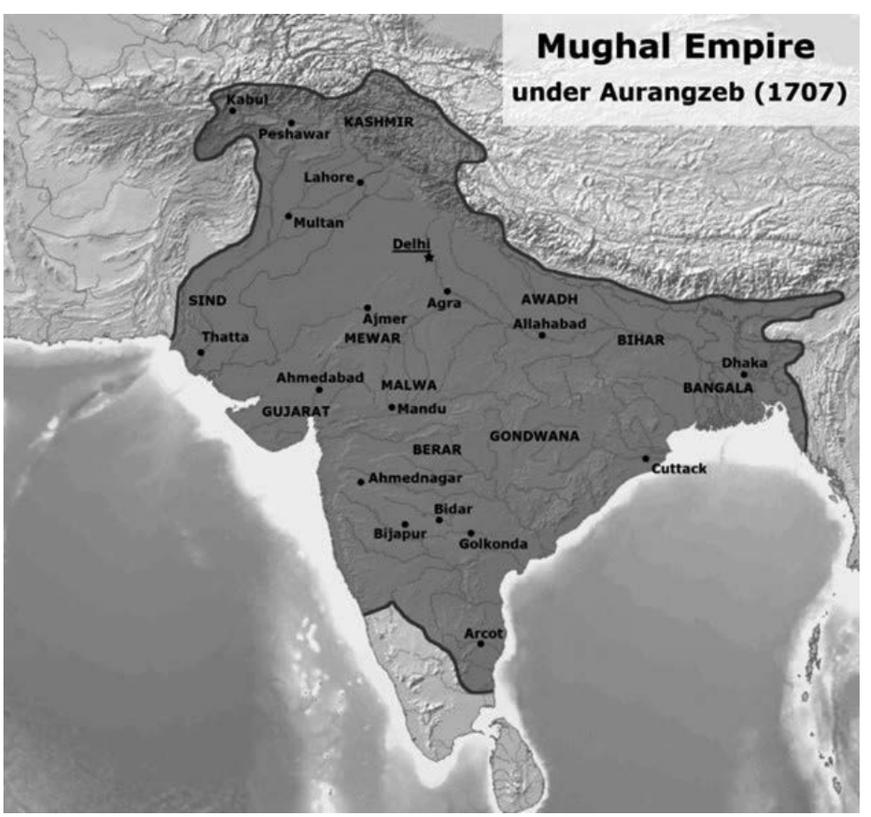

टिप्पणी

उलेमा वर्ग ने जहांगीर से यह वचन ले लिया था कि वह शरीअत के अनुसार शासन करेगा। औरंगजेब ने यह घोषणा की थी कि वह दाराशिकोह के विरुद्ध इसलिए लड़ रहा था क्योंकि दारा धर्म–पतित था। उसने यह भी वचन दिया था कि वह स्वयं शरीअत के अनुसार शासन करेगा।

अकबर ने दैवीय राजतंत्र का सिद्धांत प्रस्तुत किया। उसका मत था कि बादशाह परमात्मा का प्रतिनिधि और उसका प्रतिबिंब होता है। उसने अपने आपको जिल्ले–इलाही कहलवाया। "राजा का ज्ञान और बुद्धिमत्ता सभी मनुष्यों की अपेक्षा अधिक थी।" जहांगीर और शाहजहां भी दैवीय राजतंत्र सिद्धांत में विश्वास रखते थे। इस सिद्धांत में विश्वास रखते हुए भी मुस्लिम शासक शरीअत के विरुद्ध शासन न कर सके।

औरंगजेब की नीति धर्मान्धता की नीति थी उसने मुगल साम्राज्य की धार्मिक नीति में अभूतपूर्व परिवर्तन किये। उसने इस्लाम को राजधर्म घोषित किया और भारत को पुनः मजहबी राज्य बनाने का प्रयास किया। उसने इलाही संवत का चलन बंद करा दिया और सूर्य की उपासना रोक दी। झरोखा दर्शन बंद करा दिया। उसने हिंदुओं से जजिया कर व तीर्थ यात्रा कर पुनः वसूल करना प्रारंभ कर दिया। उसने अपने शासन काल में हिंदुओं को राज्य में कोई महत्वपूर्ण पद प्रदान नहीं किया। अकाली कट्टरपंथ को औरंगजेब के शासन काल में संरक्षण मिला।

अकबर की राष्ट्रीयता की नीतियों ने मुगल–राजपूतों के संबंधों को मजबूती प्रदान की तथा भारत को केंद्रीकृत राजनीतिक इकाई के रूप में परिवर्तित किया।

औरंगजेब के उत्तराधिकारी बहादुर शाह प्रथम ने अपने पिता की कठोर नीति को ज्यों का त्यों बनाये रखा। उसके उत्तराधिकारी दुर्बल व अयोग्य थे और अमीर वर्ग का वर्चस्व बढ़ने लगा तथा उनके गुट बन गये और इतिहास के रंगमंच पर मुगल शासक कठपुतली बनकर रह गये।

मुगलकालीन राजत्व का सिद्धांत

"राजत्व ईश्वर का अनुग्रह है यह उसी व्यक्ति को प्राप्त होता है जिस व्यक्ति में हजारों गुण एक साथ विद्यमान हो।"

'अबुल फजल'

मुगलों की शासन व्यवस्था के अनेक पहलुओं का वर्णन इतिहासकारों ने किया है। मुगल साम्राज्य को धर्मतंत्रीय, सैनिक, सांस्कृतिक, प्राच्य, निरंकुश, फारसी, भारतीय, तुर्की, मंगोल आदि का मिश्रित रूप बताया है।

आर.पी. त्रिपाठी ने 'मुगल सत्ता' को तुर्क–मंगोल सिद्धांत कहा है। मुगल सिद्धांत अनेक स्तरों से होकर विकसित हुआ है और इसके विभिन्न रचना–तत्वों पर अरबी कबीलाई तथा 'उम्मत' और 'मित्लत' जैसी ईस्लामी संकल्पनाओं का तथा मंगोल, तुर्की, बैंजंटाइन और भारतीय राजनीतिक परंपराओं का गहरा प्रभाव पड़ा।

बाबर ने राजत्व संबंधी विचार प्रकट करते हुए कहा है कि "बादशाही से बढ़कर कोई बंधन नहीं है। बादशाह के लिए एकांतवास या आलसी जीवन उचित नहीं है।"

बाबर ने बादशाह की उपाधि धारण करके मुगल बादशाहों को खलीफा के नाममात्र के आधिपत्य से मुक्त कर दिया। अब वे किसी विदेशी सत्ता अथवा व्यक्ति के

टिप्पणी

अधीन नहीं रह गये। हुमायूं बादशाह को पृथ्वी पर खुदा का प्रतिनिधि मानता था। उसका मानना था सम्राट अपनी प्रजा की उसी प्रकार रक्षा करता है जिस प्रकार ईश्वर पृथ्वी के समस्त प्राणियों की रक्षा करता है। उसने एक भिश्ती को अपनी जान बचाने के बदले कुछ घंटे के लिए बादशाह बनाया था।

अकबरकालीन राजत्व सिद्धांत की स्पष्ट व्याख्या 'अबुल फजल' ने आइने अकबरी में की है। अकबर के शासन काल में बादशाहत की परंपरा को नया आधार और मजबूती मिली। दैवी उत्पत्ति के सिद्धांत और खुदा की परछाई के दावों के साथ–साथ अकबर की भी यह मान्यता थी कि राजत्व या बादशाहत मुस्लिम समुदाय या अमीर वर्ग की ओर से भेंट नहीं है।

अबुल फजल के अनुसार "राजसत्ता परमात्मा से फूटने वाला तेज और विश्व प्रकाशक सूर्य की एक किरण है।" अकबर राजतंत्र को धर्म एवं संप्रदाय से ऊपर मानता था और उसने रूढ़िवादी इस्लामी सिद्धांत के स्थान पर सुलह–कुल की नीति अपनायी और दो विभिन्न धाराओं को जोड़ने की कोशिश की। उसने भारत में राष्ट्रीय एकता का मार्ग प्रशस्त किया और हिंदुओं और मुसलमानों की वैमनस्यता की खाई को कम करने की कोशिश की। अबुल फजल ने राज्य की जो संकल्पना प्रतिपादित की वह सार्वदेशिक थी। इसमें सभी जाति, धर्म, संप्रदाय या राष्ट्रीयता के लोग सम्मिलित पाये जाते थे।

जहांगीर एवं शाहजहां ने अकबर की सलाह कुल की नीति का पालन नहीं किया पर उनका राजत्व सिद्धांत कठोरता की नीति पर भी आधारित नहीं था। परंतु औरंगजेब ने मुस्लिम कानून की हनफी विचारधारा के नियमों को लागू किया और कठोर धार्मिक नीति का अनुसरण किया जो कालांतर में मुगल साम्राज्य के पतन के लिए उत्तरदायी बनी।

इस प्रकार मुगलों का राजत्व सिद्धांत तुर्की और मंगोल परंपरा पर आधारित अर्थात् शरीयत (कुरान एवं हदीस) पर आधारित था।

मुगल राज्य को प्रभावित करने वाला दबाव समूह

1526 में बाबर द्वारा मुगल साम्राज्य की आधारशिला रखी गई। उसके साथ भारत में कुछ नयी चगताई परंपरा का भी प्रवेश हुआ है जिसका नाम था 'उमरा'। यह परंपरा तैमूर वंश की परंपरा थी जिसे बाबर अपने साथ लाया था। जो बाद में विरासत के तौर पर हुमायूं को भी मिली। इस परंपरा को विकसित करने का श्रेय अकबर को ही जाता है।

उमरा या अमीर वर्ग– यह शब्द मुगल काल में उन सभी अधिकारियों के लिए प्रयुक्त होता था जिन्हें एक हजार या उससे अधिक का मनसब प्राप्त होता था।

मुगल काल के प्रारंभिक दौर में इसमें विशिष्ट वर्ग के लोगों को ही शामिल किया जाता था जिनमें प्रमुख वर्ग तूरानी (मध्य एशियाई), ईरानी (फारसी), अफगान शेखजादों (कुछ उपवर्गों में बंटे भारतीय मुसलमान) और राजपूत आदि थे। अकबर की उदार सहिष्णुता की नीति ने मुगलकाल में हिंदुओं को भी उच्च पद पर पहुंचने का मार्ग प्रशस्त किया और उनसे वैवाहिक संबंध भी स्थापित किये। भारतीय राजनीति में एक नये दौर

का आरंभ हुआ। उच्च पद तक पहुंचने वाले कुछ प्रमुख राजपूत जैसे टोडरमल, मानसिंह, जसवंत सिंह, बीरबल आदि थे।

टिप्पणी

अकबर की नीति का अनुसरण जहांगीर और शाहजहां ने भी किया। 'उमरा' वर्ग में शामिल अधिकतर अब हिंदुस्तान में जन्म लेने वाले ही थे। अब इस वर्ग में मराठा भी शामिल हो गये थे और औरंगजेब के समय यह संख्या और भी अधिक थी।

'उमरा' बनने का मुख्य आधार योग्यता था। इस बात से फर्क नहीं पड़ता था कि वे भारतीय हैं या विदेशी। अकबर के समय शाही निरंकुशता उच्च स्तर पर थी। उसके शासन के प्रारंभिक वर्षों में राज्य का कर्ताधर्ता उसका एक अमीर बैरम खां था। यह कहा जाता है बैरम खां के पतन में उसकी नीतियां भी जिम्मेदार थी। अकबर के शाही रिश्तेदार– मिर्जाओं ने भी बगावत का रास्ता अपनाया परंतु उनकी शक्ति को कुचल दिया गया। अकबर को वास्तविक सत्ता प्राप्त करने में लंबा संघर्ष तय करना पड़ा। उसने बहुत ही योग्यता के साथ प्रशासनिक व्यवस्था और मनसबदारी प्रथा को पुनर्गठित किया।

जहांगीर के शासन में "नूरजहां जुंटा" गुट भी बहुत ही प्रभावशाली रहा। इस गुट में नूरजहां के पिता एमादुद्दौला और भाई आसफ खां के साथ खुर्रम (शाहजहां) भी शामिल था। इस गुट के समक्ष जहांगीर का वर्चस्व लगभग खत्म हो गया। नूरजहां ही प्रशासन को चलाने का कार्य करने लगी।

मुगल काल में लंबे समय तक शासकों द्वारा सत्ता पर रहने के कारण महत्वाकांक्षी मुगल शहजादों द्वारा सत्ता के विरुद्ध विद्रोह करने के उदाहरण मिलते हैं। इन विद्रोहों में प्रभावशाली अमीरों की भूमिका भी रहती थी। 'खुसरो' और खुर्रम (शाहजहां) के द्वारा विद्रोह किया गया जिसमें आसफ खां और अन्य महत्वपूर्ण अमीरों का योगदान रहा।

शाहजहां का प्रारंभिक शासन काल शांतिमय रहा है परंतु शहजादों की महत्वकांक्षाओं ने उसके शासन काल में उत्तराधिकार के लिए जो खूनी संघर्ष खेला वह कल्पना से परे था। दारा, शुजा, मुराद, औरंगजेब के बीच जो उत्तराधिकार का संघर्ष हुआ उसमें विजय औरंगजेब को मिली। उसने अन्य सभी भाइयों की परिवार सहित हत्या कर दी।

औरंगजेब के शासनकाल में उसकी नीतियों में धर्म का बोलबाला था। उसका जीवन का आधा समय दक्कन की राजनीति में बीता जिसका कोई सार्थक परिणाम नहीं निकला। औरंगजेब की मृत्यु (1707) के बाद मुगल शासकों की सत्ता कमजोर पड़ने लगी और दरबार षड्यंत्रों और अराजकता का केंद्र बनकर रह गये।

औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् उसके बेटों में गद्दी के लिए संघर्ष शुरू हुआ जिसमें बहादुरशाह प्रथम को सफलता मिली। परंतु वह बहुत लंबे समय तक शासन नहीं कर पाया तथा मुगल दरबार को एक बार पुनः लड़ाई का सामना करना पड़ा और अब उत्तराधिकार के संघर्ष में नया परिवर्तन देखने को मिला। पहले अमीर वर्ग सत्ता प्राप्ति के लिए शहजादों की सहायता करते थे परंतु अब वो सत्ता प्राप्त करने के लिए स्वयं महत्वाकांक्षी हो गये।

टिप्पणी

सत्ता संघर्ष की उस परंपरा में जहांदर शाह का साथ उस समय के शक्तिशाली और अमीर जुल्फीका खां ने दिया। फर्रुखसियर का साथ अब्दुल्ला खां और हुसैन अली खां ने दिया। सैय्यद बंधुओं को इतिहास में 'किंग मेकर' के नाम से जाना जाता है।

जमींदार वर्ग का भी महत्वपूर्ण स्थान था। कृषकों के अतिरिक्त उत्पाद में हिस्सेदारी मांगने वाले जमींदारों का एक शोषक वर्ग बन गया जो स्थानीय शक्ति का प्रतिनिधित्व करता था। उनके अधिकार आनुवंशिक होते थे। वे स्थानीय होते थे इसलिए क्षेत्रीय राजनीति, समाज, आर्थिक तंत्र से भली–भांति परिचित होने के कारण राज्य की निर्भरता उन पर थी। वे राज्य की उपलब्धियों में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करते थे।

औरंगजेब के शासन काल के अंतिम वर्षों में क्षेत्रीय संघर्ष के बहुत से उदाहरण देखने को मिलते हैं। इसमें 'राजगामिता कानून' भी उतना ही जिम्मेदार है, इसके कारण जागीरदार के वारिस उस जागीर पर अपने पुश्तैनी हक का दावा नहीं कर सकते थे। जागीरदार की मृत्यु हो जाने पर उसकी सारी संपत्ति राज्य की हो जाती थी। जागीर के हस्तांतरण की प्रथा ने नयी समस्याओं को जन्म दिया। मुगल साम्राज्य के अंतिम शासकों के समय उन्हें मराठा, सिख, मैसूर और यूरोपियंस का भी सामना करना पड़ा तथा इन्हीं दबाव समूहों की निरंतरता ने 1856 में मुगल साम्राज्य का अंत कर दिया।

1.4.5 राज्य और क्षेत्रीय अस्मिता तथा भारतीय मूल के सिद्धांतों का उद्‌भव

मध्यकाल में मुस्लिम सत्ता स्थापित होने के साथ ही एक नये संघर्ष की शुरुआत हुई केंद्र में धीरे–धीरे मुस्लिम सत्ता का अधिकार हो गया जिस कारण से भारतीय शक्ति क्षेत्रीय राज्यों में सिमट कर रह गई। कुछ साम्राज्यवादी शासकों द्वारा उन क्षेत्रीय राज्यों पर अधिकार करके भारतीय मूल के सिद्धांतों को चुनौती दी। एक तरफ विजेता जीत की खुशी के उन्माद में थे, दूसरी तरफ अपने ही देश में पराधीन हिंदू समाज था, उनके समक्ष अपनी संस्कृति, धर्म के द्वारा परंपराओं को बचाने का द्वंद था।

हिंदू शासकों एवं भक्ति आंदोलन के संतों ने अपनी आत्मरक्षा तथा अपनी संस्कृति के लिए भारतीय मूल के सिद्धांतों की रक्षा करने की शुरुआत की और इन आक्रान्ताओं के समक्ष झुकने की जगह इनका दृढ़ता से सामना किया। पराजित होने पर भी इन्होंने अपने सिद्धांतों को नहीं छोड़ा।

मध्यकालीन संतों के द्वारा 'मौन क्रांति' की शुरुआत की, जिसे 'भक्ति आंदोलन' कहा जाता है। यह भगवान की पूजा के साथ जुड़े रीति–रिवाजों के लिए उत्तरदायी था। इस आंदोलन के प्रवर्तक शंकराचार्य थे जो विचारक एवं दार्शनिक दोनों थे। इस आंदोलन में चैतन्य, नामदेव, तुकाराम, जयदेव, कबीर, तुलसीदास, रैदास आदि शामिल थे इन्होंने भगवान की भक्ति से हिंदू जनमानस में नई चेतना का संचार किया।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

11. निम्न में से किस सुल्तान ने अपने आपको खलीफा का सहायक घोषित किया?
    (क) मुहम्मद तुगलक (ख) अलाउद्दीन खिलजी
    (ग) गियासुद्दीन तुगलक (घ) महमूद गजनवी
12. बलवन किस वंश से संबंधित था?
    (क) दास वंश (ख) खिलजी वंश
    (ग) तुगलक वंश (घ) लोदी वंश
13. 'सुलह–ए–कुल' की नीति का प्रवर्तक था।
    (क) शाहजहाँ (ख) जहांगीर
    (ग) अकबर (घ) औरंगजेब
14. सल्तनत काल के किस शासक ने अपने आपको खलीफा घोषित किया?
    (क) अलाउद्दीन खिलजी (ख) बलबन
    (ग) मुहम्मद तुगलक (घ) मुबारक खिलजी
15. यह किस इतिहासकार द्वारा सिद्ध किया गया कि– "मध्यकालीन भारत में शक्ति का स्रोत शरीयत थी।"
    (क) डा. ए.सी. बैनर्जी (ख) डॉ. ईश्वरी प्रसाद
    (ग) इबन हसन (घ) डॉ. ए.एल. श्रीवास्तव

1.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (ख)
2. (ख)
3. (घ)
4. (ख)
5. (घ)
6. (क)
7. (ख)
8. (ग)
9. (ग)
10. (ख)
11. (ग)
12. (क)

13. (ग)
14. (घ)
15. (क)

टिप्पणी

1.6 सारांश

मध्यकालीन युग दो विपरीत संस्कृतियों का युग था, एक तरफ अपनी सभ्यता संस्कृति की रक्षा करता हुआ पराधीन समाज, तो दूसरी तरफ अपनी सभ्यता संस्कृति को नये वातावरण में स्थापित करता हुआ विजेताओं का उन्माद भरा उल्लास था। इसी वातावरण में लेखन की एक नई परंपरा की शुरुआत हुई जिसकी जानकारी के लिए अभिलेखों, सिक्कों, स्मारकों, धार्मिक साहित्य, धर्मेतर साहित्य, विदेशी यात्रियों के विवरण के आधार पर इतिहासकारों ने प्रामाणिक आर्थिक इतिहास लिखा है।

मध्यकाल में वास्तुकला पर मुसलमानों के आक्रमण का बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। भारतीय सामाजिक और धार्मिक प्रवृत्तियों की तुलना में मुस्लिम सभ्यता बहुत ही भिन्न थी जिसका प्रमाण हमें तात्कालीन स्मारक और स्थापत्य कला से मिलता है। इस प्रकार पुरातात्विक साधनों में स्मारक व स्थापत्य महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान करते हैं।

मध्यकालीन भारतीय आर्थिक इतिहास लेखन का कार्य साम्राज्यवादी, राष्ट्रवादी एवं मार्क्सवादी इतिहासकारों द्वारा अपने–अपने दृष्टिकोण से किया गया। प्रायः एक ही प्रकार के तथ्यों की विवेचना इन इतिहासकारों ने साम्राज्यवादी, राष्ट्रवादी एवं मार्क्सवादी उपागम से की है।

मध्ययुगीन एवं आधुनिक भारत के इतिहास में संलग्न साम्राज्यवादी इतिहासकारों का इतिहास के साम्राज्यवादी उपागम को अपनाने का मुख्य उद्देश्य भारतीयों को यह बताना था कि उन्हें अपने उत्थान के लिए ब्रिटिश शासन की अधीनता की परम आवश्यकता है। इसका कारण यह था कि वे भारतीय शासन पर अंग्रेजी शासन की श्रेष्ठता को सिद्ध करना चाहते थे।

साम्राज्यवादी इतिहास लेखकों ने यह साबित करने का यत्न किया था कि भारत के अतीत में अधिकतर या तो राजनीतिक एवं प्रशासनिक अराजकता रही या प्राच्य निरंकुशता। कुल मिलाकर साम्राज्यवादी इतिहासकारों ने यह दिखाने का प्रयास किया था कि भारतीय स्वशासन के अनुकूल नहीं हैं। राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने साम्राज्यवादी इतिहास को चुनौती देते हुए भारतीय इतिहास से विपरीत प्रमाण दिये और भारत के गौरवमय अतीत का व्याख्यान किया तथा जनता को जाग्रत करने का कार्य किया।

विभिन्न समाजों में मौजूद वर्ग तनावों के अस्तित्व तथा परिवर्तन की प्रेरक शक्ति के रूप में वर्ग संघर्ष की भूमिका के प्रति अपने विश्वास को व्यक्त करते हुए मार्क्सवादी इतिहासकारों ने वैज्ञानिक व्याख्या की है।

मध्यकालीन भारतीय इतिहास में सल्तनत की स्थापना ने निरंकुश, स्वेच्छाचारी, सैनिक शासन की आधारशिला रखी जिसका मुख्य आधार शरियत और खलीफा के अधीन रहकर शासन करना था। सल्तनत कालीन शासन व्यवस्था में इस बात के भी प्रमाण मिलते हैं कि शक्ति पर आधारित राज्य व्यवस्था जिसे बलबन और अलाउद्दीन खिलजी ने 'रक्त और लौह' की नीति पर कायम रखने का प्रयास किया।

टिप्पणी

इसके विपरीत मुगलकाल में सशक्त केंद्रीकृत ढांचे का स्पष्ट रूप दिखाई दिया। अकबर ने पूर्व के शासकों की नीतियों में बदलाव करके राष्ट्रीयता के सिद्धांत को लागू किया और योग्यता के आधार पर हिंदुओं को भी उच्च पद तक जाने के अवसर दिये तथा उनकी राजकुमारियों से वैवाहिक संबंध भी स्थापित किये। इस प्रकार सदियों से हिंदू और मुसलमानों के बीच के वैमनस्य के संबंधों को खत्म करने का प्रयास कर राष्ट्रीय सत्ता की स्थापना करने में वह सफल रहा।

1.7 मुख्य शब्दावली

- **पतनोन्मुख** : पतन की ओर उन्मुख
- **ताम्रपत्र** : तांबे का पत्ता
- **उत्कीर्ण** : उकेरा हुआ, लिखा हुआ
- **स्रोत** : साधन
- **निष्पक्ष** : बिना भेदभाव के, बिना किसी का पक्ष लिए
- **मखौल** : मजाक उड़ाना
- **फरमान** : आदेश, आज्ञा
- **रुयात** : इतिहास संबंधी साहित्य
- **खलीफा** : गुरु
- **उपागम** : दृष्टिकोण
- **उलेमा** : मुस्लिम समाज के धर्मज्ञ
- **हस्तक्षेप** : रुकावट
- **उत्तरदायी** : जिम्मेदार

1.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. अकबरनामा पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
2. बर्नियर के यात्रा वृतांत की समीक्षा कीजिए।
3. आइन–ए–अकबरी पर टीका लिखिए।
4. परगना–री विगत क्या है? नोट लिखिए।
5. बाबरनामा पर टिप्पणी लिखिए।
6. सल्तनत काल एवं मुगलकाल में उलेमाओं की स्थिति में क्या अंतर था?
7. अलाउद्दीन खिलजी के राजत्व सिद्धांत की समीक्षा कीजिए।

टिप्पणी

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. मध्यकालीन भारतीय इतिहास की जानकारी से सम्बद्ध पुस्तकों की संक्षेप में विवेचना कीजिए।
2. मध्यकालीन साहित्यिक एवं पुरातात्विक स्रोतों का वर्णन कीजिए।
3. मध्यकालीन आर्थिक इतिहास के साहित्यिक स्रोतों की समीक्षा कीजिए।
4. मुगलकालीन भारतीय इतिहास के प्रमुख स्रोतों का वर्णन कीजिए।
5. मध्यकालीन आर्थिक इतिहास के स्रोतों को समझाइए।
6. इतिहास के राष्ट्रवादी दृष्टिकोण की विवेचना कीजिए।
7. इतिहास लेखन के साम्राज्यवादी एवं राष्ट्रवादी उपागम के मध्य अंतर बताइये।
8. मध्यकालीन भारत में शासन के स्वरूप की संक्षेप में विवेचना कीजिए।
9. मुगलकालीन राजत्व सिद्धांत की विवेचना कीजिए।
10. सल्तनत कालीन राजत्व सिद्धांत की विवेचना कीजिए।

1.9 सहायक पाठ्य सामग्री

1. चंद्र सतीश, मध्यकालीन भारत, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली–1990
2. चंद्र सतीश, मध्यकालीन भारत में इतिहास लेखन : धर्म और राज्य का स्वरूप ग्रंथ शिल्पी दिल्ली 1999
3. राधेशरण, इतिहास और इतिहास लेखन, मध्य प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी भोपाल 2003
4. वर्मा हरिचंद्र, मध्यकालीन भारत खण्ड–1 एवं 2 हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय 1993
5. श्रीवास्तव बी.के. इतिहास लेखन अवधारणा, विधाएं एवं साधन, साहित्य भवन पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स प्रा.लि. आगरा 2005
6. 'इतिहास लेखन धारणाएं तथा पद्धतियां' लक्ष्मीनारायण अग्रवाल आगरा
7. वरे– डॉ. एस.एल. इतिहास लेखन की अवधारणा कैलास पुस्तक सदन भोपाल
8. बुद्ध प्रकाश– इतिहास लेखन की अवधारणा हिंदी समिति प्रयाग
9. लाल के.एस. खिलजी वंश का इतिहास विश्व प्रकाशन दिल्ली
10. जैन डॉ. राजीव– भारत का इतिहास कैलास पुस्तक सदन भोपाल
11. वार्डर ए.के. भारतीय इतिहास लेखन की भूमिका हरियाणा साहित्य अकादमी चंडीगढ़
12. जैन संजीत– पूर्व एवं उत्तर मध्यकालीन भारत का आर्थिक एवं राजनीतिक इतिहास कैलाश पुस्तक सदन भोपाल

इकाई 2 शासन व्यवस्था का ढांचा, शासकीय प्रणाली का विकास एवं पतन

संरचना

2.0 परिचय
2.1 उद्देश्य
2.2 मध्यकाल (सल्तनतकाल) में संस्थागत संरचना और शासन व्यवस्था का विकास
- 2.2.1 इक्ता व्यवस्था
- 2.2.2 अमरम व्यवस्था
- 2.2.3 मनसब
- 2.2.4 जागीर
- 2.2.5 मुगलकालीन शासन व्यवस्था
- 2.2.6 केंद्रीय प्रशासन– मुगल सम्राट
- 2.2.7 प्रांतीय शासन प्रबंध
- 2.2.8 ग्राम प्रशासन

2.3 शासक वर्ग– उद्भव, गठन, आव्रजन, स्थानीय समझौते और संघर्ष
- 2.3.1 मध्यकालीन भारत में शासक वर्ग का उद्भव
- 2.3.2 सत्ता वर्ग का गठन व विकास
- 2.3.3 आव्रजन
- 2.3.4 स्थानीय समझौते एवं संघर्ष

2.4 क्रमबद्ध संकट एवं विघटन : शाही व्यवस्था में अन्तर्निहित तनाव एवं संघर्ष, प्रतिरोध का स्वरूप, साम्राज्यों का पतन, क्षेत्रीय राज्यों का उदय, राज्य निर्माण प्रणाली
- 2.4.1 क्रमबद्ध संकट एवं विघटन : शाही व्यवस्था में अंतर्निहित तनाव एवं संघर्ष (दिल्ली सल्तनत एवं मुगल साम्राज्य)
- 2.4.2 प्रतिरोध का स्वरूप : दिल्ली सल्तनत एवं मुगल साम्राज्य
- 2.4.3 साम्राज्यों का पतन : दिल्ली सल्तनत एवं मुगल साम्राज्य
- 2.4.4 क्षेत्रीय राज्यों का उद्भव : दिल्ली सल्तनत एवं मुगल साम्राज्य
- 2.4.5 राज्य निर्माण प्रणाली : दिल्ली सल्तनत एवं मुगल साम्राज्य

2.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
2.6 सारांश
2.7 मुख्य शब्दावली
2.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
2.9 सहायक पाठ्य सामग्री

2.0 परिचय

दिल्ली सल्तनत के अंतर्गत जिस प्रशासन तंत्र का विकास हुआ वह अब्बासी और उसके बाद गजनवी एवं सत्जूकी प्रशासन तंत्रों पर आधारित था। इस पर इरानी प्रशासन तंत्र और भारतीय परिस्थितियों एवं भारतीय परंपराओं का भी प्रभाव पड़ा। प्रशासन में राजा की मदद के लिए मंत्रिपरिषद की व्यवस्था की परंपरा प्राचीन काल से चली आ रही है। इसलिए हम देखते हैं कि सरकार के कुछ विभाग अथवा पद वस्तुतः पुरानी संस्थाएं ही थे, केवल उन्हें एक नया नाम दे दिया गया था। मध्यकाल में अनेक नई संस्थाओं और संकल्पनाओं का भी विकास किया जिसके आधार पर शक्ति का केंद्रीकरण हुआ व सत्ता के एक ऐसे स्वरूप का विकास हुआ जो भारत में पहले प्रचलित नहीं था।

छठवीं शताब्दी से ही भारत में इस्लाम का प्रवेश होने लगा था। मुहम्मद बिन कासिम (711–12), महमूद गजनवी (1000–1027), मो. गौरी (1175–1205) के आक्रमणों ने भारत में मुस्लिम सत्ता को सुदृढ़ किया। कुतुबुद्दीन ऐबक ने 1206 में भारत में मुस्लिम सत्ता की स्थापना की। उसके बाद क्रमशः दास वंश, खिलजी वंश, तुगलक वंश, सैयद एवं लोदी वंश ने सल्तनत शासन व्यवस्था को मजबूती प्रदान की। आरंभिक मुस्लिम शासकों को प्रारंभ में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। इल्तुतमिश, बलबन, अलाउद्दीन खिलजी, मुहम्मद तुगलक के सैनिक शासन ने उन कठिनाइयों को दूर किया और केंद्रीय सत्ता की स्थापना की।

मुगल साम्राज्य की स्थापना के साथ भारत में नवीन मुस्लिम युग का आरंभ हुआ। इस वंश के शासकों ने भारत में वंशों की स्थिरता, केंद्रीय शासन व्यवस्था, राष्ट्रीयता का सिद्धांत एवं राजपूतों से मित्रतापूर्ण संबंध की नीति का अनुपालन कर भारत में राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एकता का पुनरुत्थान किया।

प्रशासनिक व्यवस्था में इक्ता, अमरम, मनसब, जागीर एवं ग्रामीण प्रशामन को महत्व मिला। शासक वर्ग के उदय के साथ मध्य काल में आव्रजन भी हुआ तथा स्थानीय समझौते एवं संघर्ष भी प्रकाश में आए। मध्यकालीन साम्राज्य में संकट एवं विघटन की प्रक्रिया के साथ साम्राज्य व्यवस्था में निहित तनाव व संघर्ष भी सामने आए। जो अंततः साम्राज्यों के पतन, क्षेत्रीय राज्यों के उत्थान एवं राज्य निर्माण की प्रणाली में परिणत हुआ।

प्रस्तुत इकाई में मध्यकाल में दिल्ली सल्तनत एवं मुगल सल्तनत की शासन व्यवस्था के समस्त पहलुओं का अध्ययन किया गया है।

2.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- सल्तनत काल के प्रशासन की जानकारी प्राप्त कर पाएंगे;
- सल्तनत कालीन एवं मुगलकालीन प्रशासन की विशेषताओं से परिचित हो पाएंगे;
- इक्ता, अमरम, मनसब एवं जागीर व्यवस्था से अवगत हो पाएंगे;
- मध्यकाल में राज्य एवं ग्रामीण प्रशासन की विवेचना कर पाएंगे;
- मध्यकालीन शासकों के बारे में जानकारी प्राप्त कर पाएंगे;
- सत्ता वर्ग के गठन एवं विकास की प्रक्रिया को समझ पाएंगे;
- स्थानीय समझौते एवं उनके बीच में राजनीतिक संघर्ष का अवलोकन कर पाएंगे;
- आव्रजन के घटकों के प्रभाव का अध्ययन कर पाएंगे;
- मध्यकालीन साम्राज्यों के क्रमबद्ध संकट एवं विघटन की जानकारी प्राप्त कर पाएंगे;

- मध्यकालीन भारतीय साम्राज्यों के पतन की पृष्ठभूमि से अवगत हो पाएंगे;
- मध्यकाल में 'राज्य निर्माण प्रणाली' की रूपरेखा को समझ पाएंगे।

टिप्पणी

2.2 मध्यकाल (सल्तनतकाल) में संस्थागत संरचना और शासन व्यवस्था का विकास

दिल्ली सल्तनत के सुल्तानों ने लगभग 300 वर्ष शासन किया। तुर्क सुल्तान विदेशी थे इसलिए उनकी शासन पद्धति भी विदेशी थी। अधिकांश सुल्तानों ने धर्म को सर्वोच्च मान्यता दी और उसी के अनुसार शासन संचालित किया। डॉ. आई.एच. कुरैशी इस मत से सहमत नहीं हैं। उनके अनुसार सल्तनत कालीन प्रशासनिक व्यवस्था हिंदू व मुस्लिम पद्धति का मिश्रण थी।

केंद्रीय प्रशासन

सुल्तान– सुल्तान दिल्ली सल्तनत का प्रधान था। राज्य की समस्त शक्तियां उसमें निहित थी। "वह ही नियमों को बनाने वाला और तोड़ने वाला था।"– डॉ. श्रीवास्तव ने लिखा है। "वह पूर्णतः निरंकुश था और उसकी सत्ता सर्वोच्च थी।" उसे ईश्वर का प्रतिनिधि विचार किया जाता था और लोग उसकी आज्ञा का पालन करने के लिए बाध्य थे। उस समय कार्यपालिका और न्यायपालिका की शक्तियां भी सुल्तान में निहित थी। वह सभी विभागों का प्रधान था और समस्त नियुक्तियां उसी के द्वारा की जाती थीं।

दैवीय उत्पत्ति का सिद्धांत– दिल्ली सल्तनत के सुल्तान स्वेच्छारी और निरंकुशता में विश्वास करते थे। वे दैवीय उत्पत्ति के सिद्धांत पर विश्वास कर अपने को ईश्वर का प्रतिनिधि समझते थे। उनकी शक्ति का आधार धार्मिक मान्यता एवं सैन्य बल था। अल्लाह के प्रतिनिधि को नियावते–खुदाई तथा 'जिल्ले इलाही' अर्थात ईश्वर का प्रतिबिम्ब भी माना जाता था। बलबन का मानना था– "राजा का हृदय ईश्वर कृपा का विशेष कोष है और समस्त मनुष्य जाति में उसके समान कोई नहीं है।"

सुल्तान के कर्त्तव्य– सुल्तान के कर्तव्यों में मुस्लिम धर्म की रक्षा करना, प्रजा के पारस्परिक झगड़ों का अंत करना, इस्लामी राज्य की सुरक्षा करना, दंड विधान की व्यवस्था करना, सड़कों का निर्माण तथा सुरक्षा करना, बाह्य आक्रमण से सल्तनत की रक्षा करना, कर वसूलना, अधिकारियों की नियुक्ति करना शामिल था।

मंत्रिपरिषद– कोई भी शासक, शासन का संचालन अकेले नहीं कर सकता था अतः शासन के व्यवस्थित संचालन के लिए मंत्रिपरिषद का गठन किया जाता था।

मंत्रिपरिषद का संचालन– मंत्रिपरिषद को 'मजलिस–ए–खास' कहा जाता था। सुल्तान इससे विचार–विमर्श कर सलाह लिया करता था परंतु उनकी सलाह मानने के लिए सुल्तान बाध्य नहीं था। 'बार–ए–खास' दरबार में अपने सभी दरबारियों, अमीरों, मालिकों और अन्य लोगों को बुलाकर राज्य संबंधी कार्यों की चर्चा करता था। 'बार–ए–आजम' (सभा हाल) राजकाज का अधिकांश कार्य पूरा करता था।

मंत्रिपरिषद में चार मंत्री होते थे–

(1) वजीर

(2) आरिज ए. मुमालिक– सैन्य विभाग (स्थापना बलबन द्वारा)

(3) दीवान–ए–इंशा– शाही पत्र व्यवहार का उत्तरदायित्व

(4) दीवान–ए–रिसालत– विदेश विभाग

- **वजीर या प्रधानमंत्री**– मंत्रियों में सर्वाधिक महत्व का पद वजीर का था। वह सुल्तान का सर्वाधिक महत्वपूर्ण सलाहकार था। शासन का स्थायित्व काफी हद तक वजीर की योग्यता पर निर्भर था। यह सुल्तान की अनुपस्थिति में राज्य के कार्य देखता था। वित्त विभाग का भी कार्य करता था। उसके कार्यालय को दीवान–ए–वजारत कहा जाता था।
- **दीवान–ए–आरिज**– यह सैन्य विभाग का प्रमुख था और इसका प्रमुख कार्य सैनिकों की भर्ती करना, घोड़ों को दागना और सैनिकों का हुलिया रखना था। सेना में अनुशासन बनाये रखना भी उसका उत्तरदायित्व था। सुल्तान के आदेश पर वह कभी–कभी सेना का नेतृत्व भी करता था।
- **दीवान ए इंशा**– यह शाही पत्र व्यवहार का प्रमुख अधिकारी था। इसे मुंशी भी कहा जाता था। समस्त सरकारी फरमान इसके ही कार्यालय से निकलते थे।
- **दीवान–ए–रिसालत**– डॉ. हबीबुल्ला इसे विदेश विभाग का प्रमुख लिखते हैं। डॉ. कुरैशी इसे धार्मिक कार्यों से संबंधित बताते हैं। डा. पी.एन. चोपड़ा ने इसे अपील मंत्री स्वीकार किया है। किंतु वास्तव में यह विदेश मंत्री होता था।

अन्य विभाग

- नायब–वजीर– यह वजीर की अनुपस्थिति में उसका कार्य देखता था।
- मुशरिफ–ए–मुमालिक– इसका काम प्रांत तथा अन्य विभागों से हिसाब का लेखा–जोखा रखने का था।
- मुस्तौफी–ए–मुमालिक– यह मुशरिफ द्वारा तैयार किये गये हिसाब की जांच करता था।
- मजूमदार औनर खाजिन– कोषाध्यक्ष– वजीर की सहायता करते थे।

→ दीवान–ए–कजा– यह न्याय विभाग था, इसका प्रधान काजी–ए–मुमालिक होता था।

→ वकील–ए–दर– इसका पद सबसे पहले तुगलक वंशी नसिरुद्दीन महमूद के समय आरंभ हुआ। यह सुल्तान की व्यक्तिगत सेवाओं के लिए था।

→ सर–ए–जानदार– अंगरक्षकों का प्रधान था।

→ बर्र–ए–खास– इसमें वह महत्वपूर्ण मालिकों, अमीरों एवं अन्य महत्वपूर्ण व्यक्तियों से मिलता था।

टिप्पणी

→ दीवान–ए–वकूफ– जलालुद्दीन खिलजी ने इस विभाग की स्थापना की। यह राजकीय व्यय का ब्यौरा रखता था।

→ दीवान–ए–मुस्तखराज– अलाउद्दीन ने इस विभाग की स्थापना की। भू–राजस्व से संबंधित विभाग था।

→ दीवान–ए–सियासत– मोहम्मद तुगलक द्वारा स्थापित यह दंड विभाग था।

→ अमीर–ए–मजलिस– यह शाही दावतों एवं आयोजनों की देख–रेख करता था।

→ अमीर–ए–आखूर– यह अस्तबल का प्रधान था।

→ शहना–ए–पील– यह हस्तिशाला का प्रधान होता था।

→ नायब–ए–ममलिकात– बहराम शाह ने इस का सृजन किया।

→ दीवान–ए–रियायत– अलाउद्दीन ने अपनी बाजार नीति को लागू करके इसकी स्थापना की।

→ दीवान–ए–कोही– मोहम्मद तुगलक के द्वारा सृजन किया गया। कृषि विभाग से संबंधित।

→ दीवान–ए–खैरात– मुस्लिम गरीबों के कल्याण हेतु फिरोज तुगलक द्वारा स्थापना।

→ ख्वाजा– प्रांतीय प्रशासन में आय–व्यय का ब्यौरा केंद्र सरकार को देता था।

→ दीवान–ए–इश्तिहाक– पेंशन विभाग– फिरोज तुगलक द्वारा स्थापित।

→ बरीद– यह सूचना विभाग का प्रमुख होता था।

अन्य विशेषताएं

साम्प्रदायिक राज्य– प्रत्येक मुस्लिम राज्य में इस्लाम के शास्त्रीय कानून ही सर्वोच्च होते थे। व्यवहार–विधि उनके अधीन होती है और वास्तव में उसी में लीन हो जाती है। मुस्लिम उलेमा सदैव कुरान के कानूनों को कार्यान्वित करने तथा मूर्ति–पूजा और इस्लाम–द्रोह का विरोध करने पर जोर दिया करते थे। दिल्ली सल्तनत में शासकों का आचरण भी कुरान के नियमों द्वारा नियंत्रित होता था। सुल्तान को अपने निजी जीवन में ही नहीं, बल्कि शासन के संबंध में भी इन नियमों का पालन करना पड़ता था।

खलीफा– विश्व के समस्त मुसलमानों का एक ही शासक था, वह था खलीफा। जब कभी कोई सूबेदार स्वतंत्र शासक बन जाता था तब भी अपने पद को स्थायित्व देने के लिए खलीफा का सहारा लेता, अपने को अधीनस्थ सामंत कहता था। दिल्ली सल्तनत के कुछ शक्तिशाली सुल्तानों ने खलीफा की सत्ता को पूर्ण रूप से स्वीकार नहीं किया।

उलेमा– मुस्लिम विधि की व्याख्या करने वालों को उलेमा कहा जाता था। उलेमा वर्ग को प्रशासन में अधिकार प्राप्त था और वे सुल्तान की शक्ति पर अंकुश का काम कर सकते थे। लेकिन व्यवहार में ऐसा नहीं था। परंतु सुल्तान को इस वर्ग को संतुष्ट रखना पड़ता था क्योंकि इसका प्रभाव जनता पर पड़ता था।

अमीर वर्ग– अमीर वर्ग का सुल्तान की शक्ति पर प्रभाव रहता था लेकिन इस प्रभाव को अंकुश नहीं कहा जा सकता था। इस वर्ग का प्रभाव उस स्थिति में होता था जब

सुल्तान अयोग्य या दुर्बल होता था। प्रायः शक्तिशाली अमीर वर्ग का निर्माण करते थे और उनकी निष्ठा प्राप्त करते थे। लेकिन यह आवश्यक नहीं था कि अमीर वर्ग सुल्तान के उत्तराधिकारियों के प्रति निष्ठा रखे।

टिप्पणी

उत्तराधिकार– इस्लामी विधि के अनुसार सुल्तान का निर्वाचन होना आवश्यक था। इस निर्वाचन का अधिकार सैद्धांतिक रूप से संपूर्ण मुस्लिम समाज को था, किंतु व्यावहारिक रूप से यह असंभव था। अतः यह निर्वाचन कुछ व्यक्तियों तक और अंत में एक व्यक्ति तक सीमित रह गया। सुल्तान अपनी मृत्यु के समय अपने उत्तराधिकारी को मनोनीत करते थे। कुछ उदाहरण शक्ति पर आधारित सिद्धांत के भी मिलते हैं। अतः उत्तराधिकार का कोई निश्चित नियम सल्तनत काल में नहीं था।

निष्कर्ष

विकास की इस प्रक्रिया के दौरान धीरे–धीरे शासन का एक नया केंद्रीकृत रूप सामने आया। राजवंशों के बार–बार परिवर्तन से राजतंत्र, अधिकारी वर्ग का समुचित विकास नहीं हो पाया जिससे सुसंगठित प्रशासन व राजतंत्र की परंपरा स्थापित हो सकती थी। सुल्तानों ने सैनिक संगठन पर विशेष बल नहीं दिया जिससे दिल्ली सल्तनत का विघटन प्रारंभ हो गया।

प्रांतीय प्रशासन

सल्तनत के प्रारंभिक काल में प्रांतों का स्वरूप निश्चित नहीं था। अविजित या अर्द्धविजित क्षेत्रों को अमीरों में बांट दिया जाता था और इन अमीरों का कार्य उन क्षेत्रों को जीत कर उनपर नियंत्रण स्थापित करना था। इन्हें नायब, वली, भुक्ति भी कहा जाता था। दक्षिण सल्तनत के विकास के कारण उसे सुविधा की दृष्टि से 11 प्रांतों में बांटा गया था। इब्नबतूता का मानना है कि मोहम्मद तुगलक के समय 23 प्रांत थे।

प्रांतों की व्यवस्था के लिए अमीरों की नियुक्ति होती थी। सुल्तान इन अमीरों का एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में स्थानान्तरण भी करते थे। अलाउद्दीन के साम्राज्य में दो प्रकार के इक्ते थे। प्रथम वे इक्ते जो पहले से चले आ रहे थे। अलाउद्दीन ने उनमें कोई परिवर्तन नहीं किया, द्वितीय– नवविजित दक्षिणी राज्य जिन पर उसने सैनिक सूबेदार नियुक्त किए। हिंदू शासकों की रियासतों, जिन्होंने सुल्तान की अधीनता स्वीकार कर ली उन्हें भी इक्तों के समकक्ष रखा गया। प्रांतों के सूबेदारों को वली या नाजिम कहा जाता था।

दिल्ली सुल्तानों की इक्ता व्यवस्था उनके शामन की मुख्य विशेषता रही। भारत में प्रचलित सामंती प्रथा को नष्ट करने और साम्राज्य के दूरस्थ प्रदेशों को केंद्र से जोड़ने के लिए एक महत्वपूर्ण साधन के रूप में इक्ता प्रणाली का प्रयोग किया गया। इस प्रणाली का प्रारंभ सुल्तान इल्तुतमिश के शासनकाल में हुआ। सुल्तान ने अपने दूरस्थ प्रदेशों में जिन बड़े सैनिक अधिकारियों की नियुक्ति की उनको वेतन देने की प्रथा के रूप में यह व्यवस्था आरंभ हुई। इन सैनिक अधिकारियों को सुल्तान अपने राजकोष से वेतन नहीं देता था, वरन उन्हें एक निश्चित भूमि क्षेत्र (इक्ता) प्रदान किया जाता था। इस भूमि क्षेत्र से होने वाली आय से वे अपना वेतन प्रापत करते थे। इन्हें वली, मुक्ता, अमीर या मलिक पुकारा जाता था।

सूबेदार या गवर्नर का दायित्व प्रांतों में शांति स्थापित करने का होता था। इनकी नियुक्ति सुल्तान द्वारा होती थी और पदच्युत करने का अधिकार भी सुल्तान के पास होता था। उसका मुख्य कर्त्तव्य शांति–व्यवस्था स्थापित करना, विद्रोहों को कुचलना, कर वसूलना और न्यायिक मामलों को हल करना था। उसे प्रांत की आय–व्यय का लेखा–जोखा केंद्रीय सरकार को देना पड़ता था। ये गवर्नर केवल सुल्तान के प्रति उत्तरदायी होते थे। युद्ध और संकट के समय ये सुल्तान की सैनिक सहायता भी करते थे। अकसर शक्तिशाली गवर्नर सुल्तान की शाही शक्तियों को हस्तगत करने का प्रयास करते थे क्योंकि इस महत्वपूर्ण पद पर कार्य करते हुए वे अत्यधिक महत्वकांक्षी हो जाते थे।

इनके अतिरिक्त भी प्रांतों में कुछ अतिरिक्त कर्मचारी होते थे जिनमें 'नाजिर' तथा 'वाकुफ' मुख्य होते थे। उनके अतिरिक्त 'साहिब–ए–दीवान' अथवा 'ख्वाजा' नाम का उच्च अधिकारी होता था। संभवतः वजीर की सिफारिश के आधार पर ही सुल्तान उसकी नियुक्ति करता था। वह हिसाब रखता था तथा केंद्रीय सरकार के पास विस्तृत ब्यौरा भेजा करता था– डॉ. कुरैशी का मत है "वह सुल्तान के प्रति उत्तरदायी था।"

प्रांतों का प्रशासन केंद्रीय प्रशासन से मिलता–जुलता था और सुल्तान का प्रांतीय प्रशासन में कम ही हस्तक्षेप होता था।

2.2.1 इक्ता व्यवस्था

दिल्ली सुल्तानों की इक्ता व्यवस्था उनके शासन काल की मुख्य विशेषता थी। इस व्यवस्था का प्रारंभ एशिया में ईरान के बायिड (Byyd's) राजवंश ने किया जिसका कार्यकाल 934 से 1048 तक रहा था। इस राजवंश के समाप्त होने के बाद यह प्रथा भी समाप्त हो गई लेकिन बाद में इसे तुर्की के सुल्तानों द्वारा पुनः शुरू किया गया।

इक्ता का अर्थ– "धन के स्थान पर तनख्वाह के रूप में भूमि प्रदान करना।" भारत में मुसलमानों का शासन स्थापित होने के पश्चात उनके साम्राज्य का विस्तार हो गया जिसमें सुल्तान का अकेले इतने बड़े क्षेत्र पर शासन करना संभव नहीं था अतः साम्राज्य को कई छोटे–छोटे क्षेत्रों में विभाजित कर दिया गया। उन्हें ही इक्ता कहा जाने लगा।

इक्ता प्रणाली का प्रारंभ– भारत में इक्ता प्रणाली प्रारंभ करने के प्रथम प्रयासों में मुहम्मद गौरी द्वारा कुतुबुद्दीन ऐबक को हाँसी (हरियाणा) तथा नासिरुद्दीन कुबाचा को सिंध का क्षेत्र देना, इक्ता व्यवस्था के प्रारंभिक प्रयोग थे। प्रशासनिक स्तर पर इसकी शुरुआत भारत में इल्तुतमिश के द्वारा की गई।

इक्ता प्रणाली की शुरुआत प्रारंभिक सुल्तानों की आवश्यकता थी। ये इक्तायें सुल्तान की प्रशासनिक और सैनिक सेवा करने के बदले में प्रदान की जाती थी। इक्ता दो प्रकार की होती थी– बड़ी इक्ता– ये इत्तेदार भूमि में राजस्व वसूली के साथ–साथ सैनिक और प्रशासनिक कर्त्तव्य भी करते थे। दूसरी इक्ता 'छोटी इक्ता' कहलाती थी। यह वेतन के रूप में सैनिकों को प्रदान की जाती थी। इसमें वह राजस्व वसूली कर सकता था।

इत्तेदार के कार्य

(1) लगान वसूल करना

(2) सैनिक व्यवस्था करना

(3) शांति स्थापित करना

(4) प्रशासनिक एवं सैनिक कार्यों की रिक्तियों को पूरा करना

(5) प्राप्त राजस्व से अपने सैनिक खर्च निकालकर शेष रकम को सुल्तान के राजकोष में जमा करना था। बची हुई रकम को 'फवाजिल' कहा जाता था।

इक्तेदार अपनी इक्ता पर सुल्तान के नाम पर शासन करता था उसका पद वंशानुगत नहीं था, इनका स्थानांतरण भी होता था।

इक्ता प्रणाली का विकास– इस प्रणाली की शुरुआत इल्तुतमिश के शासन काल से हुई। इसका सर्वप्रथम प्रयोग उसने बंगाल में किया। बलबन ने 'ख्वाजा' नामक अधिकारी नियुक्त किया, जो इक्ता भूमि की आय का आकलन करता था 'अलाउद्दीन खिलजी' ने इक्तादारों के स्थानांतरण पर बल दिया। इसके अलावा उसने केंद्रीय प्रशासन के हस्तक्षेप को भी बढ़ाया। गयासुद्दीन तुगलक ने इक्तेदार की व्यक्तिगत आय तथा उसके अधीन सैनिकों का वेतन अलग–अलग रूप में निर्धारित किया। मुहम्मद बिन तुगलक ने इक्तेदारों पर अत्यधिक नियंत्रण लगाया। उसने इक्ता क्षेत्र में इत्तेदारों के समकक्ष अमीर नामक अधिकारी को नियुक्त किया। उसने सैनिकों को नगद वेतन देने की घोषणा की।

इक्ता प्रणाली में कुछ दोष भी थे। इक्तेदार इक्ता की आय व खर्च में हेरा फेरी कर भ्रष्टाचार करते थे। इसे रोकने के लिए दिल्ली सल्तनत के सुल्तानों ने बहुत प्रयास किया। इक्तादारी व्यवस्था राजपूत शासकों की सामंती प्रथा थी। दिल्ली सल्तनत को भारत में स्थापित करने में इक्ता व्यवस्था बहुत ही सहयक सिद्ध हुई।

2.2.2 अमरम व्यवस्था

विजय नगर साम्राज्य में प्रान्ताध्यक्षों के साथ–साथ नापंकर व्यवस्था भी थी जो सामंतवादी व्यवस्था का ही एक रूप था। कुछ विद्धानों के अनुसार 'नायक' शब्द सेनापतियों के लिए प्रयुक्त किया जाता था। अन्य विद्वान 'नायक' को भूसामंत मानते हैं। ये भू सामंत निश्चित संख्या में सैनिक रखते थे जिनके व्यय के लिए राजा उन्हें भूखंड (जागीर) प्रदान करता था जिसे 'अमरम' कहा जाता था। अमरम प्राप्त करने पर नायक के दो उत्तरदायित्व होते थे– प्रथम इसका आय–व्यय केंद्रीय सरकार को प्रस्तुत करना तथा दूसरा निश्चित संख्या में सैनिक रखना। जिन्हें राजा की सेवा के लिए प्रस्तुत करना पड़ता था। इन नायकों को 'अमरम' में प्रशासनिक अधिकार प्राप्त थे। उत्तरदायित्वों का निर्वाह न करने पर राजा अमरम को जब्त कर सकता था और नायक को दंड दे सकता था। यह व्यवस्था मुख्य रूप से 'तमिलनाडु' क्षेत्र में प्रचलित थी। इन नायकों पर नियंत्रण स्थापित करने के लिए 'अच्युत राय' ने 'महामण्डलेश्वर' नामक अधिकारी की नियुक्ति की थी। पुर्तगाली यात्री 'नूनिज' और 'पायस' ने इस व्यवस्था का वर्णन किया है।

टिप्पणी

- **अमरनायकों के कार्य**– अपने क्षेत्र में किसानों, शिल्पकारों और व्यापारियों से कर एवं अन्य बकाया राशि एकत्र करते थे।
- राजस्व का एक भाग वे निजी उपयोग और घोड़ों एवं हाथियों की एक निर्धारित टुकड़ी को बनाये रखने के लिए अपने पास रखते थे।
- इससे विजय नगर को प्रभावी सैन्य बल मिला।
- राजस्व का कुछ उपयोग मंदिरों के रखरखाव और सिंचाई कार्यों के लिए भी किया जाता था।
- अमरनायक राजा को वार्षिक रूप में भेंट भेजते थे और राजा के प्रति निष्ठा दिखाते हेतु उपहारों के साथ दरबार में उपस्थित होते थे।
- राजा भी उनका स्थानान्तरण कर अपने नियंत्रण का दावा करता था।

इस प्रकार राजा के प्रशासन को व्यवस्थित रूप में चलाने के लिए अमरम का महत्वपूर्ण योगदान था हालांकि सत्रहवीं शताब्दी के दौरान इनमें से कई नायकों ने स्वतंत्र राज्य स्थापित किये। इसने विजयनगर साम्राज्य के पतन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

2.2.3 मनसब

मनसबदारी व्यवस्था मुगल प्रशासनिक व्यवस्था का एक ऐसा रूप है जिसमें सैनिक एवं असैनिक दोनों रूप मिले हुए हैं। इस व्यवस्था को अकबर के शासन काल के 19वें वर्ष में लागू किया गया था जिसका आगे 39वें वर्ष में और अधिक विकास किया गया। 'दशमलव प्रणाली' पर आधारित व्यवस्था संभवतः 'चंगेज खां' से ली गई थी।

'मनसब' एक अरबी शब्द है, जिसका अर्थ है 'स्थान निश्चित करना।' इरविन के मतानुसार– "मनसबदारी मुगल राज्य के अधिकारी का वह पद था, जो उसके पद, उसके वेतन तथा दरबार में उसका स्थान निश्चित करता था।"

मनसब दश्मिक प्रणाली (10 : 20 : 100 : 500 : 1000 इत्यादि) पर आधारित थी। अकबर के पूर्व भी मंगोलो, अलाउद्दीन खिलजी और शेरशाह आदि की सेना में भी दश्मिक प्रणाली तथा दाग की व्यवस्था की गई थी। मनसब से 'पद' और प्रतिष्ठा का बोध होता था।

मनसबदारी प्रथा की विशेषताएं

- मनसबदारों का वर्गीकरण करते समय 'जात' और 'सवार' विशेषणों का प्रयोग होता था। जात मनसबदार के 5000 से नीचे के प्रत्येक मनसब में तीन श्रेणियां थी–

(i) प्रथम श्रेणी के मनसबदार का 'जात' और 'सवार' का दर्जा समान होता था। 5000 के जात मनसबदार को 5000 घुड़सवार सैनिकों की व्यवस्था करनी होती थी।

(ii) द्वितीय श्रेणी के मनसबदार को 'जात' पद से कुछ कम या आधे घुड़सवारों की व्यवस्था करनी होती थी अर्थात् 5000 के जात मनसबदार को 3000 घुड़सवार सैनिकों की व्यवस्था करनी होती थी।

(iii) तृतीय श्रेणी के मनसबदार को जात मनसब के आधे से भी कम घुड़सवार रखने होते थे अर्थात् 5000 के जात मनसबदार को 2000 घुड़सवारों की व्यवस्था करनी होती थी।

टिप्पणी

(1) प्रारंभिक दौर में सबसे बड़ा 5000 / 5000 जात व सवार का मनसब शहजादो या विशिष्ट व्यक्तियों को ही दिया जाता था। बाद में इसमें वृद्धि हुई।

(2) मनसबदारों को मनसब में निर्दिष्ट घुड़सवारों, युद्ध में काम आने वाले तथा बोझा ढोने वाले पशुओं व गाड़ियों की व्यवस्था करनी पड़ती थी।

(3) मनसबदारों को मनसब देने के बाद आंशिक अदायगी की जाती थी। शेष अदायगी निरीक्षण तथा दाग की औपचारिकताएं पूर्ण करने की स्थिति में होती थी।

(4) मनसबदारों को अपने हाथी और घोड़ों को दाग के लिए उपस्थित करना आवश्यक था। सैनिकों का हुलिया रजिस्टर में लिखा जाता था।

(5) मनसबदार की नियुक्ति, पदोन्नति और पदच्युत करने का अधिकार बादशाह के हाथ में था।

(6) मनसबदार वंशानुगत नहीं था।

(7) मनसब सैनिक एवं असैनिक दोनों कार्य करते थे।

(8) मनसब का दर्जा 10 से 12,000 तक हो गया था।

(9) यह आवश्यक नहीं था कि उच्च मनसबदार को पद भी ऊंचा मिले। कई बार नीची श्रेणी के मनसबदार को भी उच्च पद प्राप्त हुए। मानसिंह 7000 का मनसब होने पर भी मंत्री नहीं था।

(10) मनसबदारों का वेतन नगद या जागीर दोनों रूपों में दिया जाता था।

(11) जहांगीर के शासन के उत्तरार्द्ध में 'सवार' पद में संशोधन हुआ तथा दुःअस्पा (दो घोड़े) तथा सिंह अस्पा (तीन घोड़े) की व्यवस्था की गई अर्थात् मनसबदारों द्वारा अतिरिक्त अश्वारोही सैनिक रखने पर उन्हें इसके लिए अतिरिक्त भत्ता दिया जाता था।

मनसबदारी व्यवस्था के गुण

मनसबदारी व्यवस्था ने मुगल साम्राज्य के विस्तार में प्रमुख भूमिका निभायी। उनके माध्यम से ही साम्राज्य में शांति और व्यवस्था कायम हुई।

(1) मनसबदारी व्यवस्था वंशानुगत नहीं थी।

(2) मनसबदार की नियुक्ति उसकी व्यक्तिगत योग्यता, निष्ठा और प्रतिभा पर निर्भर करती थी।

(3) मनसबदारी व्यवस्था के कारण केंद्र अधीनस्थ एक विशाल एवं शक्तिशाली सेना का निर्माण हुआ।

(4) मनसबदारों ने अपनी ही जाति के सवार नियुक्त किए जो अपनी जातीय श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए उत्साह से कार्य करते थे।

टिप्पणी

(5) राजपूतों को उच्च मनसब प्राप्त हुए, जिन्होंने मनसबदारों के विरुद्ध संतुलन का कार्य किया।

मनसबदारी व्यवस्था के दोष

(1) मनसबदारी व्यवस्था पर आधारित सैनिक संगठन बड़ा महंगा था, इस व्यवस्था के कारण राजस्व का भारी अपव्यय होता था।

(2) मनसबदारों को सैनिक एवं असैन्य दोनों ही प्रकार के अधिकार दिये गये थे, जो प्रशासन के आदर्श के विपरीत थे।

(3) मनसबदारों का वेतन जागीर के रूप में दिया जाता था जबकि उसे नगद भी दिया जाता था, जैसे कि चंद्रगुप्त मौर्य और अलाउद्दीन खिलजी ने दिया।

(4) काफी उच्च वेतनमान ने उन्हें विलासी बना दिया एवं वे भोग में लिप्त हो गये।

(5) जातीय आधार पर संगठित सेनाओं के सैनिकों की निष्ठा अपने मनसबदार के प्रति होती थी।

(6) मनसबदारों से सैनिक दायित्वों को पूरा करने की अपेक्षा थी।

(7) मनसबदारों की नियुक्ति के लिए कोई विशेष प्रक्रिया नहीं अपनाई जाती थी जिससे अयोग्य लोगों के चयन का खतरा बना रहता था।

(8) मनसबदारों की कोई निश्चित सीमा निर्धारित नहीं की गई थी जिससे औरंगजेब के शासन काल में संकट उत्पन्न हो गया।

उपरोक्त कमियां के फलस्वरूप भी मुगल शासन तंत्र का आधार शक्तिशाली बना रहा। अकबर अपनी सैन्य व्यवस्था पर अधिक ध्यान देता था। उसी आधार पर उसने अपने साम्राज्य का विस्तार किया। मनसबदारी व्यवस्था पर आधारित मुगल सत्ता अकबर के शासन काल में उच्चतम शिखर पर पहुंच गई।

2.2.4 जागीर

मुगल प्रशासनिक अधिकारी या मुगल मनसबदारों के वेतन का निर्धारण तो नगद में किया जाता था लेकिन उसका भुगतान जागीर में होता था। दूसरे शब्दों में संबंधित क्षेत्रों का भू–राजस्व इन अधिकारियों को सौंप दिया जाता था। यह तथ्य उल्लेखनीय है कि अधिकारियों को क्षेत्र विशेष का स्वामित्व नहीं सौंपा जाता था बल्कि संबंधित क्षेत्र से सिर्फ भू–राजस्व वसूलने का अधिकार दिया जाता था।

भारत में मुगल शासन की स्थापना के पश्चात इसके संस्थापक बाबर ने अपनी जीत के बाद भूतपूर्व अफगान सरदारों को पुनःस्थापित किया एवं जीते गये क्षेत्र का 1/3 से ज्यादा हिस्सा उन्हें आवंटित किया। हुमायूं के शासन काल में यह प्रथा कायम रही।

अकबर के शासन काल में सभी क्षेत्रों को मोटे तौर पर खालिसा एवं जागीर में विभक्त किया गया। खालिसा का राजस्व राजकीय कोष को जाता था जबकि जागीरदारों को उनके पद के अनुसार नगद वेतन के बदले जागीर प्रदान की जाती थी।

टिप्पणी

सल्तनत–ए–मुगलिया

खालिसा	जागीर भूमि
↓	↓
भू राजस्व केंद्र को जाता था	प्रशासनिक अधिकारियों, सैनिकों धार्मिक वर्ग के व्यक्तियों को वेतन के बदले भूखंड दिया जाता था

जागीर के प्रकार– मुगल काल में चार प्रकार के राजस्व आवंटित किये जाते थे–

(1) वेतन के रूप में दी गई जागीर को 'तनखा–ए–जागीर' के नाम से जाना जाता था।

(2) किसी व्यक्ति को दी गई सशर्त जागीर को 'मसूरत–ए–जागीर' के नाम से जाना जाता था।

(3) धार्मिक एवं शैक्षणिक कार्यों के लिए प्रदान की गई जागीरों को 'इनाम–ए–जागीर' के नाम से जाना जाता था। यह जागीर पद एवं कार्य से रहित होता था।

(4) स्वायत्त शासकों एवं जमींदारों को जब उनका अपना क्षेत्र जागीर के रूप में लौटा दिया जाता था तो 'वतन–ए–जागीर' के नाम से जाना जाता था। ये राजपूत शासकों को प्रदान की गई थी।

(5) जहांगीर ने कुलीन मुसलमानों को 'वतन–ए–जागीर' की तर्ज पर जागीर प्रदान की जो 'अलतमगा–ए–जागीर' के नाम से जानी जाती थी।

(1) तनखा–ए–जागीर	वंशानुगत नहीं लेकिन स्थानान्तरणीय
(2) मशूरत–ए–जागीर	
(3) इनाम–ए–जागीर	
(4) वतन–ए–जागीर	वंशानुगत लेकिन स्थानान्तरणीय
(5) अलातमगा–ए–जागीर	

जागीरदार के कार्य

(i) जागीरदार को अपनी संबंधित जागीर से केवल 'मालवाजिव' वसूलने का अधिकार था।

(ii) अपने सहयोग के लिए 'अमलगुजार' फातेदार जैसे अधिकारियों की नियुक्ति करता था।

(iii) राजकीय पदाधिकारी जागीरदारों पर नजर रखा करते थे।

(iv) उनसे ये अपेक्षा की जाती थी कि किसानों का शोषण न हो।

(v) अकबर के शासन काल के 20वें वर्ष 'आमीन' नामक अधिकारी की नियुक्ति की गई – जागीरदार पर नजर रखने के लिए।

टिप्पणी

(vi) औरंगजेब के शासन काल में बड़े जागीरदारों को फौजदारी अधिकार भी सौंप दिये गए।

जागीरदार व्यवस्था के दोष– जागीरदारी व्यवस्था के निम्नलिखित दोष थे–

(i) जागीरदार अधिकतम राजस्व वसूलते थे जिससे किसानों का शोषण होता था।

(ii) स्थानांतरण के कारण वे अपनी संबंधित जागीर के विकास में दिलचस्पी नहीं लेते थे।

(iii) जागीरदार संबंधित जागीरों से बाहर के व्यक्ति होते थे इसलिए वे स्थानीय समस्याओं से रूबरू नहीं होते थे।

(iv) वे स्थानीय नागरिकों की भावनाओं से भी अनभिज्ञ होते थे।

(v) जागीरदार एवं जमींदार के बीच आपसी समझ का अभाव था। एक राज्य का प्रतिनिधि था तो दूसरा स्थानीय प्रतिनिधि था।

(vi) कालान्तर में सत्ता कमजोर होने के कारण जागीरदारों ने संबंधित जागीरों पर अधिकार कर उन्हें वंशानुगत बना लिया।

अंत में यही कहा जा सकता है कि कहीं न कहीं मुगल साम्राज्य की सफलता और असफलता में जागीरदारी व्यवस्था का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

2.2.5 मुगलकालीन शासन व्यवस्था

मुगल बाहर से आये हुए विदेशी थे उनकी शासन व्यवस्था का आधार उनके राजाओं की परिपाटी और तरीके थे वे एक विशिष्ट शासन–प्रणाली के अभ्यस्त थे और जब वे भारत आये तो यहां भी उन्हीं परिपाटियों और तरीकों का अनुसरण किया।

जदुनाथ सरकार के अनुसार "मुगल शासन प्रणाली भारतीय और अभारतीय प्रणाली का एक मिला–जुला सम्मिश्रण था अथवा वास्तविक रूप में यह फारस और अरब की प्रणाली भारतीय परिस्थितियों में प्रयोग की गई थी।"

मुगल सरकार पूर्णरूप से केंद्रित एकछत्र राज्य था। सम्राट ही सारे शासन तंत्र की धुरी होता था जिसके इर्द–गिर्द सारी शासन व्यवस्था कार्य करती थी।

शासन व्यवस्था की जानकारी के स्रोत– मुगल प्रशासन की जानकारी हमें 'दस्तूर–उल–अमल' (यह सरकारी नियमावली थी।), मुहम्मदखान द्वारा लिखित इकबालनामा जहांगीर, अब्दुल हमीद लाहौरी द्वारा रचित 'पादशाहनामा', निजामुद्दीन की 'तुजके जहांगीरी और तबकाते–अकबरी' तथा बदायूँनी की 'मुँतखब–उत–तवारीख' आदि से मिलती है। विदेशियों में सर थामस रो, बर्नियर, हॉकिन्स, टैरी आदि से हमें मुगल प्रशासन की जानकारी मिलती है।

2.2.6 केंद्रीय प्रशासन– मुगल सम्राट

मुगल साम्राज्य का प्रधान केंद्र 'बादशाह' होता था वह स्वयं को ईश्वर का प्रतिनिधि समझता था।

अबुल फजल ने लिखा है– "अल्ला की दृष्टि में राज्य से बढ़कर और कोई सम्मान नहीं है।" वह फिर लिखता है– "बादशाह भगवान से निकली हुई एक ज्योति

टिप्पणी

है, सूर्य की किरण है, संसार को प्रकाशमान करने वाला है। पूर्णता की पुस्तक का अंतिम तर्क है और सब गुणों को धारण करने वाला पात्र है। वह धर्म और शासन दोनों का मुखिया है। वह विधान निर्माता और न्याय का सर्वोच्च न्यायधीश है।" मुगल बादशाह लुई 14 के कथन को पूर्ण करते थे "मैं ही राज्य हूँ।"

शासक वर्ग– मुगल बादशाह के अतिरिक्त मुगल साम्राज्य के अनेक वर्ग ऐसे थे जो शासन में अपनी महत्वपूर्ण स्थिति के कारण शासक वर्ग में आते थे।

अमीर (उमर)– अमीर वर्ग में अमीर, ईरानी, तुरानी, राजपूत आदि वर्ग के लोग थे। भारतीय मुसलमानों को भी अकबर के समय उमरा वर्ग में सम्मिलित किया गया। उन्होंने मुगल बादशाहों को राज्य विस्तार, प्रशासन, भूमि व्यवस्था, सार्वजनिक हित के कार्य, व्यापार, वृद्धि आदि में सहयोग दिया।

केंद्रीय प्रशासनिक ढांचा– प्रशासन संबंधी समस्त गतिविधियों पर सूक्ष्म दृष्टि रखना बादशाह के लिए संभव नहीं था। अतः शासन प्रबंध के सुचारु रूप से संचालन के लिए मंत्रिपरिषद होती थी। सर जदुनाथ सरकार के अनुसार– "मुगल सम्राट आधुनिक अर्थों में मंत्रिपरिषद नहीं रखते थे। उनके मंत्री केवल सचिव थे, जो सम्राट की इच्छा का विस्तृत प्रशासन के मामले में पालन करते थे।"

केंद्रीय मंत्री तथा विभाग– बाबर से अकबर तक केंद्रीय विभागों की संख्या चार थी जो औरंगजेब के शासन काल में 'छः' हो गई।

(1) कोष तथा वित्त (राजस्व) इसका प्रमुख 'वजीर' था

(2) सैन्य विभाग प्रमुख– मीरबक्शी

(3) राजकीय ग्रह विभाग प्रमुख– खान–ए–सामान

(4) धार्मिक, शिक्षा और दान विभाग– सद्र–उस–सदूर

(5) न्याय विभाग– 'काजी–उल–कुजात'

(6) सदाचार निरीक्षण विभाग– मुहतसिब

(7) समाचार, संवाद तथा डाक विभाग– दरोगा–ए–डाक चौकी

(8) तोपखाना– मीर आतिश

(1) **वकील**– साम्राज्य के संरक्षक और 'वजीर–ए–आजम' का मिला जुला पद केवल अकबर के काल में रहा। वह सिर्फ बैरमखां के लिए था उसके बाद फिर कभी किसी को नहीं मिला।

(2) **वजीर या दीवान**– यह प्रधानमंत्री का पद था जिसे कभी वजीर कहा गया और कभी दीवान राज्य की आय–व्यय (वित्त विभाग) का कार्य देखना तथा अन्य विभागों पर नियंत्रण और नजर रखना उसके कार्य थे।

(3) **मीरबक्शी**– यह मंत्री सेना विभाग का प्रधान सेनापति स्वयं सम्राट होता था सेना और मनसबदारों से संबंधित सभी व्यवस्थाओं में मीरबक्शी का सहयोग और नियंत्रण रहता था।

(4) **मीर–ए–सामां**– यह अधिकारी सम्राट के घरेलू विभागों का अधिकारी होता था। बादशाह के निजी सेवक, दास और भंडारों का प्रमुख होता था। शाही परिवार की आवश्यकताओं की पूर्ति का काम उसके अधीन था।

(5) **सद–उल सदूर**– यह धार्मिक विभाग का प्रमुख था। इस विभाग का प्रमुख कार्य शरीयत की रक्षा करना तथा शरीयत के ज्ञान को फैलाना था। वह शिक्षा और दान विभाग का प्रमुख था तथा न्याय विभाग पर नजर रखता था। दान में दी जाने वाली भूमि (मदद–ए–मास) का निरीक्षण करता था।

(6) **काजी उल–कुमात**– मुगल बादशाह न्यायिक मामलों में सर्वोच्च थे परंतु सारी अपीलों को सुनने का समय नहीं मिलता था अतः यह कार्य 'काजी उल कुमात' करता था। वह न्याय के संपादन में सुल्तान की मदद करता था और स्वयं भी न्याय करता था।

(7) **मुहतसिब**– मुहतसिब का कार्य यह देखना था कि लोग इस्लामी नियमों के अनुसार आचरण करते हैं या नहीं। डॉ. आशीर्वादी लाल ने इसे जनता का सदाचार निरीक्षक कहा है।

(8) **दरोगा–ए–डाक चौकी**– यह अधिकारी साम्राज्य की डाक व्यवस्था के सुचारु रूप से आवागमन के लिए डाक–चौकियों की स्थापना करता था। इसके अधिकार में 'वाकयानवीस', सवानिह–निगार, खुफिया नवीस कार्य करते थे।

(9) **मीर आतिश**– तोपखाने का प्रमुख 'मीर आतिश' था। यह मीर बक्शी के अधीन कार्य करता था। शाही किलों की रक्षा करना, तोपों का निर्माण और रखरखाव, तोपखाने के सैनिकों का प्रशिक्षण एवं संगठन उसके उत्तरदायित्व थे।

अन्य उच्चाधिकारी

- दीवान–ए–वन– वेतन एवं जागीरों से संबंधित
- मीर–ए–अर्ज– बादशाह के पास भेजे जाने वाले पत्रों का प्रभारी
- मीर–ए–बहर– जल सेना प्रधान
- मीर–ए–तुजुक– यह धर्मानुष्ठान का प्रमुख था
- दीवान–ए–वयूतात– शाही कारखानों का अधीक्षक
- वाकया नवीस– यह समाचार लेखक था
- खुफिया नवीस– गुप्त पत्र लेखक
- हरकारा– जासूस, संदेशवाहक
- मुसद्दी– बंदरगाहों के प्रशासन की देखभाल

2.2.7 प्रांतीय शासन प्रबंध

मुगल साम्राज्य की विशालता के कारण मुगल बादशाहों ने इसे प्रांतों अथवा सूबों में बांटा था। अकबर के शासन काल में 15 सूबे थे। औरंगजेब के काल में उनकी संख्या 20 हो गई। जदूनाथ सरकार का मत है– "यह हूबहू केंद्रीय सरकार का संक्षिप्त स्वरूप है।"

प्रांतीय अधिकारी– सूबेदार या सिपहसलार– यह सूबे का प्रमुख था। सूबे में सभी कार्यों के लिए वह सम्राट की ओर से उत्तरदायी होता था।

- **दीवान**– यह सूबे का वित्त विभाग का प्रमुख था। आय–व्यय के समस्त कार्यों का संपादन करता था।

टिप्पणी

- **बक्शी और वाकयानवीस**– उसका कार्य सूबेदार के अधीन प्रांतीय सेना की भर्ती, तरक्की आदि का प्रबंध करना था।
- इसके अलावा सूबे में 'सद्र और काजी' 'कोतवाल' तथा मीर बहर प्रमुख अधिकारी होते थे।

सरकार– प्रांत या सूबा सरकारों में विभक्त था। सरकार का प्रमुख 'फौजदार' होता था। उसकी नियुक्ति केंद्र के द्वारा होती थी वह एक सैनिक अधिकारी होता था। सरकार के अर्थ विभाग का प्रमुख 'अमलगुजार', बितिन्ची, 'खजानदार' (खजांची) प्रमुख थे।

परगना– सरकार परगनों में विभक्त थी। शासन की सबसे छोटी इकाई के चार प्रमुख अधिकारी थे।

(i) शिकदार– प्रशासनिक अधिकारी था।

(ii) आमिल या मुंसिफ– वित्त विभाग का प्रमुख था।

(iii) फातेदार– खजांची

(iv) कानूनगो– किसानों की भूमि और कर से संबंधित जानकारी रखता था।

ग्राम और ग्राम पंचायत– ग्राम का प्रशासन ग्राम पंचायतों के द्वारा होता था। ग्राम में संबंधित सभी कार्य यथा– मुकदमे, ग्राम रक्षा, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि का प्रबंध ग्राम पंचायतों द्वारा ही किया जाता था।

निष्कर्ष– मुगल शासन व्यवस्था की सर्व प्रमुख विशेषता उसका केंद्रीकृत होना था। प्रमुख अधिकारियों से लेकर जिले के प्रमुख अधिकारियों की नियुक्ति का दायित्व "मुगल सम्राट" का होता था। अतः वे साम्राट के प्रति पूर्णतः स्वामी भक्त होते थे। प्रशासनिक नीतियों का उद्देश्य भारत में केंद्रीयकृत शासन प्रणाली की स्थापना के साथ आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक उत्थान करना भी था इसमें मुगल सम्राट पूर्णतः सफल थे।

मध्यकालीन ग्राम– प्राचीन काल से लेकर मध्यकाल तक ग्रामीण समाज के स्वरूप में परिवर्तन नहीं आया। ग्रामीण समाज अपनी बुनियादी जरूरतों के साथ जन्म लेता था और वैसे ही मृत्यु को प्राप्त होता था। साधारण से कच्चे मकान में रहने वाले, साधारण रहन–सहन और खान–पान में शाकाहारी–मांसाहारी दोनों का प्रयोग करते थे– चावल, बाजरा और दाल यही उनका मुख्य भोजन होता था। मनोरंजन के साधनों में नाच–गाना, मुर्गों की लड़ाई आदि कार्य करते थे। स्त्रियों का जीवन सामान्य था उन्हें आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त होती थी। वे परिवार के साथ खेतों में काम करवाती थी। पहनावा साधारण था। आभूषणों का प्रचलन था पर ग्रामीण समाज का जीवन जरूरतों पर निर्भर था शौक पर नहीं। घी, दूध, मक्खन का चलन हर सभ्यता में रहा। इसके लिए वे पशु पालते थे। अकाल के दिनों में भोजन की इतनी कमी हो जाती थी कि मां–बाप अपने बच्चों को तक को बेच देते थे। संचार के साधनों का अभाव होने के कारण शासक वर्ग उनकी सहायता तो करता था पर समय पर सहायता पहुंच नहीं पाती थी।

गांव के लोगों का जीवन गांव में ही बीत जाता था। अकाल और बेरोजगारी के समय इनके पलायन के भी उदाहरण मिलते हैं। लोगों का रहन सहन स्थानीय रीति

टिप्पणी

रिवाज और मौसम पर निर्भर करता था। ग्रामीण व्यवस्था में भारतीय रीति–रिवाज और परंपराओं का महत्व था।

2.2.8 ग्राम प्रशासन

ग्रामीण शासन की सबसे छोटी इकाई ग्राम होते थे। गांव के निवासियों में जहां एक ओर जमींदार, साहूकार, अनाज व्यापारी आदि समृद्ध किसान थे वहीं दूसरी ओर साधारण खेतिहर और भूमिहीन थे। अधिकांश किसान केवल एक जाति से थे और उनमें गहरा भाईचारा था। किसान व्यक्तिगत खेती करते थे। गांव की जमीन के संयुक्त स्वामित्व का कोई प्रमाण नहीं है। प्रत्येक किसान को अपनी जमीन और फसल के अनुसार व्यक्तिगत रूप से कर देना होता था। हालांकि गांवों के लोगों को शहरों का उत्पादन नहीं के बराबर प्राप्त होता था लेकिन उनकी उपज का एक बड़ा हिस्सा शहरी बाजार पहुंचता था और इस प्रकार गांव बाजारी शक्तियों के प्रभाव में था।

गांव और जाति पंचायतों सहित ग्राम समुदाय कार्य करने वाली इकाई थे। समान हित वाले मामलों में गांव के लोग एक समूह के रूप में कार्य करते थे। जैसा कि विद्वान कहते हैं। वे राज्य को भू–राजस्व देने में सामूहिक रूप से निष्ठावान या निष्ठाहीन थे। उनका समान वित्तीय कोष भी था जिससे वे गांव के खर्च का भार उठाते थे। उदाहरण के लिए, गांव के लेखों का रखरखाव करने के लिए, धार्मिक लाभ और मनोरंजन प्रदान करने के लिए वे मिलकर कार्य करते थे।

अपनी प्रगति जांचिए

1. सल्तनत काल में केंद्रीय सत्ता का प्रमुख होता था?
   (क) सुल्तान (ख) वजीर
   (ग) मंत्री (घ) अमीर
2. अकबर के समय मनसबदारी का निम्न दर्जा था?
   (क) 10 (ख) 100
   (ग) 500 (घ) 1000
3. सद्र–उस सुदुर किस विभाग का प्रधान होता था?
   (क) सैन्य विभाग (ख) धर्म विभाग
   (ग) शिक्षा विभाग (घ) राजस्व विभाग
4. भारत में इक्ता व्यवस्था की शुरुआत किसने की?
   (क) मोहम्मद गोरी (ख) कुतुबुद्दीन ऐबक
   (ग) इल्तुतमिश (घ) अलाउद्दीन खिलजी
5. विजय नगर साम्राज्य में कौन–सी व्यवस्था थी?
   (क) इक्ता (ख) मनसबदारी
   (ग) जागीरदारी (घ) अमरम

टिप्पणी

2.3 शासक वर्ग– उद्‌भव, गठन, आव्रजन, स्थानीय समझौते और संघर्ष

मध्यकालीन भारतीय इतिहास के विकास की प्रक्रिया के तीन रूप स्पष्ट होते हैं–

(1) भारत में मुस्लिम राज्य की स्थापना, विकास और भारतीय राजनीति में उसका समग्र प्रभाव। (2) दूसरे रूप के अंतर्गत मुगल सल्तनत की स्थापना, उसका विकास और उसके विघटन की प्रक्रिया है। (3) तीसरे रूप में मुगल साम्राज्य के विघटन एवं क्षेत्रीय शक्तियों के उत्कर्ष के साथ भारत में यूरोपियन शक्तियों के आगमन तक है।

प्रारंभ में बाहरी आक्रांताओं का ज्ञान भारतीय और भारतीयता के प्रति नगण्य था। वे केवल अपनी संस्कृति, धर्म को भारतीयों के ऊपर थोप देना चाहते थे। उन्हें अपनी संस्कृति पर गर्व था। शायद यह गर्व एवं विस्तार की नीति तत्कालीन आवश्यकताओं के अनुकूल थी।

1000–1027 ई. भारत में महमूद गजनवी ने मुस्लिम सत्ता के बीज बो दिये, जिसे आगे बढ़ाने का कार्य मोहम्मद गौरी ने किया। कुतुबुद्दीन ऐबक ने उस पौधे को संरक्षण देने का कार्य प्रारंभ किया। इस प्रकार क्रमशः दास वंश (1206–1290 ई.), खिलजी वंश (1290–1320 ई.), तुगलक वंश (1320–1414 ई.), सैय्यद वंश (1414–1451 ई.), लोदी वंश (1451–1526 ई.) ने इस पौधे को वटवृक्ष के रूप में परिवर्तित कर दिया जिसकी जड़ें जमीन के अंदर मजबूती से जम गई। और ये बाहरी आक्रांता कालांतर में भारत का प्रमुख हिस्सा बन गये।

पानीपत के युद्ध (1526) में बाबर के द्वारा इब्राहिम लोदी को परास्त कर दिया गया। भारतीय रंगमंच पर मुस्लिम सत्ता (1526–1857 ई.) के अलग स्वरूप का पदार्पण हुआ। इस रंगमंच पर हुमायूं, अकबर, जहांगीर, शाहजहां और औरंगजेब एवं अन्य परवर्ती शासकों ने अपने करतबों से सभी पक्षों को प्रभावित किया। मुगल शासकों ने हजारों लाखों लोगों पर शासन किया। भारत एक नियम के तहत एकत्र हो गया और यहां विभिन्न प्रकार की सांस्कृतिक और राजनैतिक समय अवधि मुगल शासन के दौरान देखी गई। पूरे भारत में अनेक मुस्लिम और हिंदू राजवंश टूटे, तब कहीं मुगल साम्राज्य स्थापित हुआ।

2.3.1 मध्यकालीन भारत में शासक वर्ग का उद्‌भव

राजनीतिक संरचना का सीधा संबंध उसकी प्रशासनिक संरचना से होता है। प्रशासनिक संरचना की बागडोर शासक वर्ग के हाथों में होती है। मध्यकालीन शासन व्यवस्था के केंद्र बिंदु दिल्ली के सुल्तान बन गये। दिल्ली के सुल्तानों का सिद्धांत धर्म पर आधारित सैनिक तंत्र था। इसी के आधार पर वे शासन को संचालित करते थे। ये आक्रांता बर्बर प्रवृत्ति के थे इसके बाद भी भारतीय संस्कृति को मिटा नहीं सके। भारतीयों के प्रति कभी अपने दृष्टिकोण में परिवर्तन नहीं कर सके और उन्हें उच्च पदों से दूर रखा। शासन का समस्त प्रभार तुर्क पदाधिकारियों पर ही था। यहां हम दिल्ली सुल्तानों का संक्षिप्त अध्ययन करेंगे।

दिल्ली सल्तनत के शासक वर्ग

दिल्ली सल्तनत पांच मुस्लिम राजवंशों को संदर्भित करता है जिन्होंने 1206 से 1526 ईसवीं के बीच दिल्ली के क्षेत्र पर शासन किया। भारत में दिल्ली उत्तरी क्षेत्र का सबसे शक्तिशाली राज्य माना जाता था।

दिल्ली सल्तनत के वंश–

(1) मामलुक (दास) वंश (1260–1290)

(2) खिलजी वंश (1290–1320)

(3) तुगलक वंश (1320–1414)

(4) सैय्यद वंश (1414–1451)

(5) अफगान लोदी वंश (1451–1526)

कुतुबुद्दीन ऐबक दास वंश का पहला शासक था। वह उदार शासक था। उसने दिल्ली पर चार वर्षों तक शासन किया। उसने कुतुबमीनार की नींव रखी। दूसरा महत्वपूर्ण शासक शक्स–उद–दीन इल्तुतमिश था। वह इक्ता प्रणाली के जनक के रूप में जाना जाता है। इसके बाद रजिया सुल्तान के रूप में दिल्ली पर पहली महिला शासिका ने शासन किया। बलबन ने अपने राजस्व सिद्धांत के बल पर सुल्तान की शक्ति को मजबूती प्रदान की। उसके पश्चात् अयोग्य शासकों के सत्ता पर बैठने से इस वंश का पतन हो गया।

(1) दासवंश (मामलुक) वंश–सूची

1. कुतुबुद्दीन ऐबक– 1206–1210
2. अराम शाह 1210–1211
3. इल्तुतमिश– 1211–1236
4. रूवन–उद–दीन–फिरोजशाह– 1236
5. रजिया सुल्तान– 1236–1240
6. आला–उद–दीन बहरामशाह– 1240–1242
7. अलाउद्दीन मसूदशाह– 1242–1246
8. गयासुद्दीन बलबन– 1266–1286
9. कैकुबाद– 1286–1290
10. क्यूमर्श– 1290

(2) खिलजी वंश– जलालुद्दीन खिलजी ने अंतिम दास वंश के शासक की हत्या कर खिलजी वंश की नींव डाली। अलाउद्दीन खिलजी ने अपने चाचा की हत्या कर दिल्ली की सत्ता पर अधिकार कर लिया। वह अपनी साम्राज्यवादी नीति एवं बाजार नियंत्रण व्यवस्था के लिए जाना जाता है। इसके पश्चात इस वंश का पतन हो गया।

टिप्पणी

सूची– जलालुद्दीन खिलजी– 1290–96

अलाउद्दीन खिलजी– 1296–1316

कुतुबुद्दीन मुबारक शाह– 1316–1320

(3) तुगलक वंश– तुगलक वंश का पहला शासक गयासुद्दीन तुगलक था इसे 'गाजी मलिक' के नाम से जाना जाता है। मुहम्मद तुगलक इस वंश का प्रमुख शासक था। अपनी योजनाओं की असफलता के कारण इतिहास में इसे पागल एवं सनकी बादशाह के नाम से जाना जाता है। फिरोज तुगलक सिंचाई योजना एवं शहरों की स्थापना के लिए जाना जाता है। फिरोज तुगलक की मृत्यु के पश्चात इस वंश का पतन हो गया।

तुगलक शासकों की सूची–

1. गयासुद्दीन तुगलक 1321–1325
2. मोहम्मद बिन तुगलक 1325–1351
3. फिरोजशाह तुगलक 1351–1388
4. गयासुद्दीन तुगलक–II 1388–1389
5. अबू बकर शाह 1389–1390
6. नासिरुद्दीन मुहम्मद शाह III 1390–1393
7. सिकंदर शाह–I
8. नासिरुद्दीन 1393–1394
9. नुसरत शाह 1394–1399
10. नसीरुद्दीन महमूद शाह 1399–1413

(4) सैय्यद वंश– सैय्यद वंश की स्थापना 'खिज खाँ' ने की थी। इस वंश में कोई भी बहुत योग्य शासक गद्दी पर नहीं बैठा। अलाउद्दीन आलम शाह ने स्वेच्छा से सत्ता का त्याग कर दिया।

शासकों की सूची–

1. खिज खाँ– 1414–1421
2. मुबारह शाह 1421–1434
3. मोहम्मद शाह 1434–1445
4. आलम शाह 1445–1451

(5) अफगान लोदी वंश– यह वंश दिल्ली सल्तनत का आखिरी वंश था। इसकी स्थापना बहलोल लोदी ने की थी। सिकंदर लोदी एक प्रमुख शासक था इसने 1504 में आगरा शहर की स्थापना की थी। इब्राहिम लोदी इस वंश का अंतिम शासक था। उसने बाबर के साथ पानीपत का प्रथम युद्ध (1526) में लड़ा और मारा गया। उसकी मृत्यु के साथ दिल्ली सल्तनत के वंशों का अंत हो गया।

लोदी वंश के शासकों की सूची–

1. बहलोल लोदी 1451–1489
2. सिकंदर लोदी 1489–1517
3. इब्राहिम लोदी 1517–1526

मुगल सल्तनत के शासक वर्ग (1526 से 1857 ई.)

बाबर द्वारा भारत में मुगल साम्राज्य की स्थापना हुई। इसकी स्थापना में भारत की तत्कालीन राजनीतिक स्थिति का महत्वपूर्ण योगदान था। बाबर तैमूर वंश का पोता और चंगेजखान की माता की तरफ से वंशज था। पानीपत के प्रथम युद्ध में इब्राहिम लोदी को परास्त कर मुगल सल्तनत की नींव रखी। हुमायूं की उपलब्धि इतिहास में साम्राज्य खोने और उसे पुनः प्राप्त करने में है। अकबर मुगल सल्तनत का ही नहीं पूरे मुस्लिम इतिहास के शासकों में सबसे महानतम शासक था। वह केवल महान विजेता ही नहीं बल्कि सक्षम संगठनकर्ता एवं महान प्रशासक और राष्ट्रीय शासक भी था। जहांगीर के शासन काल में शासन की समस्त बागडोर नूरजहां के हाथ में थी। शाहजहां की उपलब्धि विश्व प्रसिद्ध इमारत प्रेम के प्रतीक 'ताजमहल' बनवाने में है। औरंगजेब अपनी कट्टर धार्मिक नीतियों के लिए जाना जाता है। इसके पश्चात मुगल सल्तनत के समस्त शासक वर्ग अयोग्य साबित हुये और मुगल सल्तनत का 1856 में पतन हो गया।

महत्वपूर्ण मुगल शासकों की सूची–

1. जहीरुद्दीन मुहम्मद बाबर– 1526–1530 ई.
2. नसीरुद्दीन मु. हुमायुं 1530–1540 (1555 से 1556)
3. शेरशाह सूरी 1540–1545 (मुगल शासक नहीं था।)
4. इस्लाम शाह सूरी 1545–1554 (मुगल नहीं)
5. नसीरुद्दीन मु. हुमायुं 1555–1556
6. जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर 1556–1605
7. नुरुद्दीन मुहम्मद सलीम (जहांगीर) 1605–1627
8. शहाबुद्दीन मुहम्मद शाहजहां 1628–1658
9. मुइनुद्दीन मु. आलमगीर औरंगजेब 1658–1707
10. कुतुबुद्दीन मु. मुजाज्जम बहादुरशाह 1707–1712
11. बहादुर शाह जफर II अंतिम सम्राट 1837–1857

मध्यकालीन भारत के राजवंश– मुस्लिम आक्रमणों के समय भारत अनेक छोटे–छोटे राज्यों में विभक्त था। वे आपस में लड़ते झगड़ते रहते थे। देश में कोई सार्वभौमिक सत्ता नहीं थी। मेवाड़ एक महत्वपूर्ण राज्य था जहां राणा संग्राम सिंह का राज्य था। मालवा में महमूद II का शासन था। गुजरात का संस्थापक जफर खां था। बंगाल एक स्वतंत्र राज्य था, यहां अलाउद्दीन हुसैन का शासन था। खानदेश जो तारती नदी की घाटी में स्थित था 'मलिक रजा फारुखी ने स्वतंत्र राज्य की स्थापना की। काश्मीर के स्वतंत्र राज्य की स्थापना शाह मिर्जा ने की थी। उड़ीसा एक हिंदू राज्य था। किसी भी मुसलमान शासक द्वारा इस पर शासन नहीं किया गया था।

टिप्पणी

इस प्रकार क्षेत्रीय राज्य के शासकों की भी मध्यकालीन इतिहास में महत्वपूर्ण भूमिका थी।

दक्षिण भारतीय राज्य– सल्तनत काल में दक्षिण भारत में कई राज्य थे जैसे– देवगिरी के पास द्वार समुद्र के होससल, वारंगल के काकतीय, मदुरा के पांड्य प्रमुख थे। अलाउद्दीन खिलजी ने इन राज्यों को पराजित करके दक्षिण में मुस्लिम सत्ता का प्रचार किया। कलान्तर में इन्हीं राज्यों के खंडहरों पर विजयनगर और बहमनी साम्राज्य की नींव रखी गई।

विजय नगर साम्राज्य– दक्षिण में विजयनगर राज्य की स्थापना 1336 में संगम के पुत्रों हरिहर और बुक्का द्वारा की गई थी। यह राज्य देश का प्रमुख हिंदू राज्य था। राजनीति, सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से यह राज्य संपन्न और उन्नतशील था। यहां का प्रमुख शासक कृष्णदेव राय (1509–1529) था।

बहमनी साम्राज्य– बहमनी साम्राज्य की स्थापना 1347 में 'हसन गंगू' जो अबुल मुजफ्फर बहमन शाह के नाम से सत्तासीन हुआ। उसने गुलबर्गा को अपनी राजधानी बनाया।

इसके अतिरिक्त दक्षिण में अहमदनगर, बीजापुर, गोलकुंडा प्रमुख राज्य थे। ये क्षेत्रिय राज्य के शासक वर्ग अपनी अस्मिता की रक्षा के लिए शक्तिशाली शासकों से सदैव संघर्षरत रहते थे।

मराठा साम्राज्य– 'शिवाजी' उन महान शासक वर्ग में से एक थे जिन्होंने भारत में हिंदू–साम्राज्य की स्थापना के स्वप्न को जीवित रखा। मध्यकालीन भारत के इतिहास में मराठों का उदय महत्वपूर्ण घटना थी। भारत में जब चारों ओर से मुस्लिमों की जड़ें व्याप्त थीं तब मराठा साम्राज्य का उदय भारतीय इतिहास के लिए आश्चर्यजनक घटना थी। शिवाजी ने लंबे समय तक मुगलों से संघर्ष किया परंतु उनके उत्तराधिकारी अयोग्य साबित हुये और मराठा साम्राज्य की नींव कमजोर पड़ गई।

2.3.2 सत्ता वर्ग का गठन व विकास

भारत में सत्ता वर्ग की दिल्ली सल्तनत गठन की प्रक्रिया की शुरुआत सल्तनत काल से होती है। सल्तनत कालीन शासन व्यवस्था के गठन का आधार कुरान, हदीस और इज्मा है तथा कुछ शासकों का आधार 'सैनिक तंत्र' भी रहा। कुरान में अल्लाह की शिक्षाएं तथा आदेश संग्रहित हैं। मुसलमानों के अनुसार ये शिक्षाएं सार्वभौमिक तथा सर्वकालिक हैं। इनमें सामाजिक तथा राजनीतिक संगठन की रूपरेखा प्रस्तुत की गई है, जिसे राज्य के आधारभूत सिद्धांत माना जा सकता है। जैसे– मुसलमानों की एकता बनाए रखना, परस्पर परामर्श करना। दूसरा स्थान 'हदीस' का है। जिसमें पैगम्बर मुहम्मद साहब के प्रमाणित कार्यों तथा कथनों का विवरण है जिसके आधार पर मुस्लिम राज्य के प्रशासन का स्वरूप निश्चित हुआ। कुरान के अनुसार सारी दुनिया का स्वामी और बादशाह अल्लाह है। इस्लाम ने समस्त मुसलमानों के एक समाज तथा एक राज्य के आदर्श को स्थापित किया है।

टिप्पणी

सल्तनत काल में सत्ता वर्ग के गठन का स्वरूप

केंद्रीय शासन– (सुल्तान)– डॉ. श्रीवास्तव के अनुसार– "वह पूर्णतः निरंकुश था और उसकी सत्ता सर्वोच्च थी।" सुल्तान दिल्ली सल्तनत का प्रमुख था। वह राज्य की समस्त शक्तियों का स्रोत था। वह सेना का सर्वोच्च सेनापति होता था। वह प्रशासन का प्रमुख तथा अधिकारियों को नियुक्त करना उसका कार्य था। वह न्याय का सर्वोच्च अधिकारी था और मुस्लिम विधिवेत्ताओं की सहायता से निर्णय करता था। उसकी सत्ता निरंकुश थी। यद्यपि सैद्धांतिक रूप से वह शरीयत के अनुसार उलेमा की व्याख्याओं तथा परामर्श के अनुसार शासन करता था लेकिन व्यवहार में उस पर कोई अंकुश नहीं था। अगर इस्लाम के प्रावधानों का कहीं उपयोग भी किया तो अपनी शक्ति के संवर्द्धन हेतु ही किया।

सुल्तान के कर्त्तव्य– धर्म की रक्षा करना, इस्लाम के राज्य की रक्षा करना, प्रजा में शांति स्थापित करना, दंड की व्यवस्था करना, यातायात के साधनों की व्यवस्था करना, काफिरों से युद्ध करना, कर वसूलना, कर्मचारियों की नियुक्ति करना आदि सुल्तान के प्रमुख कर्त्तव्य थे।

- **दैवीय उत्पत्ति का सिद्धांत**– दिल्ली सल्तनत के सुल्तान 'दैवीय उत्पत्ति के सिद्धांत' पर विश्वास करते थे और 'वे अपने को ईश्वर का प्रतिनिधि' समझते थे। अल्लाह के प्रतिनिधि को 'नियावते खुदाई' तथा 'जिल्ले इलाही' ईश्वर का प्रतिबिंब समझते थे। बलबन का मानना था– "राजा का हृदय ईश्वर कृपा का विशेष कोष और समस्त मनुष्य जाति में उसके समान कोई नहीं है।"
- **मंत्रिपरिषद**– कोई भी शासन अपनी सत्ता का गठन अकेले नहीं कर सकता था अतः शासन के सुव्यवस्थित गठन के लिए मंत्रिपरिषद का गठन किया जाता था।
- **मंत्रिपरिषद का गठन**– मजलिख–ए–खास मंत्रिपरिषद कहा जाता था। सुल्तान इसमें नामित अपने मंत्रियों से विचार विमर्श किया करता था।
- बार–ए–खास– सुल्तान का दरबार था

  बार–ए–आजम– सभा हाल था

मंत्रिपरिषद के चार मंत्री थे

1. वजीर
2. आरिज–ए–मुमालिक– सैन्य विभाग
3. दीवान–ए–इंशा– शाही पत्र व्यवहार का दायित्व
4. दीवान–ए–रिसालत– विदेश विभाग

अन्य विभाग–

- मुस्तौफी–ए–मुमालिक – राज्य के खर्चों की जांच करना।
- मजूमदार और खाजिन– कोषाध्यक्ष
- दीवान–ए–कजा– न्याय विभाग
- वकील–ए–दर– व्यक्तिगत सेवाओं के लिए

- सर–ए–जानदार– अंगरक्षकों का प्रधान
- ढर्र–ए–खास– महत्वपूर्ण अमीरों से विचार–विमर्श
- दीवान–ए–वकूफ– राजकीय व्यय का लेखा संबंधी
- दीवान–ए–खैरात– मुस्लिम गरीबों के कल्याण के लिए
- ख्वाजा– प्रांतीय प्रशासन के आय–व्यय ब्यौरे से संबंधित
- दीवान–ए–इश्तिहाक– पेंशन विभाग
- बरीद – सूचना विभाग

शासन को संगठित करने के अन्य आधार

(1) साम्प्रदायिक राज्य

(2) खलीफा

(3) उलेमा

(4) अमीर वर्ग

(5) उत्तराधिकार

सैन्य संगठन– दिल्ली सल्तनत का संगठन मुख्य रूप से सेना पर आधारित था उन्होंने शक्तिशाली सेना का निर्माण किया, अतः सैनिक व्यवस्था के लिए 'दीवान–ए–अर्ज' विभाग की स्थापना की जिसका प्रधान 'आरिज–ए–मुमालिक' था। सेना में कई प्रकार के सैनिक रखे जाते थे। प्रथम प्रकार के सैनिक सुल्तान के सैनिक कहलाते थे। ये सैनिक केंद्रीय सरकार से संबंधित थे। दूसरे प्रकार के सैनिक प्रांतीय गवर्नरों के अधीन थे। उनकी नियुक्ति गवर्नर या अमीर करते थे। घोड़ों को दागने की प्रथा का चलन था। सेना में पैदल सैनिक को 'पापक' कहा जाता था। प्रत्येक सेना के साथ 'बरीदे–लश्कर' होता था जो सभी घटनाओं की सूचना राजधानी भेजता था।

- **न्याय विभाग**– न्याय विभाग का प्रमुख 'काजी उल कुनात' कहलाता था।
- **पुलिस विभाग**– इस विभाग का प्रमुख 'कोतवाल' था।
- **राज्य की आय के साधन**– राज्य की आय का साधन राजस्व था। विभिन्न प्रकार के कर लिए जाते थे जैसे– खिराज, जकात, खम्म, जजिया, उश्र आदि भूमि के भी कई प्रकार थे– खालसा भूमि, इक्ता भूमि, हिंद अमीरों की भूमि, वक्फ। इस प्रकार ये सभी राज्य की आमदनी के मुख्य स्रोत थे।
- **डाक व्यवस्था**– सुल्तान द्वारा प्रेषित आदेशों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुंचाने के लिए डाक विभाग की स्थापना की गयी थी। जिसका प्रधान 'डाक दरौगा–ए–डाक चौकी' था।

प्रांतीय प्रशासन– प्रांतों के प्रशासन के लिए अमीर वर्ग, इक्तादार एवं सूबेदार वर्ग को नियुक्त किया जाता था। जिससे शासन का संगठन समुचित ढंग से चल सके।

स्थानीय शासन– प्रांतीय प्रशासन को शिको में विभाजित किया गया था जिसका प्रमुख शिकादार कहलाता था। बाद में 'शिको' को 'परगनों' में विभाजित किया गया जिसका प्रमुख 'आमिल' होता था।

आमील के साथ कानूनगो और कारकून (वलाई) भी परगनों में नियुक्त किये जाते थे।

प्रशासन की सबसे छोटी इकाई गांव थी। गांव का प्रशासन पंचायत के द्वारा किया जाता था।

मूल्यांकन– उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि दिल्ली सल्तनत का राजनीतिक संगठन उत्तम था। स्वयं सुल्तान के राजपरिवार का संगठन ही राज्य की रक्षा के लिए पर्याप्त था इसके अतिरिक्त सल्तनत काल के अन्य विभाग भी अपना अपना कार्य सफलतापूर्वक करते थे। सल्तनतकालीन राजसंस्था का संगठन उच्चकोटि का था इसलिए देश की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक उन्नति इस युग में यथेष्ठ हुई।

टीप– "इस संदर्भ में विस्तृत जानकारी के लिए पूर्व अध्याय में वर्णित "मध्यकाल (सल्तनत) में संस्थागत संरचना का विकास" शीर्षक को भी देखें।"

सत्ता वर्ग का गठन एवं विकास– मुगल सल्तनत

मुगल शासकों ने सल्तनतकालीन संगठन की अवधारणा में परिवर्तन किया। सल्तनतकालीन शासक खलीफा को मान देते थे और उसकी अदृश्य प्रभुसत्ता को स्वीकार कर स्वयं को सुल्तान कहते थे। इसके विपरीत मुगल बादशाहों ने 'पादशाह' की उपाधि धारण की।

अबुल फजल के अनुसार– "'पाद' शब्द का अर्थ है– 'स्थायित्व और स्वामित्व' तथा 'शाह' शब्द का अर्थ है– 'स्वामी'। इस प्रकार 'पादशाह' ऐसा शक्तिशाली स्वामी था, जिसकी सत्ता सर्वोपरि एवं सम्प्रभु है। मुगल शासन प्रणाली के गठन में भारतीय तथा विदेशी तत्वों का सम्मिश्रण था।"

सरकार का कथन– "यह ईरानी–अरबी प्रणाली का भारतीय रूपान्तर था।"

मुगल शासन प्रणाली के संगठन का स्वरूप का आधार उसका शासन था।

- केंद्रीय प्रशासन
- मुगल सम्राट
- शासक वर्ग
- अमीर (उमरा)
- केंद्रीय प्रशासनिक ढांचा

(i) कोष तथा वित्त (राजस्व) प्रमुख– वजीर

(ii) सैन्य विभाग– मीर बक्शी

(iii) राजकीय गृह विभाग– खान–ए–सामान

(iv) न्याय विभाग– काजी उल कुजात

(v) सदाचार, निरीक्षण विभाग– मुहतसिब

(vi) समाचार, संवाद, डाक विभाग– दरोगा–ए–डाक चौकी

(vii) तोपखाना– मीर आतिश

टिप्पणी

अन्य विभाग एवं उनके प्रमुख

- वकील
- वजीर या दीवान– प्रधानमंत्री
- मीर–ए–सामा– घरेलू विभाग

इसके अतिरिक्त कुछ उच्चाधिकारी भी थे– दीवान–ए–तन, मीर–ए–अर्ज, मीर–ए–बहर, मीर ए, तुजुक, दीवान–ए, ब्यूतात, वाकया नवीस, खुफिया नवीस, हरकारा मुसददी आदि।

प्रांतीय प्रशासन– मुगल साम्राज्य की विशालता के कारण मुगल बादशाहों ने इसे प्रांतों अथवा सूबों में बांटा था।

प्रांतीय अधिकारी– दीवान, वाकयानवीस, सद्र, अरि काजी, कोतवाल, मीर, बहार प्रमुख जिलाधिकारी थे।

सरकार– प्रांत या सूबा सरकारों में विभक्त थे।

परगना– सरकार परगनों में विभक्त थी।

ग्राम और ग्राम पंचायत– ग्राम प्रशासन ग्राम पंचायतों के द्वारा होता था।

अन्य प्रशासन

- न्याय प्रशासन
- गुप्तचर प्रशासन
- दंड विधान का स्वरूप
- भू–राजस्व व्यवस्था
- सैन्य प्रशासन (मनसबदारी)

मूल्यांकन– मुगल सल्तनतकालीन शासन व्यवस्था का संगठन पूर्णतः केंद्रीकृत था। प्रमुख अधिकारियों से लेकर जिले के अधिकारियों की नियुक्ति का दायित्व सम्राट पर निर्भर था जो सम्राट के प्रति उत्तरदायी होते थे। इस प्रकार मुगल सल्तनत शासक की स्थिरता के कारण भारत ने समग्र क्षेत्रों में उन्नति की।

टीप– "इस संदर्भ में विस्तृत जानकारी के लिए पूर्व अध्याय में वर्णित मुगलकालीन शासन व्यवस्था" शीर्षक को भी देखें।

दक्षिण भारत के राज्यों के सत्ता वर्ग का गठन एवं विकास

विजय नगर साम्राज्य– विजय नगर साम्राज्य लगभग दो शताब्दियों तक शक्तिशाली रूप में चलता रहा, इसके साथ ही शासन व्यवस्था भी विकसित होती गयी। विजयनगर के राजाओं ने शासन व्यवस्था के विकास में काफी रुचि ली। विजयनगर कालीन अभिलेख, साहित्यिक स्रोत एवं विदेशी यात्रियों के विवरण से समकालीन शासन व्यवस्था के प्रमाण मिलते हैं।

केंद्रीय प्रशासन– धर्म निरपेक्ष राज्य– विजयनगर का शासन धर्म सापेक्ष था। इसका उद्देश्य मुसलमानों के खिलाफ हिंदू संस्कृति, हिंदू धर्म तथा हिंदू जनता की रक्षा करना था। पर शासकों में धर्मान्धता तथा असहिष्णुता नहीं थी।

राजा की स्थिति– विजय नगर काल में राजा को 'राय' कहा जाता था। शासन की संपूर्ण शक्ति राजा में निहित होती थी। उसकी इच्छा ही कानून होती थी। वह धर्म के अनुसार जनता के हितों को ध्यान में रखकर शासन करता था। राज्य के सारे युद्ध, शांति संबंधी आदेशों की घोषणा, दान की व्यवस्था, अधिकारियों की नियुक्तियां आदि सभी कार्य राजा करता था।

मंत्रिपरिषद– राजा को शासन में सहायता तथा परामर्श देने के लिए एक मंत्रिपरिषद होती थी। जिसकी नियुक्ति राजा स्वयं करता था। राजा राज्य के मामलों एवं नीतियों के संबंध में मंत्रिपरिषद की सलाह लेता था। मंत्रिपरिषद में लगभग 20 सदस्य होते थे। इसका प्रमुख अधिकारी प्रधानमंत्री होता था।

प्रमुख पदाधिकारी– साम्राज्य में कुछ और भी अधिकारी वर्ग थे जैसे– नायक प्रांतीय गवर्नर, पलयगर जागीर धारण करने वाले सैनिक, दण्डनायक सेना का प्रमुख, आयंगर वंशानुगत अधिकारी, अमरनायक राजा को सैन्य मदद करने वाले सामंत, रायसम– सचिव, कपनिकम लेखाधिकारी, मुद्राकर्ता शाही मुद्रा रखने वाला।

प्रांतीय शासन– विजय नगर जैसे विशाल साम्राज्य पर प्रशासन के लिए उसे अनेक प्रांतों में विभाजित किया गया था। ये प्रांत 'मंडल' कहलाते थे। मुख्यतः 6 प्रांतों में राज्य बंटा था। गवर्नरों को अपने प्रांत में पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त थी।

स्थानीय शासन– प्रांतों को अनेक मंडलों में विभाजित किया गया था। मंडल को जिले 'कोट्टम' या 'वलनाडू' में बांटा गया था। जिलों को परगनों में जिसको नाडू कहा जाता था। इन नाडूओं को 'मेला ग्रामों में, मेलाग्रामों को 50 ग्राम में विभक्त किया जाता था। प्रशासन की सबसे छोटी इकाई 'उर' (ग्राम) थे। प्रत्येक गांव को अनेक मुहल्लों में बांटा जाता था। गांव का मुख्य अधिकारी 'महानाकाचार्य' होता था।

न्याय व्यवस्था– विजय नगर की न्याय व्यवस्था कठोर थी। हिंदू परम्पराओं, रीति रिवाज तथा नियमों के अनुसार न्याय किया जाता था।

सेना का संगठन– पृथक से एक सैनिक विभाग होता था। जिसका प्रबंध महासेनापति करता था।

वित्त व्यवस्था– साम्राज्य की आय के प्रमुख स्रोत लगान, संपत्ति कर, व्यापारिक कर, उद्योगों पर कर, सामाजिक तथा सामुदायिक कर तथा जुर्माने आदि थे।

नायंकर व्यवस्था– नायंकर की उत्पत्ति के संबंध में दो कथन हैं। एक तो यह कि वे सेनानायक होते थे। दूसरे भू सामंत होते थे। इन भू–सामंतों को राजा वेतन के बदले में और इनके द्वारा सेना रखे जाने के बदले में विशेष भूखंड देता था। इस भूखंड को 'अमरम' कहा जाता था और उस भूखंड से प्राप्त राजस्व को खर्च किया जाता था।

आयंगर व्यवस्था– इस व्यवस्था के अनुसार साम्राज्य के प्रत्येक ग्राम को एक स्वतंत्र इकाई के रूप में संगठित किया गया। इस ग्रामीण इकाई के प्रशासन के लिए 'बारह व्यक्तियों' को नियुक्त किया जाता था। इन व्यक्तियों के समूह को 'आयंगर' कहा जाता था।

विजयनगर साम्राज्य एक हिंदू साम्राज्य था उसने दक्षिण के मुसलमानों से संघर्ष करके हिंदू धर्म तथा संस्कृति की रक्षा की और सुदृढ़ शासन की स्थापना की। किंतु 17वीं शताब्दी के मध्य तक इसका अंत हो गया।

टिप्पणी

बहमनी साम्राज्य– बहमनी राज्य की प्रशासनिक व्यवस्था इस्लामी विधि के अनुरूप थी। वे नाम मात्र के लिए खलीफाओं को मान्यता देते थे। वस्तुतः वे स्वतंत्र शासक थे।

सुल्तान– शासन का प्रधान सुल्तान था, जो स्वेच्छाचारी और निरंकुश होता था। उसका राजत्व दैवीय गुणों से परिपूर्ण था। राजा की सहायता के लिए मंत्रीगण होते थे। जिनकी संख्या 8 होती थी।

प्रशासन में मंत्रीपरिषद– बहमनी साम्राज्य के मंत्री निम्नलिखित हैं–

(i) वकील–उस्सल्तनत– प्रधानमंत्री या सुल्तान के सभी आदेश इसके द्वारा पारित होते थे।

(ii) अमीर–ए–जुमला– वित्त मंत्री था।

(iii) वजीर–ए–अशरफ– विदेश मंत्री

(iv) वजीरे–ए–कुल– वकील को छोड़कर अन्य मंत्रियों के कार्यों का निरीक्षण करना था।

(v) नाजिर– यह अर्थ विभाग में संलग्न था।

(vi) पेशवा– यह वकील के साथ संयुक्त था।

(vii) कोतवाल– पुलिस विभाग का अध्यक्ष था।

(viii) सद्रेजहां– न्याय विभाग, धर्म तथा दान विभाग का अध्यक्ष था।

प्रांतीय प्रशासन– संपूर्ण साम्राज्य चार तरफों में विभाजित था परंतु महमूद गवाँ ने इसे आठ 'तरफों' में बांट दिया। जिससे शासन व्यवस्थित चल सके।

स्थानीय शासन– स्थानीय शासन के अंतर्गत प्रांत का विभाजन सरकार में तथा सरकार का विभाजन परगने के रूप में किया गया। एक परगने में बहुत से गांव सम्मिलित थे। गांव प्रशासन की सबसे छोटी इकाई थी।

सैन्य व्यवस्था– सेना के प्रधान सेनापति को 'अमीर–उल–उमरा' कहा जाता था। सुल्तान के अंगरक्षकों को 'खासरवेल' कहा जाता था। 'सिलाहदार' राजा के व्यक्तिगत शस्त्रागार की देखभाल करते थे। 'बर बरदान' सैनिकों का एक वर्ग था।

राजस्व व्यवस्था– बहमनी राज्य की राजस्व का मुख्य स्रोत भू–राजस्व था परंतु करों का कोई भी निश्चित निर्धारण नहीं था।

इस प्रकार अत्यंत उन्नतशील होते हुए भी बहमनी राज्य मात्र 175 वर्ष में छिन्न–भिन्न हो गया। अमीरों की स्वार्थपरता के कारण राज्य की जड़ें भीतर ही भीतर खोखली हो गई थी। अतः बहमनी साम्राज्य का पतन हो गया।

तुर्क एवं मुगलकालीन राजपूत राज्य

मध्य काल एवं मुगल काल में बहुत से राजपूत राज्यों का स्वतंत्र अस्तित्व था। वे अपने शासन के अस्तित्व की रक्षा के लिए मुस्लिम साम्राज्यवादियों से सदैव संघर्षरत रहते थे। उनकी प्रशासनिक व्यवस्था का आधार हिंदू रीति रिवाज और परंपरायें होती थी। राजपूत राज्य में उत्तराधिकार का नियम स्पष्ट तथा। शासक अपने उत्तराधिकारी को नामांकित कर देता था जिसे 'युवराज' का दर्जा प्राप्त होता था। राजपूतों में मेवाड़ के

राज्य को सर्वाधिक सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। राजपूत राजा तुर्क सुल्तानों की तरह निरंकुश नहीं थे। वे अपनी आन–बान–शान के पक्के होते थे। और युद्ध भूमि में शान के साथ लड़ना उनका विशेष गौरव होता था।

शिवाजी का मराठा साम्राज्य

शिवाजी महान योद्धा होने के साथ–साथ महान शासक भी थे। एम.जी. रानाडे ने लिखा है– "नेपोलियन प्रथम की भांति शिवाजी अपने समय का महान संगठक तथा प्रशासकीय संस्थाओं का निर्माता था।"

केंद्रीय शासन– शिवाजी का शासन एकतंत्रीय शासन व्यवस्था पर आधारित था। वे एक निरंकुश शासक थे। उनकी शक्तियों पर किसी प्रकार का प्रतिबंध नहीं था, परंतु उनका शासन दयालु तथा प्रजा हितैषी था।

अष्ट प्रधान– शिवाजी यद्यपि निरंकुश थे परंतु उन्होंने सदैव अपने मंत्रियों के परामर्श से ही शासन का संचालन किया। इन मंत्रियों की संख्या आठ थी जिन्हें 'अष्ट प्रधान' कहा जाता था।

शिवाजी के अष्ट प्रधान

(1) पेशवा–(प्रधानमंत्री) यह प्रधानमंत्री होता था। उसे 'पंत प्रधान भी कहते थे।' छत्रपति के पश्चात यह राज्य का सर्वोच्च अधिकारी होता था।

(2) लेखा परीक्षक (मजूमदार या अमात्य) यह अर्थ मंत्री था।

(3) अभिलेखक (वाकयानवीस या मंत्री) यह छत्रपति का अंगरक्षक तथा निजी सचिव था।

(4) सचिव (शुरुनवीस) वह राजकीय पत्र व्यवहार विभाग से संबंधित था।

(5) विदेश सचिव (दबीर या सुमंत) विदेश मंत्री था।

(6) सेनापति (सर–ए–नौबत) प्रधान सेनापति

(7) पंडितराव– धार्मिक मामलों का प्रमुख

(8) न्यायाधीश– न्याय व्यवस्था का प्रमुख।

प्रांतीय शासन– शिवाजी का पूर्ण राज्य जिसे 'स्वराज्य' कहा जाता था, उसके प्रमुख अधिकारी को सरकारकुन (प्रांतपति) कहा जाता था। सरकारकुन के नीचे 'कारकुन' (सूबेदार) होते थे। इनकी नियुक्ति राजा के द्वारा होती थी। शिवाजी ने नियुक्तियां योग्यता एवं अनुभव के आधार पर की तथा नगद वेतन दिया।

न्याय प्रशासन– शिवाजी के शासन में न्याय का कार्य मुख्य रूप से ग्राम पंचायतें ही करती थी।

सैनिक प्रशासन– इसका प्रधान (सर–ए–नौबत) सेनापति होता था। अश्वारोही सेनाओं के घुड़सवार सैनिक होते थे। 'पागा' एवं 'सिलाहदार' अन्य सैनिक थे।

चौथ एवं सरदेशमुखी : शिवाजी के साम्राज्य का बहुत बड़ा स्रोत चौथ एवं सरदेशमुखी था। जिन क्षेत्रों पर शिवाजी ने अधिकार किया वहां के जागीरदारों से उनकी कुल आय का 1/4 भाग चौथ के रूप में शक्ति के बल पर वसूल किया।

सरदेशमुखी भी चौथ के समान ही एक कर था जो कुल राजस्व का दस प्रतिशत होता था।

शिवाजी सफल शासक प्रबंधक भी थे। उनका अधिकांश समय युद्धों में व्यतीत हुआ। फिर भी उन्होंने प्रशासकीय व्यवस्थाएं स्थापित कीं। उसी पर पेशवाओं ने अपना शानदार महल खड़ा किया।

2.3.3 आव्रजन

प्राचीन काल से ही भारत का गौरव विदेशियों को आकर्षित करता रहा है। प्रारंभिक आव्रजन में आर्य, ईरानी, यवन, शक, पहलव, कुषाण, हूण, चीनी, अरब जैसी शक्तियों ने भारत में अपने कदम रखे और सफलता प्राप्त की। मध्यकालीन भारत में तुर्कों, मंगोलों, अफगानों, मुगलों आदि ने भारत में प्रवेश किया और यहीं स्थापित हो गये। यहां इन्हीं आव्रजनों का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है–

(i) अरब– भारत में मुस्लिम साम्राज्य की स्थापना 12वीं शताब्दी के अंत में हुई। किंतु भारत को जीतने का प्रयास अरबों द्वारा 8वीं शताब्दी में 'बसरा' के गवर्नर के भतीजे 'मुहम्मद बिन कासिम' के नेतृत्व में किया गया। मुहम्मद बिन कासिम ने सन् 711 व 713 ई. में भारत पर आक्रमण किया और सिंध व मुल्तान पर नियंत्रण स्थापित करने में सफल रहा।

(ii) तुर्क– दसवीं सदी में खलीफाओं के समर्थक गजनवी तुर्कों ने आक्रमण प्रारंभ कर दिये। इन तुर्कों में पहला सुल्तान महमूद गजनवी ने 1000–1030 ई. तक 17 बार आक्रमण किये और यहां की अपार संपदा को लूट कर अभूतपूर्व विध्वंस कर गजनी ले गया। उसके आक्रमण ने ये साबित कर दिया कि भारत की अतुल धन संपदा कमजोर शासकों के हाथों में है। इसके पश्चात मो. गौरी ने भारत पर 1175 से 1205 तक लगातार आक्रमण किये। भारत के सभी शक्तिशाली राजपूत शासकों को पराजित किया। उसकी विजयों से भारतीयों की सैनिक दुर्बलता का खोखलापन सामने आ गया। गौरी की मृत्यु के पश्चात कुतुबुद्दीन ऐबक ने भारत में मुस्लिम साम्राज्य की स्थापना की परंतु उसे स्थायित्व प्रदान नहीं कर सका। इल्तुतमिश, रजिया, बलबन ने अपनी सैनिक योग्यता कूटनीति व दूरदर्शिता से इन समस्याओं का निराकरण कर दिल्ली सल्तनत को स्थायित्व प्रदान किया। इसके पश्चात खिलजियों ने दिल्ली सल्तनत पर अपना शासन स्थापित किया। इसे दिल्ली सल्तनत के विस्तार की तरह देखा जाता है। जलालुद्दीन खिलजी इस वंश का संस्थापक था। इसके पश्चात् अलाउद्दीन खिलजी ने न सिर्फ साम्राज्य का विस्तार किया बल्कि उत्तर पश्चिम से होने वाले मंगोल आक्रमणों का डटकर सामना किया। तुगलक वंश में गयासुद्दीन तुगलक, मुहम्मद बिन तुगलक, फिरोजशाह तुगलक प्रमुख शासक थे। तैमूर लंग के आक्रमण का सामना नहीं कर सके और इस वंश के साथ तुर्क शासकों की सत्ता का भी समापन हो गया।

(iii) अफगान– अफगानिस्तान से भारत में कई साहसी व महत्वकांक्षी अफगान कबीलों ने प्रवेश किया। इसमें लोदी एवं सूरी वंश प्रमुख थे। सैय्यद वंश की स्थापना खिज खाँ के द्वारा हुई। यह अधिक समय तक सत्ता में नहीं रह सका।

लोदी वंश की स्थापना बहलोल लोदी ने की। इस वंश के अंतिम शासक इब्राहिम लोदी को मुगल आक्रमणकारी बाबर ने पानीपत के प्रथम युद्ध में पराजित कर मुगल वंश की नींव रखी। एक साहसी अफगान योद्धा शेरशाह सूरी ने बाबर के पुत्र हुमायुँ को पराजित कर उसे भारत छोड़ने पर विवश कर दिया। शेरशाह ने भारत में एक सुदृढ़ एवं व्यवस्थित शासन की स्थापना की। शेरशाह सूरी के अयोग्य उत्तराधिकारियों के कारण हुमायुं ने उनसे सत्ता हथिया ली। मुगल सत्ता ने बहुत लंबे समय तक भारत में राज किया। जैसे ही उनकी सत्ता कमजोर हुई तो नादिरशाह, जमानशाह, अहमदशाह अब्दाली जैसे अफगान शासकों ने उत्तर भारत के क्षेत्रों पर आक्रमण कर भारतीय शासन व्यवस्था को छिन्न–भिन्न कर दिया।

(iv) मंगोल– मंगोल मूल रूप से चीन की एक खानाबदोश जाति से संबद्ध थे। वे बर्बर और क्रूर परंतु उद्यमी एवं वीर योद्धा थे। इनका प्रमुख नेता 'चंगेज खां' था। इसने मध्य एशिया तक अपने साम्राज्य का विस्तार किया जिससे भारत में मंगोल आक्रमण का खतरा उत्पन्न हो गया। सर्वप्रथम इसका सामना इल्तुतमिश को करना पड़ा। अपनी समझदारी से उसने अपने राज्य की सुरक्षा की। रजिया ने भी मध्य एशिया की राजनीति में हस्तक्षेप नहीं किया। बहराम शाह के समय भारत पर मंगोलों का आक्रमण हुआ। बलबन के शासन काल में 1285 ई. में मंगोल नेता 'तैमूर खां' ने आक्रमण किया जिसका सामना उसके पुत्र ने किया। खिलजीओं के समय मंगोल नेता अब्दुल्ला का आक्रमण हुआ जिसका सामना जलालुद्दीन ने किया उन्हें पराजित कर उनसे समझौता कर लिया। सर्वाधिक मंगोल आक्रमण का सामना अलाउद्दीन खिलजी को करना पड़ा। उसके शासन काल में 1296 से 1308 तक लगातार मंगोलों के आक्रमण हुये उसने बड़ी साहस और वीरता के साथ इन आक्रमण का सामना किया और दिल्ली को सुरक्षित रखने में सफल रहा। तुगलक वंश के शासकों को भी इन आक्रमणों का सामना करना पड़ा। मुहम्मद तुगलक ने इनसे समझौतावादी नीति अपनाकर मित्रवत संबंध बनाये। इस प्रकार मंगोलों को भारत में सफलता प्राप्त नहीं हुई।

(v) तैमूर का आक्रमण– 1398–99 तुगलक वंश के शासक महमूदशाह के समय में मंगोल नेता तैमूर का आक्रमण हुआ। जिसका लाभ तैमूर ने उठाया। तैमूर की आत्मकथा 'मलाफुसात–ए–तैमूरी' से ज्ञात होता है कि तैमूर के भारत पर आक्रमण करने का मुख्य उद्देश्य धर्म प्रचार करना एवं अपनी सैनिक महत्वकांक्षाओं की पूर्ति करना था। इसके अतिरिक्त भारत को लूटकर वह धन–संपदा प्राप्त करना चाहता था। तैमूर ने भारत पर आक्रमण किया और दिल्ली को तहस–नहस कर लाखों लोगों को मौत के घाट उतार दिया।

(vi) मुगल आक्रमण– दिल्ली सल्तनत के पतन के खंडहरों पर मुगल सल्तनत की नींव 1526 में बाबर ने रखी। जिस पर हुमायुँ, अकबर, जहांगीर, शाहजहां व औरंगजेब ने मिलकर विशाल इमारत का निर्माण किया। परंतु 1707 में औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात उसके अयोग्य उत्तराधिकारियों ने इस इमारत की जड़ों को हिलाकर रख दिया और यूरोपियन्स के आगमन ने इसे धराशायी कर दिया।

(vii) अन्य आव्रजन– मध्यकाल में आने वाले अन्य आव्रजक ईरानी एवं एबीसीनियाई मूल के प्रशासकों ने सहमनी साम्राज्य के उत्थान एवं विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसके पश्चात मुगल काल में भारत में यूरोपियन ने दस्तक देना शुरू किया। वाल्कोडिगामा ने यूरोप से भारत तक के लिए जलमार्ग की खोज कर पुर्तगाली, डच, फ्रेंच, अंग्रेज यूरोपियन व्यापारियों के लिए व्यापार के क्षेत्र में एक नये युग का सूत्रपात किया। धीरे–धीरे ये व्यापारी भारत के वास्तविक संप्रभु शासक बन गये।

2.3.4 स्थानीय समझौते एवं संघर्ष

राजनीति एक ऐसा शिखर है जहां कोई मित्र नहीं होता और न ही सतत शत्रुता रहती है। रहती है तो सिर्फ अवसरवादिता, शाम दाम, दंड भेद और एक दूसरे को गिराकर आगे निकल जाने की होड़। मध्यकालीन इतिहास में समझौते के दृश्य कम और युद्ध व संघर्ष के परिदृश्य अधिक दिखाई देते हैं।

दास वंश का कोई भी समझौता शांति कायम रखने में सक्षम नहीं हो पाया। मो. गौरी के दास सेनापति रेबक, कुबाचा, पल्दौज गौरी की मृत्यु के साथ ही आपस में संघर्षरत हो गये। दिल्ली सल्तनत में जहां जिसको अवसर प्राप्त होता वही 'रक्त और लौह' की नीति नजर आती थी। बंगाल में हिसामुद्दीन ऐवाज, नासिरुद्दीन बल्का आदि एक दूसरे की सत्ता छीनते रहे। केंद्रीय सत्ता के कमजोर होते ही प्रांतीय शासक अपनी स्वतंत्र इकाई स्थापित करने में लग जाते थे। काश्मीर, बंगाल, गुजरात, मालवा, जौनपुर, उत्तर भारत में कामरूप, जाजनगर, तिरहुत मेवाती, कन्नौज, बनारस, कटेहर अवध आदि अपनी स्वतंत्रता के लिए प्रयासरत हो गये।

मुस्लिम आक्रमण से चौहान, प्रतिहार, सोलंकी, कछवाह आदि शक्तियां एक–दूसरे को पराजित होता देख प्रसन्न हो रहे थे। आपसी प्रतिस्पर्धा, द्वेष की भावना के कारण मुट्ठी भर तुर्कों के सामने साहसी वीर राजपूतों ने घुटने टेक दिए।

अलाउद्दीन खिलजी के शासन के पहले दक्षिण भारत में मुस्लिमों का अस्तित्व नहीं था परंतु खिलजी काल में रणथम्भौर, चित्तौड़, मालवा, गुजरात, जालौर, मारवाड़ तथा दक्षिण भारत के याव, होयमल, काकतीय, पांड्य आदि शक्तियां पराजित होकर अपनी मान प्रतिष्ठा को बिखरते देख रही थी और उनकी स्त्रियां अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए अपने को आग के हवाले करने के लिए मजबूर थी।

यह सत्ता के संघर्ष की कहानी तुर्क साम्राज्य के दौरान थी। तुर्क शासक सत्ता प्राप्त करने के लिए छल, कपट, भ्रष्टाचार और अपने ही रिश्तों का खून बहाने से संकोच नहीं कर रहे थे। इसका उदाहरण अलाउद्दीन खिलजी के रूप में दिखाई देता है। अपने पिता समान चाचा को छल से मार दिया था। जूना खां ने तो छल से अपने ही पिता की हत्या करवा दी। सल्तनत राजनीति में कोई किसी का नहीं था। जिसके पास शक्ति थी वही सत्ताधारी था। रिश्तों के मूल्य शून्यता के स्तर से भी नीचे थे।

संघर्ष जितना तुर्कों में व्याप्त था उतना ही भारतीय नरेशों में भी था। उनकी श्रेष्ठता केवल एक–दूसरे को नीचा दिखाने तक ही रह गई थी। शत्रुओं का साथ देने में भी वे पीछे नहीं रहे। शायद यह भारतीयों का दुर्भाग्य कहा जायेगा– मित्र के रूप

में शत्रु का छुपा होना। रणथम्भौर का रणमल और चित्तौड़ का बनवीर इसके उदाहरण हैं। ऐसे ही उदाहरण विजयनगर एवं बहमनी साम्राज्यों में मिलते हैं। विजयनगर साम्राज्य का पतन होना एवं बहमनी साम्राज्य का पांच राज्यों में विभाजित होना। ये आपसी संघर्ष के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

मुगल साम्राज्य में भी इस प्रकार सत्ता के लिए अपनों से संघर्ष दिखाई देता है। बाबर को उसके परिजनों ने ही उसके अपने पैतृक घर से निकाला और उसने भारत की तरफ कदम बढ़ाये। हुमायुँ एक तरफ शेरशाह से संघर्ष कर रहा था और इसमें उसके भाई उससे शत्रुता निभा रहे थे।

अकबर का भी प्रारंभिक जीवन कठिनाइयों से भरा था। बचपन में उसके चाचा ने उसे तोपों के सामने किले से बांध दिया। उसे अपनी मां से दूर रहना पड़ा। प्रारंभ में 'अतरताखैला' गुट के द्वारा उस पर नियंत्रण रखा जाता था। जब वह इससे मुक्त हुआ तो हरम की स्त्रियों के प्रभाव में आ गया और उनका प्रशासन में हस्तक्षेप बढ़ गया। इसे 'पेटीकोट या 'पर्दा शाम' कहा गया। सलीम (जहांगीर) ने भी सत्ता प्राप्ति के लिए अपने पिता के विरुद्ध विद्रोह किया। जब सलीम शासक बना तो उसे भी अपने पुत्र खुसरो के विद्रोह का सामना करना पड़ा। सलीम पूरे जीवन भर 'नूरजहां' के प्रभाव में रहा और उसने 'नूरजहां गुट' का निर्माण किया जिसमें नूरजहां के माता–पिता भाई और खुर्रम शामिल थे नूरजहां जहांगीर के अन्य पुत्र 'शहरयार' को शासक बनाना चाहती थी जिससे शाहजहां ने विद्रोह कर दिया।

महावत खां का विद्रोह– महावत खां मुगल सल्तनत का प्रमुख अधिकारी था जिसने विद्रोह करके जहांगीर को अपने संरक्षण में ले लिया परंतु इस विद्रोह में उसे सफलता प्राप्त नहीं हुई। शाहजहां के अंतिम वर्षों में उत्तराधिकार का खूनी संघर्ष इतिहास के पन्नों पर अंकित है। औरंगजेब इस खूनी संघर्ष में विजयी रहा। इसके शासन काल में भी उसके पुत्र अकबर II ने संभाजी एवं दुर्गादास से मिलकर विद्रोह किया जो असफल रहा। बाद के मुगल सम्राटों में भी इस प्रकार का सत्ता और आपसी संघर्षों का दौर चलता रहा और उसका लाभ यूरोपियन्स ने उठाया और मुगल साम्राज्य का पतन हो गया।

आर्थिक प्रभाव– भारतीय कृषि, उद्योग एवं व्यापार उन्नत दशा में थे जिससे देश अत्यंत समृद्धशाली था। यह समृद्धता हमेशा विदेशियों को प्रभावित करती रही और बाहरी आक्रमणकारी यहां से अथाह धन–संपदा लूट कर ले जाते थे। मुस्लिम शासन की स्थापना से इस लूटपाट में कमी आई। उन्होंने देश की संपत्ति को देश के अंदर ही व्यय किया। सल्तनत काल की एक समस्या यह भी थी कि धनी सामंत वर्ग विलासितापूर्ण जीवन बिताता था। मध्यम वर्ग लगभग नहीं था। यह उल्लेखनीय है कि कृषक, शिल्पकार और व्यापारी प्रायः सभी हिंदू थे और आर्थिक विकास के लिए राज्य को इन वर्गों के सहयोग की आवश्यकता थी।

मुगलकाल में आर्थिक स्थिति की जानकारी के बहुत से साधन उपलब्ध हैं। अबुल फजल की 'आइन–ए–अकबरी, गुलाबदम बेगम का हुमायुंनामा से आर्थिक स्थिति की जानकारी मिलती है। ये सभी मुगल काल की आर्थिक समृद्धि का वर्णन करते हैं।

अपनी प्रगति जांचिए

6. शिवाजी के प्रांतों को क्या कहा जाता था?
   (क) मनसब (ख) इक्ता
   (ग) जागीर (घ) स्वराज्य
7. तैमूर का आक्रमण किस सन् में हुआ?
   (क) 1392 (ख) 1398
   (ग) 1420 (घ) 1206
8. पानीपत का प्रथम युद्ध किसके बीच हुआ?
   (क) बाबर–इब्राहिम लोदी (ख) अकबर–इब्राहिम लोदी
   (ग) हुमायूं–शेरशाह सूरी (घ) अलाउद्दीन खिलजी–बाबर
9. 'चंगेज खां' कौन था?
   (क) तुर्क (ख) मंगोल
   (ग) अफगान (घ) अरब
10. विजयनगर साम्राज्य की स्थापना किसने की?
   (क) कृष्णदेव राय (ख) हरिहर और बुक्का
   (ग) हसन गंगू (घ) अच्युत देव

2.4 क्रमबद्ध संकट एवं विघटन : शाही व्यवस्था में अन्तर्निहित तनाव एवं संघर्ष, प्रतिरोध का स्वरूप, साम्राज्यों का पतन, क्षेत्रीय राज्यों का उदय, राज्य निर्माण प्रणाली

मध्य काल में भारत में मुसलमानों के निरंतर आक्रमण हुये और भारतीय हिंदू राज्य लगभग पतन की स्थिति में पहुंच गये। मुहम्मद बिन कासिम ने भारत में जो जीत का क्रम शुरू किया वह महमूद गजनवी एवं मोहम्मद गौरी तक चलता रहा। प्रारंभिक तुर्क आक्रमणकारियों का उद्देश्य सत्ता स्थापित करना नहीं था परंतु मो. गौरी ने इस प्रयास में कदम उठाये पर उसके पूर्व ही वह मृत्यु को प्राप्त हो गया। उसके इस सपने को पूरा करने का दायित्व उसके दास सेनापति कुतुबुद्दीन ऐबक ने उठाया और 1206 में उसने भारत में मुस्लिम सल्तनत की नींव रखी और इसे वास्तविक आधार इल्तुतमिश ने दिया। उसकी योग्य और बहादुर पुत्री 'रजिया सुल्तान' ने सत्ता संभाली। मध्यकाल में मुस्लिम सल्तनत की आश्चर्य में डालने वाली घटना रजिया का सुल्तान बनना था। उससे भी अधिक आश्चर्य पुत्र होते हुए भी एक पिता का पुत्री के ऊपर भरोसा। वर्तमान युग में भी ऐसे उदाहरण नहीं मिलते हैं। तुर्क अमीरों की महत्वकांक्षा ने एक योग्य स्त्री का अंत कर दिया। बलबन का शासक बनना वास्तविक राजा के शासक बनने की

प्रतिष्ठा को दर्शाता है, उसका राजत्व सिद्धांत 'दैवीय उत्पत्ति के सिद्धांत' पर आधारित था। अलाउद्दीन खिलजी की साम्राज्यवादी महत्वकांक्षा ने बाजार नियंत्रण व्यवस्था को जन्म दिया और विशाल सेना रखने के लिए प्रोत्साहित किया। फिरोज तुगलक शहरों की स्थापना के लिए जाना जाता है। मुहम्मद तुगलक अपनी योजनाओं की असफलता के कारण पागल और सनकी सुल्तान के रूप में जाना जाता है। सैय्यद एवं लोदी वंश का समय इतना कम था कि कोई विशेष उपलब्धियों में ये शासक वर्ग शामिल नहीं हो पाये और 1526 में दिल्ली सल्तनत का पतन हो गया।

भारत में मुगल शासन की स्थापना बाबर ने की और एक के बाद एक योग्य मुगल शासकों ने मुगल सल्तनत को उच्चतम शिखर पर पहुंचा दिया। उनकी नीतियों ने भारत में सांस्कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक उन्नति में योगदान दिया। स्थापत्य की दृष्टि से मुगलकाल को स्वर्ण काल कहा जाये तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

2.4.1 क्रमबद्ध संकट एवं विघटन : शाही व्यवस्था में अंतर्निहित तनाव एवं संघर्ष (दिल्ली सल्तनत एवं मुगल साम्राज्य)

दिल्ली सल्तनत की स्थापना उत्तर भारत में तुर्कों के सैन्य अभियान का प्रत्यक्ष परिणाम थी जो लगभग दो शताब्दियों के मध्य दो चरणों में गजनबी और गौरी के द्वारा संपन्न हुई। आगे कुतुबुद्दीन ऐबक ने दिल्ली सल्तनत की नींव रखी और मध्य एशिया की राजनीति से पृथक कर स्वयं को गजनी के शासकों के आधिपत्य से मुक्त कराया और सल्तनत को स्वतंत्र राज्य बनाया। इसके पश्चात दिल्ली सल्तनत को विभिन्न वंशों और शक्तिशाली शासकों ने क्रमबद्धता प्रदान की पर उसके साथ विघटनकारी शक्तियां सर उठाये रहीं जो दिल्ली सल्तनत को कमजोर करती रहीं।

गुलाम वंश– 1206–1290 सर्वप्रथम अध्ययन हम गुलाम वंश का करेंगे। मुस्लिम साम्राज्य की स्थापना के प्रारंभ के समय भारत में बहुत सी विघटनकारी शक्तियों का मिश्रण था। एक ओर विजेता आक्रांता तो दूसरी ओर अस्तित्व के लिए संघर्ष करती भारतीय जातियां। कुतुबुद्दीन ऐबक को सत्ता प्राप्त तो हो गई पर वह सदैव अपने शत्रुओं से संघर्षरत रहा। इल्तुतमिश योग्य सुल्तान था उसने अपनी कूटनीति से विघटनकारी शक्तियों का सामना किया और दिल्ली सल्तनत को स्थाई रूप प्रदान किया। इस कार्य में उसका सहयोग उसके द्वारा गठित 'तुर्कान–ए–चहलगामी' ने दिया। उसने इक्ता व्यवस्था की नींव रखी। रजिया शासक तो बन गई पर पुरुष प्रधान समाज में एक स्त्री के अधीनस्थ किसी पुरुष का कार्य करना अपमानजनक था। शीघ्र ही समस्त अमीर अपने स्वार्थ सिद्धि के कारण उसके पतन में सहायक बने। इन्हीं दासों के दल से अपनी योग्यता से शासक के पद पर पहुंचने वाला गुलाम 'बलबन' जिसने अपने को गुलाम की श्रेणी से मुक्त करके ऐसे राजत्व सिद्धांत का प्रतिपादन किया 'जिसमें शासक ही ईश्वर' है और उसने सुल्तान पद की प्रतिष्ठा को उच्च स्तर पर पहुंचा दिया। बलबन की मृत्यु के पश्चात विघटनकारी शक्तियां पुनः सर उठाने लगीं और उसके अयोग्य वंशजों को मृत्यु का रास्ता दिखाते हुए गुलाम वंश को समाप्त कर दिया।

टिप्पणी

खिलजी वंश 1290–1320

अपनी योग्यता से एक वृद्ध जलालुद्दीन खिलजी ने गुलाम वंश के अंतिम शासक की हत्या कर दी। वह अत्यधिक उदार शासक होने के कारण योग्य शासक न बन सका और अपने पुत्र समान भतीजे के हाथों मृत्यु का शिकार हो गया। अलाउद्दीन खिलजी योग्य, साहसी, दूरदर्शी और महत्वकांक्षी शासक था। अपनी महत्वकांक्षी को प्रत्यक्ष करने के लिए एक बड़ी सेना का गठन किया और राज्य पर उनके वेतन का अधिक भार न पड़े इसके लिए 'बाजार नियंत्रण व्यवस्था' को लागू कर अपनी साम्राज्यवादी लिप्सा को पूरा किया अलाउद्दीन खिलजी द्वारा स्थापित व्यवस्था व्यक्तिवादियों और स्वयं उसकी योग्यता पर निर्भर थी। उसके कोई भी उत्तराधिकारी उसके अनुरूप कार्य नहीं कर सके। विघटनकारी शक्तियों का सामना करने में वे सक्षम नहीं थे और उनका पतन हो गया।

तुगलक वंश 1320–1414 ई.

सैनिक से सुल्तान बना 'गयासुद्दीन तुगलक' शासक तो बन गया परंतु उसे शीघ्र ही आंतरिक विद्रोह का सामना करना पड़ा। आंतरिक विद्रोह से निपटने के पश्चात उसने अर्थव्यवस्था में सुधार के प्रयत्न किये परंतु शीघ्र ही वह आकस्मिक दुर्घटना में मृत्यु को प्राप्त हो गया। उसके बाद उसके पुत्र मुहम्मद बिन तुगलक को सत्ता प्राप्त हो गई। वह एक 'मिश्रित गुणों' का शासक था जो अपनी विचार शक्ति में अपने वक्त से बहुत आगे या तत्कालीन अधिकारी वर्ग को अपनी योजनाओं के बारे में नहीं समझा सका और न ही भ्रष्टाचार में लिप्त अधिकारियों ने उसे समझने का प्रयास किया। फिर दिल्ली पर अपना वर्चस्व और विघटनकारी शक्तियों का सामना करने के लिए 'फिरोज तुगलक' सत्ता पर आसीन हो गया। वह एक योग्य प्रशासक नहीं था इसका प्रमुख कारण था– सदैव 'उलेमा' वर्ग को संतुष्ट करने की उसकी नीति वह अपनी सिंचाई व्यवस्था एवं शहरों की स्थापना के लिए जाना जाता है। परंतु शीघ्र ही उसके आने वाले अयोग्य वंशजों एवं तैमूर के आक्रमण ने तुगलक वंश का अंत कर दिया।

सैय्यद वंश 1414–1451

खिज खां द्वारा इस वंश की स्थापना की गई परंतु उसने सुल्तानों के किसी भी सिद्धांत को स्वीकार नहीं किया और अपने को 'रैय्यत–ए–आला' की उपाधि से संतुष्ट करता रहा। उसने अपना स्वतंत्र अस्तित्व बनाया ही नहीं। मुबारक शाह ने अपनी जागीरें बांटकर विघटकारी शक्तियों को रोकने की कोशिश की परंतु सफल नहीं हो सका। इसके पश्चात के शासक सल्तनत की प्रतिष्ठा को बनाये रखने में सक्षम नहीं थे। इन दोनों के शासन काल में आंतरिक विद्रोह से दिल्ली की सीमा सुरक्षित नहीं रह सकी और सैय्यद वंश के पतन का कारण बनी।

लोदी वंश 1451–1526

तुर्कों के पतन के पश्चात अफगानी शक्ति ने 'लोदी वंश' की नींव रखी जिसका संस्थापक 'बहलोल लोदी' था। आंतरिक कलह एवं सीमावर्ती क्षेत्र की समस्या का सामना उसे करना पड़ा। उसने बखूबी उनका सामना किया। उसकी उपलब्धियों में 'जौनपुर' राज्य को दिल्ली में मिलाना था। हमेशा युद्ध में रत रहने के कारण शासन

व्यवस्था में उसका महत्वपूर्ण योगदान नहीं रहा। इसके पश्चात सत्ता की बागडोर सिकंदरशाह के हाथों में आ गई। उसने अपने विरोधियों को समाप्त किया और राज्य विस्तार की योजना का क्रियान्वयन कर बिहार जैसे महत्वपूर्ण प्रांत को विजित करने में सफल रहा। वह कवि हृदय शासक था और 'गुलमुखी' नाम से कविता लिखता था। उसने अनेक संस्कृत के ग्रंथों का फारसी में अनुवाद करवाया। वह प्रेम के प्रतीक 'ताजमहल' के शहर आगरा का भी संस्थापक माना जाता है। इसके पश्चात इब्राहिम लोदी शासक बना जिसे अपने भाई जलाल खां से सत्ता के लिए संघर्ष करना पड़ा। तत्कालीन परिस्थितियां उसके अनुकूल नहीं थी और उसे आंतरिक विद्रोह, उत्तर पश्चिम से आक्रमण का भय एवं मेवाड़ से लगातार होने वाले युद्धों ने उसकी शक्ति एवं आर्थिक स्थिति को कमजोर कर दिया। इब्राहिम लोदी के एक सरदार 'दौलत खां' लोदी ने बाबर को भारत आक्रमण का न्यौता दिया और पानीपत के मैदान में इब्राहिम लोदी को परास्त कर दिया। वह युद्ध भूमि में मारा जाने वाला दिल्ली का पहला सुल्तान था और दिल्ली सल्तनत का अंतिम शासक था।

इस प्रकार दिल्ली सल्तनत के पतन के कारणों में आंतरिक षड्यंत्र, अमीरों की महत्वकांक्षा और उत्तर पश्चिम से होने वाले आक्रमण जैसी विघटनकारी शक्तियां थीं। वे अपनी सल्तनत को कभी भी संगठित आधार प्रदान करने में सफल नहीं हो सके।

शाही व्यवस्था में अन्तर्निहित तनाव एवं संघर्ष

दिल्ली सल्तनत का जन्म तनाव पूर्ण स्थिति में हुआ और इसी में उसका अंत भी हो गया। शासकों का दृष्टिकोण एक विभाजन रेखा खींचता है और यह विचार व्यक्त करता है कि सत्ता और महत्वकांक्षा के रिश्ते नहीं होते हैं। महत्वकांक्षा से उपलब्धियां तो हासिल हो जाती हैं, परंतु तनावपूर्ण स्थिति उत्पन्न हो जाती है। यही दिल्ली सल्तनत के साथ हुआ।

मुहम्मद गौरी की मृत्यु ने तनाव की स्थिति उत्पन्न कर दी और उसके गुलाम सेनापतियों में संघर्ष शुरू हो गया। इस संपत्ति में कुतुबुद्दीन ऐबक के पक्ष में दिल्ली की सत्ता आई। इल्तुतमिश के शासन काल में भी वही तनाव पूर्ण स्थिति बनी रही उसके द्वारा स्थापित 40 गुलामों के दल ने संकट उत्पन्न कर दिया और उन्हीं गुलामों में से एक बलबन सत्ता के शीर्ष तक पहुंच गया। रजिया को स्त्री होने के कारण गद्दी छोड़नी पड़ी। उसका शासन काल सदैव तनाव और संकटपूर्ण रहा। बलबन के राजत्व सिद्धांत में बलबन के दास होने की कुंठा स्पष्ट दिखाई देती है। बलबन की मृत्यु के बाद शाही राजघराने के लोगों एवं सरदारों और अमीरों के बीच किसे सुल्तान बनाया जाये यह प्रश्न विवादास्पद बन जाता है। और बलबन के बड़े पुत्र कैकुबाढ के स्थान पर बलबन के दूसरे पुत्र को शासक बना दिया जाता है। इसके बीमार होने के कारण 3 वर्ष के अल्पव्यस्क पुत्र को शासक बनाया जाता है जिसकी हत्या कर जलालुद्दीन खिलजी स्वयं शासक बन जाता है और अलाउद्दीन खिलजी धोखे से उसकी भी हत्या कर देता है। अलाउद्दीन खिलजी की मृत्यु के बाद उसके सेनापति मलिक काफूर ने उसके बड़े पुत्र को सत्ता से वंचित कर शिहाबुद्दीन उमर को शासक बनाया और स्वयं संरक्षक बन गया। मलिक काफूर ने अलाउद्दीन के दो पुत्रों की आंखें निकलवा दी और एक पुत्र को कैद कर लिया। मलिक काफूर की भी हत्या कर मुबारक खिलजी शासक बन गया और उसकी भी हत्या कर गयासुद्दीन तुगलक शासक बन गया। इतिहास

मुहम्मद तुगलक को भी अपने पिता का हत्यारा ठहराता है। मुहम्मद तुगलक अपनी योजनाओं की असफलता के कारण हमेशा विवादस्पद रहा। दिल्ली सल्तनत का अंतिम वंश लोदी वंश रहा है। इब्राहिम लोदी ने सत्ता के लिए अपने भाई जलाल खां की हत्या करवा दी। वह सरदारों के असंतोष का सामना नहीं कर सका और इब्राहिम लोदी के विरुद्ध उन्होंने बाबर को भारत आक्रमण के लिए आमंत्रित किया। इन अन्तर्निहित तनावों और आपसी वैमनस्यता ने दिल्ली सुल्तानों के अस्तित्व को मृतप्रायः बना दिया।

मुगल साम्राज्य : क्रमबद्ध संकट एवं विघटन

फरगना से आए मुस्लिम आक्रमणकारी बाबर ने मुगल राजवंश को स्थापित किया। उसने उत्तरी भारत के कुछ हिस्सों पर हमला किया और दिल्ली के शासक इब्राहिम शाह लोदी को 1526 में पानीपत के पहले युद्ध में हराया। मुगल साम्राज्य ने उत्तरी भारत के शासकों के रूप में दिल्ली के सुल्तानों का स्थान लिया।

परंतु बाबर का रास्ता भी आसान नहीं था। उसे भारत में सत्ता स्थापित करने के पश्चात राजपूतों के प्रबल विरोध का सामना करना पड़ा और 1527 में राणा सांगा के साथ खानवा का युद्ध लड़ना पड़ा। बाबर की मृत्यु के बाद मुगल साम्राज्य को मुश्किलों का सामना करना पड़ा और हुमायुं के समय कई विघटनकारी शक्तियों का उदय हो गया। प्रथम उसके अपने ही भाइयों के विरोध का सामना करना पड़ा, शेरशाह सूरी से चौसा एवं जिलाग्राम के युद्ध में पराजित होकर भारत छोड़ने के लिए बाध्य होना पड़ा। शेरशाह सूरी ने द्वितीय अफगान साम्राज्य की स्थापना की। वह योग्य, साहसी और बुद्धिमान शासक था उसने एक बेहतर राजनीतिक और आर्थिक ढांचे को तैयार किया। परंतु उसके अयोग्य उत्तराधिकारियों से हुमायुँ ने पुनः सत्ता हथिया ली।

अकबर ने बहुत कम उम्र में सत्ता प्राप्त की परंतु उसका प्रारंभिक जीवन विघटनकारी शक्तियों से घिरा रहा जैसे कि– बैरम खां का सख्त संरक्षण और 'अतखा खैला' गुट का उस पर प्रभाव होना। इससे मुक्त हुआ तो 'पेटीकोट शासन या पर्दा शासन' ने उस पर प्रभाव जमाने की अत्यंत कोशिश की और जब इन सारी परिस्थिति का मुकाबला उसने अपनी बुद्धिमत्ता और कूटनीति से किया तो उसे अपने पुत्र जहांगीर के विद्रोह का भी सामना करना पड़ा। जहांगीर के पूरे शासन काल में विघटनकारी शक्तियों का दबाव उस पर रहा। 'नूरजहां गुट' शहरयार को शासक बनाना चाहता था और दूसरा गुट शाहजहां को शासक बनाना चाहता था अंत में सफलता शाहजहां को मिली।

शाहजहां का काल दो विरोधाभासी तत्वों के लिए जाना जाता है। एक प्रेम के प्रतीक ताजमहल के लिए और दूसरा भाई–भाई के बीच उत्तराधिकार के खूनी संघर्ष के लिए। शाहजहां के चार पुत्रों के बीच संघर्ष में औरंगजेब की विजय हुई। परंतु उसकी धार्मिक कट्टरता की नीति ने कारण विघटनकारी तत्वों का प्रभाव बढ़ने लगा और उसे अनेक क्षेत्रीय विद्रोहों का सामना करना पड़ा। उसे अपने पुत्र अकबर II के विद्रोह का भी सामना करना पड़ा। 1707 में औरंगजेब की मृत्यु के साथ ही विघटनकारी शक्तियों का प्रभाव मुगल साम्राज्य में बढ़ने लगा और कालान्तर में उसका पतन हो गया।

शाही व्यवस्था में अन्तर्निहित तनाव एवं संघर्ष

राजसत्ता किसी भी काल में हो, फूलों की सेज नहीं रही है, उसमें आसीन होने वाले शासक सदैव तनाव का सामना करते थे। उनका अधिकांश जीवन तनाव का सामना करने और उन समस्याओं के निराकरण में ही बीत जाता था। मुगल सल्तनत भी अपवाद नहीं रही और इतने शक्तिशाली योग्य और बुद्धिमान शासकों को भी इन तनावों का सामना करना पड़ा।

इस श्रृंखला में प्रथम नाम 'बाबर' का आता है जिसे अपने ही रिश्तेदारों के कारण अपनी पैतृक भूमि छोड़कर भारत की ओर प्रस्थान करना पड़ा। भारत की सत्ता उसे प्राप्त तो हो गई पर जब तक जीवित रहा, भारतीय शक्तियों से हमेशा युद्धरत रहा।

हुमायूं के संदर्भ में लेनपुला का कथन सत्य साबित होता है कि "वह जीवन भर लड़खड़ाता रहा और लड़खड़ाने से ही उसका अंत हो गया।" उसके भाइयों ने कभी उसका सहयोग नहीं किया और अफगान नेता शेरशाह सूरी से पराजित होकर भारत से भागने को विवश होना पड़ा। अकबर एक राष्ट्रीय सम्राट था फिर भी उसे अपने प्रारंभिक जीवन में बैरम खां, अतखाखैला, पेटीकोट शासन के तनाव और प्रभाव दोनों का सामना करना पड़ा और शासन के अंतिम समय में उसे अपने पुत्र जहांगीर के विद्रोह का सामना करना पड़ा पर समझाने बुझाने पर यह तनाव दूर हो गया। जहांगीर पूरे जीवन भर नूरजहां के प्रभाव में रहा और समस्त अधिकारों का उपयोग वही करती रही। उसने अपने सगे संबंधियों के साथ मिलकर 'नूरजहां जुंता गुट' का निर्माण किया। अगले उत्तराधिकार को लेकर राजपरिवार में दो गुट बन गये एक 'शाहजहां' को शासक बनाना चाहते थे तो दूसरा नूरजहां के दामाद 'शहरयार' को। शाहजहां का अंतिम समय तनाव के काल का उच्चतम समय था जब उसके चार पुत्रों में उत्तराधिकार को लेकर खूनी संघर्ष की शुरुआत हुई और औरंगजेब इस संघर्ष में विजय रहा। औरंगजेब की धार्मिक कट्टरता एवं दक्षिण भारत में व्यस्तता के कारण अफगान, जाट, सतनामी, बुंदेला राजपूत और खिज विद्रोह के साथ उसे अपने पुत्र अकबर II के विद्रोह का भी सामना करना पड़ा।

औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात भी समस्याएं और तनाव कम नहीं हुए, बल्कि तनाव बढ़ने गये शाही दरबार में आंतरिक विद्रोह, षड्यंत्र, अराजकता और अमीरों की स्वयं सुल्तान बनने की आकांक्षा से बाहरी शक्तियों को आगे बढ़ने का अवसर मिला और मुगल साम्राज्य के खंडहरों में अंग्रेजों ने अपनी इमारत तैयार कर ली।

2.4.2 प्रतिरोध का स्वरूप : दिल्ली सल्तनत एवं मुगल साम्राज्य

राजपूत शक्तियों की आपसी वैमनस्यता का लाभ मुस्लिम आक्रमणकारियों ने उठाया और मुट्ठी भर आक्रान्ताओं ने भारतीय शक्तियों को उनके ही देश में पराजित कर दिया। एक तरफ विजेता आक्रांताओं का हर्ष और उन्माद था तो दूसरी तरफ पराधीन शक्तियों का अपने आत्मसम्मान हेतु संघर्ष। इसी श्रृंखला में दिल्ली सल्तनत में नये प्रतिरोधों का जन्म हुआ।

(i) इस्लाम का विस्तार बनाम हिंदुत्व की रक्षा– दिल्ली सल्तनत की स्थापना के साथ ही हमें हिंदू शासकों एवं मुस्लिम शासकों के मध्य प्रतिरोध दिखाई देता है। मुस्लिम शासकों ने भारत को स्थाई निवास बना लिया। मुस्लिम शासकों ने इस्लाम का प्रचार–प्रसार शुरू कर दिया। उनकी नीतियां धार्मिक कट्टरता की थी जिससे अंतर्निहित प्रतिरोध हमेशा सामने आता रहा।

(ii) पारंपरिक एवं नव मुस्लिमों के बीच प्रतिरोध– मुस्लिम शासकों द्वारा धर्म विस्तार की भावना ने नये प्रतिरोध को जन्म दिया। जातीय श्रेष्ठता का सिद्धांत हर जगह लागू होता है। पारंपरिक मुसलमान नव मुस्लिम वर्ग के साथ समानता का व्यवहार नहीं करता था।

(iii) सुल्तानों के विरुद्ध षड्यंत्र का प्रतिरोध– सल्तनत काल की सर्वप्रमुख विशेषता के अंतर्गत शासकों को अमीर वर्ग और अपने ही सगे रिश्तेदारों के षड्यंत्र का शिकार बनना पड़ता था। इस कड़ी में दास वंश के प्रायः सभी शासकों को इसका सामना करना पड़ा। इन अमीरों की महत्वकांक्षा ने अनेक सुल्तानों की बलि चढ़ा दी।

(iv) स्त्री सुल्तान होने का प्रतिरोध– स्त्री की महत्वकांक्षा ने उसे सुल्तान तो बना दिया परंतु उसकी चुनौतियों का अंत नहीं हो पाया। पुरुष वर्ग एक स्त्री की अधीनता में कार्य करना अपना अपमान समझते थे। यह प्रतिरोध सत्ता का नहीं था बल्कि स्त्री और पुरुष का था। उलेमा वर्ग भी उसके मर्दाना व्यवहार से उससे नाराज रहता था। यहां प्रश्न यह है कि "स्त्री में योग्यता नहीं है, क्योंकि वह स्त्री है।" एक स्त्री पुरुषों के समकक्ष खड़ी नहीं हो सकती है और वह खड़ी भी होती है तो इसकी कीमत सिर्फ उसकी मृत्यु है।

(v) खिलजी वंश में प्रतिरोध– जलालुद्दीन खिलजी ने हत्या करके शासन प्राप्त किया और इसका परिणाम भी उसकी हत्या के साथ हुआ। अलाउद्दीन खिलजी ने अपने चाचा की हत्या कर सत्ता प्राप्त कर ली और सल्तनत को व्यवस्थित स्वरूप दिया। उसकी मृत्यु के बाद उसके हिजड़े सेनापति 'मलिक काफूर' ने अलाउद्दीन के दो पुत्रों खिज खां एवं साल्दी खां की आंखें निकलवा दी और तीसरे पुत्र मुबारक खिलजी को कैद कर लिया। कुछ दिन बाद उसकी भी हत्या मुबारक खिलजी ने कर दी और स्वयं शासक बन गया परंतु बाद में उसकी भी हत्या 'गाजी मलिक' ने कर दी।

(vi) तुगलक वंश में प्रतिरोध– मुहम्मद तुगलक को अपने शासन काल में बहुत से प्रतिरोधों का सामना करना पड़ा। प्रथमतः उसे इतिहास अपने पिता का हत्यारा कहता है। दूसरा उसकी योजनाएं जो वक्त से आगे थी, उनकी असफलताओं के कारण सरदार वर्ग, प्रजा वर्ग सभी के प्रतिरोध का सामना करना पड़ा। उसकी नीतियों के परिणामस्वरूप दक्षिण में दो स्वतंत्र राज्यों– विजयनगर एवं बहमनी साम्राज्य का उदय हुआ। इन्हीं सभी कारणों से उसे पागल एवं सनकी बादशाह कहा जाता है। इसी वंश के शासक नसिरुद्दीन महमूद के समय 'तैमर लंग' (1398 ई.) का भारत पर आक्रमण हुआ और उसने दिल्ली को तहस नहस कर दिया।

(vii) सैय्यद एवं लोदी वंश में प्रतिरोध– सैय्यद काल में प्रतिरोध का स्वरूप चरमोत्कर्ष पर था। सैय्यद कालीन शासक आंतरिक प्रतिरोधों का सामना नहीं कर सके और शीघ्र ही उनका पतन हो गया। लोदी वंश में इब्राहिम लोदी को अमीरों व सरदारों से प्रतिरोध में गद्दारी मिली और इसका परिणाम उसे पानीपत के युद्ध में लड़ते हुये मृत्यु से मिला।

इस प्रतिरोधों ने दिल्ली सल्तनत के वंशों को कभी स्थिरता प्रदान नहीं की और एक के बाद एक वंशों के पतन ने दिल्ली सल्तनत को पतन के रास्ते पर ला खड़ा कर दिया और एक दिन उसका पूर्ण पतन हो गया।

मुगल साम्राज्य में प्रतिरोध का स्वरूप

मध्यकाल में किसी भी शासक के लिए भारतीय उपमहाद्वीप पर जहां लोगों एवं संस्कृतियों में इतनी अधिक विविधताएं हों, शासन कर पाना अत्यंत ही कठिन कार्य था। अपने पूर्ववर्तियों के विपरीत मुगलों ने एक साम्राज्य की स्थापना की और उसे पूरा किया। इसके पश्चात भी मुगल शासकों को प्रतिरोधों का सामना करना पड़ा। कुछ योग्य शासकों ने इन प्रतिरोधों का सफलतापूर्वक सामना किया परंतु परवर्ती मुगल शासक इसका सामना करने में असमर्थ रहे और पतन की कगार पर पहुंच गये।

(i) बाबर और हुमायूं के काल में प्रतिरोध– 1526 में पानीपत के मैदान में इब्राहिम लोदी को परास्त करने के पश्चात बाबर को राणासांगा, चंदेरी के राजपूत एवं इब्राहिम लोदी के समर्थक विभिन्न अफगान सरदारों के प्रतिरोध का सामना करना पड़ा। इसके पश्चात इन प्रतिरोधों का सामना हुमायुँ को करना पड़ा। उसके भाइयों ने उसका सहयोग कभी नहीं किया और अफगान प्रतिद्वंद्वियों के सामने नहीं टिक सका। इन सभी कारणों से हुमायुँ सदैव ही युद्धों में संलग्न रहा और जीत–हार का सामना करता रहा।

(ii) अकबर के काल में प्रतिरोध– अकबर को सत्ता पर बैठते ही आदिलशाह के प्रतिनिधि 'हेमू' से पानीपत के द्वितीय युद्ध का सामना करना पड़ा। बैरम खां अकबर के प्रति ईमानदार और योग्य अधिकारी था। परंतु वह अकबर को अपने पूर्ण प्रभाव में रखना चाहता था, जो अकबर को स्वीकार नहीं था। इसके पश्चात अकबर की धायमां 'माहमअनगा' भी उसे अपने प्रभाव में रखना चाहती थी इसके लिए उसने 'पेटीकोट गुट' भी बना लिया परंतु अकबर ने बड़ी चतुरता से इन प्रतिरोधों को समाप्त किया। अपने शासन के अंतिम वर्षों में अकबर की सत्ता राजकुमार सलीम (जहांगीर) के विद्रोह के कारण लड़खड़ाती नजर आई।

(iii) जहांगीर एवं शाहजहां के काल में प्रतिरोध– जहांगीर के शासन के अंतिम वर्षों में राजकुमार खुर्रम, जो बाद में सम्राट शाहजहां कहलाया, ने विद्रोह किया। जहांगीर की पत्नी नूरजहां का प्रभाव भी शासन में स्पष्ट दिखाई देता था। शाहजहां के अंतिम वर्षों में उसके पुत्रों के बीच सत्ता को लेकर झगड़ा शुरू हो गया। इसमें औरंगजेब विजयी हुआ और 'दाराशिकोह' समेत अपने सभी भाइयों और उनके परिवारों को मौत के घाट उतार दिया। शाहजहां को शेष जिंदगी के लिए आगरा में कैद कर दिया।

(iv) औरंगजेब के काल में प्रतिरोध– औरंगजेब के शासन काल में उसे प्रतिरोध के रूप में अनेक विद्रोहों का सामना करना पड़ा। सबसे ज्यादा प्रतिरोध मराठा शक्ति के द्वारा किया गया। उसे अपने पुत्र अकबर II के प्रतिरोध का भी सामना करना पड़ा। परंतु अकबर II इसमें सफल न हो सका।

उत्तरवर्ती मुगल शासकों के काल में प्रतिरोध

औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात उसके पुत्रों के बीच उत्तराधिकार को लेकर संघर्ष हुआ जिसमें सफलता 'बहादुरशाह' को मिली। उसकी मृत्यु के बाद उसके चार पुत्रों में पुनः उत्तराधिकार का संघर्ष शुरू हो गया जिसमें 'जहांदारशाह' सफल रहा। फर्रुखशियर ने सैय्यद बंधुओं के साथ मिलकर जहांदार शाह को मरवा दिया। फर्रुखशियर सैय्यद बंधुओं का हस्तक्षेप पसंद नहीं करता था और उनके विरुद्ध षड्यंत्र रचता रहता था। इस कारण सैय्यद बंधुओं ने उसे मार कर 'रफी–उद–दरजात' व उसके बाद 'रफी–उद–दौला' को शासक बनाया। ये अयोग्य शासक थे इसलिए 'मुहम्मदशाह' सैय्यद बंधु की सहायता से शासक बन गया। अवसर पाते ही 'मुहम्मदशाह' ने सैय्यद बंधुओं की हत्या करवा दी। इसी के शासन काल में प्रांतीय राज्य अपनी स्वतंत्रता घोषित करने लगे। बाजीराव ने दिल्ली पर आक्रमण कर अपने प्रभाव में वृद्धि की। 1739 के नादिरशाह के आक्रमण ने मुगलों की सत्ता की नींव हिला दी।

इसके बाद के मुगल शासक और भी अयोग्य साबित हुये। 'बहादुर शाह की सत्ता तो सिर्फ' दिल्ली के लालकिले तक सीमित रह गई। एक दिन अंग्रेजों ने उसे देश से निर्वासित कर वो भी छीन लिया इस प्रकार मुगल इमारत धराशायी हो गई।

2.4.3 साम्राज्यों का पतन : दिल्ली सल्तनत एवं मुगल साम्राज्य

सन् 1206 से 1526 के दौरान उत्तर भारत के विशाल भू भाग पर शासन करने वाले शासकों को सुल्तान तथा उनके शासन काल को दिल्ली सल्तनत के नाम से जाना गया। उन्होंने उत्तर भारत के मुख्य वंशों, मुख्यतः राजपूतों को हराकर अपनी सत्ता की स्थापना की थी। लगभग 300 वर्षों तक दिल्ली सल्तनत में पांच वंशों ने शासन किया। यहां हम उनके पतन के उत्तरदायी कारणों को देखेंगे।

गुलाम वंश

गुलाम वंश के पतन का सबसे मुख्य कारण उत्तराधिकार के नियम का स्पष्ट न होना था जिसके पास शक्ति थी वही शासक बनने के योग्य था। हिंदु बहुल क्षेत्र में गुलाम का शासक बनना भी एक बहुत बड़ी समस्या थी। उन्हें वो आदर व सम्मान नहीं मिलता था जिसका हकदार शासक वर्ग होता था। हिंदुओं को प्रशासन में भागीदारी भी न देना इसका कारण था। शासक वंश कभी जनमानस के करीब हो ही नहीं पाये। इस वंश के ऊपर धार्मिक वर्ग का अत्यधिक नियंत्रण भी पतन का महत्वपूर्ण कारण था। इल्तुतमिश ने चालीस गुलामों के दल का गठन किया जो कालान्तर में अधिक महत्वकांक्षी हो गये। रजिया के शासन काल में अमीरों के स्वार्थ ने एकजुट होकर उसके खिलाफ मोर्चा खोल दिया और उसका पतन हो गया। बलबन के जातीय श्रेष्ठता के सिद्धांत से न कभी अधिकारी वर्ग उसके करीब आया और न ही उसे कभी जनमानस का सहयोग मिला।

खिलजी वंश

इस वंश के पतन में जलालुद्दीन की उदारता की नीति प्रमुख कारण है। शासक वर्ग को न ही बहुत अधिक लचीला होना चाहिए न ही कठोर। यहां भी उत्तराधिकार के नियम ना होने के कारण शासक बनना हर किसी का लक्ष्य बन गया। अलाउद्दीन की अति कठोरता की नीति एवं साम्राज्य विस्तार की नीति भी पतन का कारण थी। दिल्ली सल्तनत के हर सुल्तान की सबसे बड़ी कमजोरी उनका किसी पर विश्वास न होना था इसके कारण उनका कभी कोई विश्वास पात्र नहीं बन पाता था और अवसर पाते ही शासक बनने का षड्यंत्र करने लगता था।

तुगलक वंश

मुहम्मद तुगलक के अंतिम समय में जो विद्रोहों की लंबी श्रृंखला दिखाई देती है, वह दिल्ली सल्तनत की खंडता की शुरुआत थी। इस खंडता के अनेक कारण सामने आते हैं। इन तमाम कारणों और परिस्थितियों के लिए प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से सुल्तान जिम्मेदार था। पारिवारिक प्रतिद्वंद्विता, विफल प्रयोगों का दीर्घ क्रम, शासन नीति, मनोवृत्ति, प्राकृतिक आपदा, सुल्तान की निर्दयी दंड नीति, रूढ़िवादी उमरा और उलेमा वर्ग का असंतोष आदि कारण थे। इस पतन में फिरोज तुगलक की नीतियां भी उतनी ही जिम्मेदार थी।

सैय्यद और लोदी वंश

सैय्यद वंश के शासकों में योग्यता का अभाव था। शीघ्र ही इस वंश का पतन हो गया। लोदी वंश के पतन का मुख्य कारण इब्राहिम लोदी द्वारा सरदारों पर अत्यधिक नियंत्रण स्थापित करना था। जिससे नाराज होकर एक सरदार दौलत खां लोदी ने बाबर को भारत आक्रमण के लिए आमंत्रित किया और पानीपत के युद्ध में इब्राहिम लोदी को पराजित कर दिल्ली सल्तनत के साथ लोदी वंश का भी अंत कर दिया।

मुगल साम्राज्य का पतन

साम्राज्य के अंतिम दिनों में मुगल सत्ता रोग ग्रस्त हो गई, उसके दो प्रमुख कारण थे– विलासिता एवं आंतरिक कलह। इन दो घातक विषों के प्रभाव से सम्राटों और अमीरों का पतन हुआ। बाबर एवं अकबर साहसी योद्धा थे, जहांगीर और शाहजहां विलासी थे। औरंगजेब की धार्मिक एवं दक्षिण नीति के कारण मुगल साम्राज्य की जड़ें खोखली हो गई। परवर्ती सभी सम्राट अयोग्य निकले और साम्राज्य का पतन हो गया।

(1) शक्तिहीन उत्तराधिकारी– मुगल सम्राट निरंकुश एवं स्वेच्छाचारी शासक थे प्रशासन की समस्त शक्ति सम्राट के हाथों में थी। मुगल प्रशासन की यह विशेषता थी कि इसमें अत्यधिक केंद्रीयकरण के तत्व थे। इस प्रकार की सरकार में प्रशासन की सफलता अथवा असफलता सम्राट के व्यक्तित्व, चरित्र और कृतित्व पर निर्भर करती थी। सम्राट के योग्य होने की दशा में तो प्रशासन अच्छी तरह चलता है, परंतु उसके अयोग्य होने की अवस्था में विघटनकारी प्रवृत्तियां सिर उठाने लगती हैं। और ऐसी स्थिति में विशाल साम्राज्य पर नियंत्रण कठिन हो जाता है।

(2) औरंगजेब की धार्मिक असहिष्णुता की नीति– अकबर की सुलहकुल पर आधारित सहिष्णुता की नीति को उसके उत्तराधिकारी सम्राटों ने धीरे–धीरे त्यागना प्रारंभ कर दिया था। जहांगीर के समय धार्मिक असहिष्णुता की नीति का बीजारोपण हुआ, शाहजहां के समय इसका प्रसार हुआ और औरंगजेब के समय धार्मिक असहिष्णुता की नीति चरम सीमा पर पहुंच गयी। बहुसंख्यक हिंदू जनता पर उसने अत्याचार किये। उसकी नीति के परिणामस्वरूप जाटों, सतनामियों, राजपूतों, सिखों, मराठों आदि ने मुगल साम्राज्य की ईंट से ईंट बजा दी।

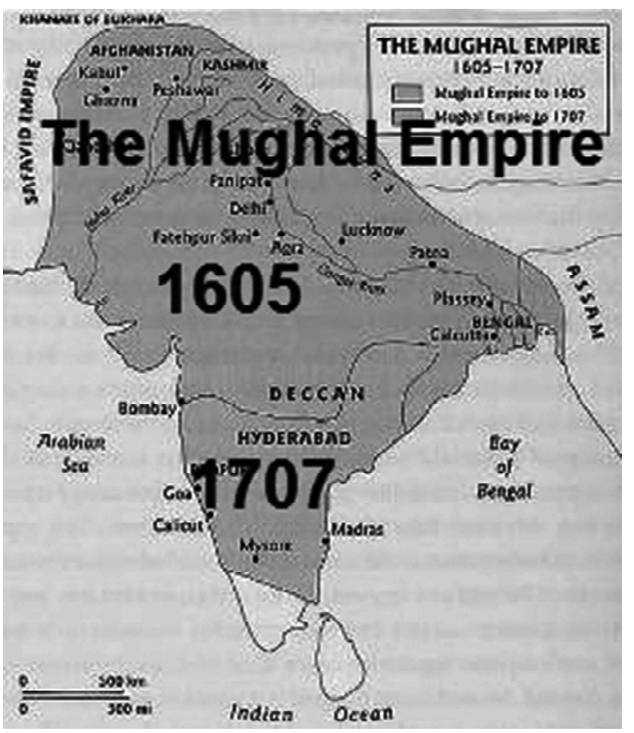

(3) औरंगजेब का चारित्रिक दोष– वह बड़े संदेहशील स्वाभाव का था अपने पुत्र एवं पुत्रियों को भी संदेह की दृष्टि से देखता था।

(4) उत्तराधिकार के नियम का अभाव– मुगल शासन व्यवस्था में उत्तराधिकार के नियम का अभाव था। सभी मुगल शहजादे गद्दी प्राप्त करने के लिए संघर्ष करते थे। इस संघर्ष में विजेता वही होता था, जिसके साथ विश्वसनीय अमीर होते थे। किसी एक पक्ष के विजयी होने पर भी उसे सदैव गद्दी के दावेदारों का भय लगा रहता था। उन्हें गद्दी पर बैठने के पश्चात् अमीरों के अनुचित दबावों के आगे झुकना पड़ता था।

(5) मुगल दरबार में अमीरों के षड्यंत्र– औरंगजेब की मृत्यु के बाद मुगल दरबार में गुटबंदी और षड्यंत्र बढ़ते ही चले गये। जिस समय मुगल साम्राज्य को बाहरी तथा भीतरी आक्रमणों का सामना करना पड़ रहा था उस समय भी यह गुटबंदी समाप्त नहीं हुई। दरबार में तुरानियों तथा ईरानियों ने अपने–अपने दल कायम कर लिये थे। ये दोनों दल एक–दूसरे को नीचा दिखाने के लिए

सम्राट को भड़काते रहते थे तथा षड्यंत्र किया करते थे। इस दलबंदी के रहते सम्राट को विद्रोहियों की शक्ति के दमन में सफलता प्राप्त नहीं होती थी।

(6) औरंगजेब की दक्षिण नीति– औरंगजेब ने बीजापुर, गोलकुण्डा तथा मराठों को कुचलने की योजना बनाई थी। वह बीजापुर एवं गोलकुण्डा की शक्ति को तो नष्ट करने में सफल रहा, परंतु मराठों को निर्णायक रूप से पराजित करने में वह सफल नहीं हुआ। 'जदुनाथ सरकार' दक्षिण को मुगल साम्राज्य का 'स्पेनी नासूर' मानते हैं। वी.ए. स्मिथ के अनुसार "दक्षिण केवल औरंगजेब के शरीर की कब्र ही नहीं, अपितु उसके साम्राज्य की कब्र भी बनी।" इस नीति के मुगल साम्राज्य पर घातक प्रभाव पड़े।

(7) मुगल साम्राज्य पर आर्थिक संकट– मुगल सम्राटों ने साम्राज्यवादी महत्वकांक्षा की तृप्ति के लिए दीर्घकालीन एवं खर्चीले युद्ध लड़े। इससे राजकोष रिक्त होने लगा। औरंगजेब अपने शासन के अंतिम वर्षों में सैनिकों को वेतन देने की स्थिति में नहीं था। अकबर के उत्तराधिकारी मुगल सम्राटों ने देश की आर्थिक दशा सुधारने की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। सतीश चंद्रा जागीरदारी संकट को इसका कारण मानते हैं। मराठी मनसबदारों की संख्या में तेजी से वृद्धि हुई, जबकि उसी तेजी में भूमि का विस्तार नहीं हुआ। "इरफान हबीब" ने मुगल साम्राज्य के पतन के लिए कृषि संकट को जिम्मेदार ठहराया। इस प्रकार मिले–जुले आर्थिक कारणों से मुगल साम्राज्य का पतन हो गया।

(8) मुगल अमीरों एवं सैनिकों का नैतिक पतन– अधिक सम्पन्नता तथा समृद्धि के कारण मुगल अमीरों तथा सैनिकों का चारित्रिक पतन हो गया। वे भोग–विलास के आदी हो गये थे। बेईमानी तथा भ्रष्टाचार उनके चरित्र के प्रमुख लक्षण बन गये थे। कोई भी साहसिक कार्य करने की शक्ति इनमें शेष नहीं रह गई थी।

(9) मुगलों की दोषपूर्ण सैन्य व्यवस्था– मुगलों की दोषपूर्ण सैन्य व्यवस्था भी मुगल साम्राज्य के पतन का कारण बनी। अकबर के समय में स्थापित मनसबदारी व्यवस्था की सफलता तब तक ही संभव थी, जब तक कि सम्राट का मनसबदारों पर कठोर नियंत्रण स्थापित रहे। जैसे–जैसे सम्राटों का नियंत्रण मनसबदारों पर ढीला पड़ता गया। सेना की क्षमता का ह्रास होने लगा। इसके अलावा मनसबदारी प्रणाली में कोई संगठित केंद्र नहीं था जो एक राष्ट्रीय सेना के लिए आवश्यक था।

(10) अन्य कारण– अन्य कारणों में प्रांतीय सूबेदारों द्वारा मुगल साम्राज्य के विघटन में योगदान, दलबंदी, यूरोपीय शक्तियों का आगमन, विदेशी आक्रमण आदि साम्राज्य के पतन के प्रमुख कारण थे।

(11) नया दृष्टिकोण– एम अथर अली का मानना है कि 18वीं सदी एशिया में तीन बड़े मुस्लिम साम्राज्यों के पतन का समय था। 'तुर्की के ओटोमन तुर्क, ईरान के सफवी वंश तथा उज्बेकिस्तान के उज्बेग वंश का भी पतन हुआ। स्पष्ट तौर पर इन चारों साम्राज्यों के पतन के कुछ मौलिक कारक होंगे जो सभी में समान रूप से लागू होते होंगे। उन्होंने पतन का कारण बताया– सांस्कृतिक पतन विशेष

टिप्पणी

रूप से विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में। जबकि यूरोपियन शक्तियां विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी पर आधारित थी।

वह मुगल साम्राज्य जिसने अपने दूर–दूर तक फैले क्षेत्रों, सैनिक शक्ति तथा सांस्कृतिक उपलब्धियों के लिए समकालीनों की प्रशंसा प्राप्त की थी, औरंगजेब की मृत्यु के बाद छिन्न–भिन्न हो गया। उसके अयोग्य उत्तराधिकारी अपना प्रभाव जमाने में असफल रहे। उनकी कमजोरी का लाभ उठाकर अनेक साहसी व्यक्तियों ने अपनी स्वतंत्र रियासतें स्थापित कर लीं और केंद्रीय नियंत्रण से आजाद हो गये। कुछ मुट्ठी भर व्यापारी (यूरोपियंस) अपने चातुर्य बल से भारत के वास्तविक स्वामी बन गये।

2.4.4 क्षेत्रीय राज्यों का उद्‌भव : दिल्ली सल्तनत एवं मुगल साम्राज्य

दिल्ली सल्तनत का सबसे अधिक विस्तार मुहम्मद बिन तुगलक के शासन काल में हुआ और दुर्भाग्य से उसका विखण्डन भी उसके शासन के अंतिम काल से प्रारंभ हो गया। चौदहवीं शताब्दी के अंत तक कई प्रांतीय राज्यों ने अपने आपको दिल्ली सल्तनत की प्रभुता से मुक्त कर लिया और वे स्वतंत्र साम्राज्य के रूप में प्रतिष्ठित हो गये।

जौनपुर–

जौनपुर की स्थापना फिरोजशाह तुगलक ने अपने भाई जौना खां की स्मृति में की थी। फिरोजशाह तुगलक के बाद 'मलिक सरवर' ऊर्फ 'मलिक–उस–शर्क' ने जौनपुर को स्वतंत्र राज्य के रूप में परिवर्तित किया और शर्को वंश की स्थापना की।

प्रमुख शासक– मलिक सरवर की मृत्यु के बाद उसका उत्तराधिकारी मुबारक शाह को बनाया गया। इसके पश्चात् 'इब्राहिम शाह' को सुल्तान बनाया गया।

इब्राहिम शाह– इसने जौनपुर राज्य को संगठित किया एवं शिक्षा एवं कला को संरक्षण प्रदान किया। इसके समय में जौनपुर को 'पूर्व का सिराज' कहा जाने लगा। इसने वास्तुकला में एक नए संप्रदाय 'जौनपुर या शार्को संप्रदाय की स्थापना की। 1408 में 'अटाला' मस्जिद का निर्माण करवाया।

महमूद शाह एवं हुसैन शाह– इसने चुनार के दुर्ग पर कब्जा किया लेकिन कालपी जीतने का प्रयास असफल रहा। इसने दिल्ली पर भी आक्रमण किया लेकिन बहलोल लोदी द्वारा पराजित हुआ। हुसैन शाह इस वंश का अंतिम शासक था। इसे बहलोल लोदी ने पराजित कर जौनपुर से खदेड़ दिया। लेकिन 'सिकंदर लोदी' के काल में जौनपुर दिल्ली सल्तनत का हिस्सा बन गया।

गुजरात– गुजरात प्राचीन काल से ही व्यापारिक दृष्टिकोण से महत्व रखता था। अलाउद्दीन खिलजी ने 1297 में इसे जीतकर दिल्ली सल्तनत का हिस्सा बना लिया। इसके बाद 'जफर खां' ने गुजरात को स्वतंत्र राज्य में परिणत किया और 'मुजफ्फर शाह' की उपाधि धारण की।

प्रमुख शासक अहमदशाह– इसके बाद गद्दी पर अहमदशाह बैठा वह सफल शासक था उसने 'अहमदाबाद' शहर की स्थापना की। पहली बार गुजरात में जजिया कर लगाया। इसके पश्चात कुछ अयोग्य शासक गद्दी पर बैठे और उन्होंने प्रशासन को कमजोर कर दिया।

महमूदशाह प्रथम– यही 'महमूद बेगड़ा' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसके शासन काल में गुजरात का महत्व और भी बढ़ गया। इसने दो किलों– गिरनार एवं चंपानेर को जीता और इनका नाम बदलकर 'मुस्तफाबाद' एवं 'मुहम्मदाबाद' रख दिया। उसकी हिंदू विरोधी नीति के कारण उसे हिंदू प्रजा के विरोध का सामना करना पड़ा। उसने पुर्तगीजो के विरुद्ध मिश्र बालकों से समझौता किया। 1509 में वह पुर्तगालियों से पराजित हुआ और फैक्ट्री खोलने के लिए 'दीव' में भूमि दी। 'उदयराज' जो उसका दरबारी कवि था उसने 'राजा बिनोद' नामक कृति की रचना की। यह महमूद बेगड़ा की जीवनी है। वह एक 'पेटू शासक' था। उसे बचपन से विष सेवन की आदत थी।

बहादुरशाह– गुजरात का अंतिम शक्तिशाली शासक 'बहादुरशाह' था। उसने 1531 में 'मालवा' को पराजित कर उसे अपने राज्य में मिला लिया। राणासांगा की मृत्यु के पश्चात् चित्तौड़ पर अधिकार कर लिया। हुमायुँ के साथ इसका संघर्ष हुआ। पुर्तगालियों से लड़ाई में जहाज से समुद्र में गिर जाने के कारण उसकी मौत हो गई।

इसके अंत के बाद उसके अयोग्य शासकों ने राज्य को कमजोर कर दिया। इसका फायदा अकबर ने उठाया और इसे अपनी सल्तनत में मिला लिया।

मालवा– मध्य भारत में मालवा की स्वतंत्र सल्तनत की स्थापना 'हुसैन खां गौरी' ने की थी, जिसे फिरोज तुगलक ने अमीर के रूप में दिलावर खां की उपाधि प्रदान की थी। 1401 में 'दिलावर खां' ने अपने को मालवा का स्वतंत्र शासक घोषित कर दिया।

अलप खां– इसने 'हुसंगशाह' की उपाधि धारण की। इसने 'मांडु' को मालवा की राजधानी बनाया। उसका सबसे बड़ा शत्रु गुजरात का अहमद शाह था। 'ललितपुर मंदिर' में पाये गये एक अभिलेख उसकी उदारता की जानकारी देते हैं।

महमूद खलजी प्रथम– उसने एक नये वंश 'खलजी वंश' की स्थापना की। यह गुजरात के शासक अहमदशाह तथा मेवाड़ के शासक 'राणा–सांगा' का समकालीन था। दोनों राज्यों के साथ इसका संघर्ष हमेशा होता रहा। इसके पश्चात कुछ और अयोग्य शासक मालवा की सत्ता पर आसीन हुए।

महमूद खलजी द्वितीय– यह इस वंश का अंतिम शासक था। 'मेदिनी राय' नामक एक राजपूत ने इसके शासन काल में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। 'राणा–सांगा' ने महमूद को पराजित किया एवं उसे बंदी बनाया लेकिन पुनः सिंहासन वापस कर दिया। 1531 ई. में बहादुरशाह ने इसे गुजरात राज्य में मिला लिया।

कश्मीर– 1320 ई. में मंगोल आक्रमणकारी 'दलूचा' के कश्मीर पर आक्रमण के पश्चात कश्मीर से 'हिंदू वंश' का खात्मा हो गया। 1339 ई. में कश्मीर में 'मिरी वंश की स्थापना 'शाहमीर' ने की तथा उसने 'शम्सुद्दीन' की उपाधि धारण की। इस वंश के 'सोलह राजाओं ने कश्मीर' पर शासन किया।

उड़ीसा–पूर्वी गंग– अवंति वर्मन–चोडगंग– इसने उड़ीसा को एक शक्तिशाली राज्य के रूप में परिवर्तित किया। उसने भुवनेश्वर में 'लिंगराज' मंदिर और जगन्नाथ मंदिर का निर्माण करवाया।

मेवाड़– अलाउद्दीन के चित्तौड़ जीतने के बाद सिसोदिया राजकुमार 'राणा हम्मीर' ने चित्तौड़ को आजाद करवाया।

राणाकुंभा– मेवाड़ के 64 किलों में से 36 किलों का निर्माण करवाया। कुंभलगढ़ में एक नये दुर्ग की स्थापना की। राणा कुंभा ने मालवा के महमूद खलजी को पराजित किया और जीत के उपलक्ष्य में चित्तौड़ में 'कीर्तिस्तंभ' का निर्माण करवाया जो इसके शासन काल का सबसे बड़ा स्मारक कीर्ति स्तम्भ था।

राणा संग्राम सिंह– इन्हें 'राणा सांगा' के नाम से जाना जाता है। इनके शासन काल में मेवाड़ शक्तिशाली राज्य के रूप में उभरा 1527 में 'खानवा के युद्ध' में बाबर से पराजित हुआ। जहांगीर के शासन काल में मेवाड़ ने मुगल आधिपत्य स्वीकार कर लिया।

विजयनगर साम्राज्य– दक्षिण भारत में दिल्ली साम्राज्य से अलग एक स्वतंत्र हिंदु राज्य की स्थापना एक महत्वपूर्ण घटना थी। इस घटना का श्रेय हरिहर एवं बुक्का नामक दो भाइयों को जाता है।

विजयनगर साम्राज्य में चार वंशों ने शासन किया।

(1) संगम वंश (1336–1488) – हरिहर I

(2) सुलुव वंश (1485–1505) – नरसिंह सुलुव

(3) तुलुव वंश (1505–1570) – वीर नरसिंह

(4) अरविडु वंश (1570–17वीं शताब्दी के मध्य)– तिरुमल

(i) संगम वंश– 1336 में 'हरिहर और बुक्का' के द्वारा इस वंश की स्थापना की गई। अपने पिता के नाम पर इस वंश का नाम संगम वंश रखा। इस वंश के अन्य शासकों में हरिहर II देवराय प्रथम, देवराय द्वितीय प्रमुख थे। देवराय प्रथम ने सर्वप्रथम अपनी सेना में मुसलमानों को भर्ती किया एवं अपनी पुत्री की शादी बहमनी शासक 'फिरोजशाह' से की। देवराय द्वितीय ने श्रीलंका के विरुद्ध सैनिक अभियान किया। इसके दरबार में विदेशी यात्री 'अब्दुर्रज्जाक' का भारत आगमन हुआ। इस वंश का अंतिम शासक विरुपाक्ष II था।

(ii) सुलुव वंश– 'नरसिंह सुलुव' ने इस वंश की स्थापना की।

(iii) तुलुव वंश– इस वंश का सबसे शक्तिशाली शासक 'कृष्णदेव राय' था। उसने बीजापुर के शासक 'इस्माइल आदिलशाह' को पराजित किया एवं पुर्तगालियों को 'भटकल' में एक किला बनाने की अनुमति दी। इस वंश की स्थापना का श्रेय वीर नरसिंह तुलुव को जाता है। इस वंश के शासक 'सदाशिव राय' के समय में बहमनी साम्राज्य से 1565 में बनीहटी/राक्षस–तंगड़ी या तालिकोटा के युद्ध में विजयनगर साम्राज्य पराजित हुआ।

(iv) अरविडु वंश– इस वंश की स्थापना 'तिरुमल' के द्वारा की गई। इसके बाद उसका पुत्र 'रंग–II' सत्ता में आया। 'रंग III' इस वंश का अंतिम शासक था। विजय नगर साम्राज्य धीरे–धीरे पतन की ओर जाने लगा और नष्ट हो गया।

बहमनी साम्राज्य– दक्षिण में मुहम्मद तुगलक की सत्ता के खिलाफ जो विद्रोह हुए उन्हीं विद्रोहों में से एक विद्रोह ने बहमनी साम्राज्य की स्थापना का मार्ग प्रशस्त किया। 1347 में 'अबुल हसन मुजफ्फर अलाउद्दीन बहमन शाह ने बहमनी साम्राज्य की स्थापना की। और गुलबर्गा को राजधानी बनाया। उसके सिक्कों में 'द्वितीय सिकंदर' खुदा है। इसने संपूर्ण साम्राज्य को चार तरफों में बांटा।

प्रमुख शासक– मुहम्मदशाह प्रथम का 1367 में मुदकल के किले पर विजयनगर के शासक बुक्का राज्य से संघर्ष। इस युद्ध में प्रथम बार तोप खाने का प्रयोग किया गया।

- **फिरोजशाह**– विजयनगर के शासक 'देवराय प्रथम' को परास्त कर उसकी पुत्री से शादी की। उसने खगोल शास्त्र के अध्ययन के लिए दौलताबाद में एक वेधशाला का निर्माण करवाया। दूसरे युद्ध में देवराय प्रथम से पराजित हो गया।
- **अहमदशाह I**– सूफी संत गेसूदराज से संपर्क के कारण उसे 'वलि' के नाम से जाना जाता है। 'वारंगल' द्वारा देवराय I को सहयोग देने के कारण अहमदशाह ने वारंगल को जीतकर अपने साम्राज्य में मिला लिया तथा साम्राज्य के बड़ा होने के कारण गुलबर्गा की जगह 'बीदर' को अपनी राजधानी बनाया।
- **हुमायुँ**– इसकी क्रूरता के कारण इसे 'जालिम शाह' के नाम से जाना जाता है।
- **मुहम्मद III**– इसके शासन काल में 'ख्वाजा जहां' इसका मंत्री बना। इसके समय में ईरानी व्यापारी महमूद गवां' का उदय हुआ। महमूद गवां ने महमूद खलजी से संघर्ष किया। कोंकण के किले को जीता। संगमरेतर पर विजय प्राप्त की। विजयनगर से गोवा एवं 'दाभोल' को छीना। उसने बहमनी साम्राज्य को 8 तरफों में बांटा। वह षड्यंत्रों का शिकार हुआ और उसे महमूद III ने मृत्युदंड दे दिया।
- **महमूदशाह**– यह अगला शासक बना। इसके काल में राज्य में अराजकता की स्थिति बनी रही। इसके बाद सत्ता 'कासिम–उल–मुमालिक' के हाथों की कठपुतली बनी रही। 'कासिम–उल–मुमालिक' की मृत्यु के पश्चात सत्ता उसके पुत्र 'अमीर–उल–बरीद' के हाथों में चली गई। इसे 'दक्कन की लोमड़ी' कहा जाता था। 'कल्ली मुल्ला' शाह इस वंश का अंतिम शासक जिसने अपने राज्य को बचाने हेतु बाबर से सहायता मांगी थी।
- **बहमनी साम्राज्य का विभाजन**– बहमनी साम्राज्य कालांतर में पांच भागों में विभक्त हो गया।

(1) अहमदनगर के निजामशाह– इसका संस्थापक मलिक अहमद था।

(2) बीजापुर के आदिलशाही– इसका संस्थापक यूसूफ आदिलशाह था।

(3) गोलकुंडा के कुतुबशाही– इसका संस्थापक 'कुली कुतुबशाह' था।

(4) बरार के इमादशाही– संस्थापक– फुतुल्लाह खां इमाद–उल–मुलक।

(5) बीदर के बरीदशाही– संस्थापक– अमीर–उल–बरीद।

इन राज्यों में सदैव संघर्ष होता रहा पर आगे जाकर मुगलों ने इनमें से कुछ राज्यों को जीत लिया।

बंगाल– बंगाल बलबन के शासन काल में पूर्ण रूप से दिल्ली सल्तनत में आया था। तुमरिल खां के विद्रोह के उपरांत बंगाल दिल्ली सल्तनत के अधीन हो गया। गयासुद्दीन तुगलक ने बंगाल पर दिल्ली सल्तनत के नियंत्रण को बनाए रखने के लिए बंगाल को

टिप्पणी

तीन प्रशासनिक भागों में विभाजित किया। इसके बाद 'फखरुद्दीन मुबारक शाह' ने बंगाल को स्वतंत्र घोषित किया। इसका काल उत्तम किस्म के सिक्कों हेतु प्रसिद्ध था।

प्रमुख शासक– इलियास शाह– इलियास शाह ने एक नये राजवंश 'इलियास वंश' की स्थापना की और बंगाल में एक संघीय शासन स्थापित किया। इसके विरुद्ध फिरोजशाह ने अभियान किया जो असफल रहा।

सिकंदरशाह– फिरोजशाह तुगलक का बंगाल का दूसरा असफल अभियान। उसने बंगाल में 'अदीना मस्जिद' का निर्माण किया।

आजम शाह– इसने 'चीन के मिंग शासक के पास अपना दूत भेजा और व्यापार को प्रोत्साहन दिया। इसके उत्तराधिकारियों के कारण बंगाल में अराजकता फैल गई जिससे हिंदू शासक 'राजा गणेश' बंगाल का शासक बन गया।

हुसैन शाह– इसने कामरूप, अहोम एवं उड़ीसा जैसे राज्यों पर विजय प्राप्त की। उसने हिंदु और मुसलमान दोनों के प्रति सहिष्णुता की नीति अपनाई। इसके शासन काल में 'चैतन्य' ने बंगाल में वैष्णव धर्म का प्रचार किया।

नुजरत शाह– अपने पिता की धार्मिक नीति को कायम रखा। 'कदम रसूल' तथा बड़ी सोना मस्जिद' का निर्माण करवाया। इसी काल में मालधर वसु ने महाभारत का बांग्ला अनुवाद किया।

गयासुद्दीन महमूद शाह– इसके शासनकाल में शेर खां का बंगाल अभियान हुआ और गयासुद्दीन महमूद को शेर खां ने बंगाल से खदेड़कर वहां अफगान शासन की स्थापना की।

इस प्रकार बंगाल प्रांत में कभी भी कोई वंश स्थायी शासन की स्थापना नहीं कर सका और वहां के प्रांत शासक सदैव स्वतंत्र शासक की तरह व्यवहार करते रहे।

मुगल साम्राज्य के पतन के पश्चात क्षेत्रीय राज्यों का उद्भव

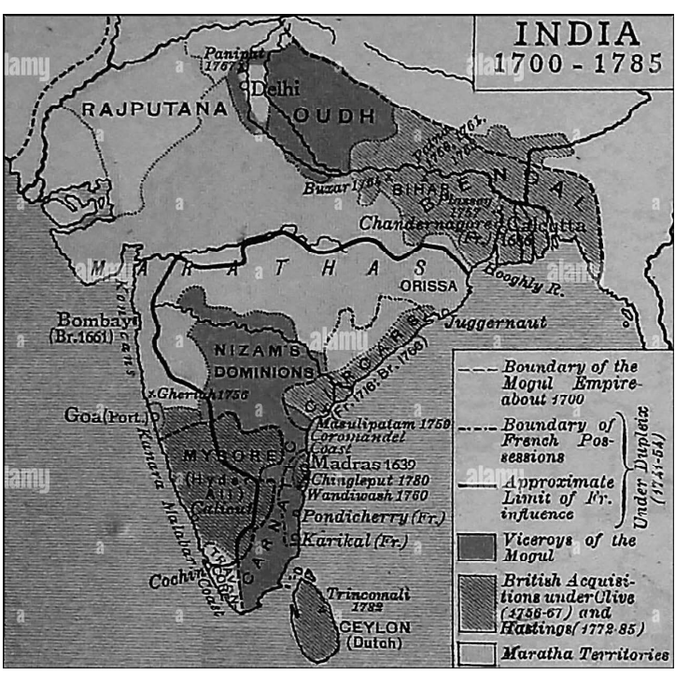

भारत में मुगल साम्राज्य का संस्थापक बाबर था। जब तक मुगल सल्तनत पर योग्य शासक आसीन होते रहे उसका वैभव चर्मोत्कर्ष पर रहा। परंतु 1767 के पश्चात से वैभव कम होने लगा। इसका फायदा हैदराबाद, अवध, मैसूर, मराठों ने उठाया और उन्होंने अपने आप को स्वतंत्र सत्ता में परिवर्तित कर लिया।

मराठा राज्य– मराठा साम्राज्य के उदय का महत्वपूर्ण कारण तात्कालिक व्यवस्था में राजनैतिक विघटन का आ जाना था। यह भारतीयों का प्रथम प्रयत्न था। एक हिंदू राष्ट्र के सपने को पूरा करने का। मुगलों की लड़खड़ाती राजनीतिक व्यवस्था पर शिवाजी ने अपने 'हिंदु–पादशाही' के सपने को साकार किया।

शिवाजी– शिवाजी ने मराठा साम्राज्य की नींव रखी और छत्रपति की उपाधि धारण की। 1657 में शिवाजी का सामना पहली बार मुगलों से हुआ। इस समय मुगल साम्राज्य में उत्तराधिकार का संघर्ष चल रहा था। इस अवसर का लाभ शिवाजी ने उठाया और अपने साम्राज्य का विस्तार किया। 1666 में औरंगजेब से मिलने शिवाजी आगरा गये और 1668 में उन्होंने मुगलों से एक संधि कर ली। जीवन भर वे मुगलों से संघर्ष करते रहे और 1680 में मृत्यु को प्राप्त हुये।

शिवाजी के उत्तराधिकारी– उत्तराधिकार के युद्ध में संभाजी एवं राजाराम में संघर्ष हुआ। जिसमें संभाजी की जीत हुई। संभाजी ने औरंगजेब के बागी पुत्र अकबर को संरक्षण दिया। संभाजी की एक मुगल सरदार ने हत्या कर दी।

राजाराम– राजाराम मंत्रियों की सहायता सत्ता पर बैठा। राजाराम ने भी शिवाजी के सपने को पूरा करने का प्रयास किया और मुगलों से युद्ध जारी रखा। परंतु उन्हें सफलता प्राप्त नहीं हुई और मृत्यु हो गई।

शिवाजी II ताराबाई– राजाराम का उत्तराधिकारी उसका अल्पव्यस्क पुत्र शिवाजी II बना जिसकी संरक्षिका 'ताराबाई' थी।

शाहू– शाहू बचपन में औरंगजेब के द्वारा कैद कर लिया गया था। औरंगजेब की मृत्यु के बाद उसे आजाद कर दिया गया जिससे मराठा साम्राज्य में उत्तराधिकार का संघर्ष शुरू हो गया। ताराबाई, शिवाजी II और शाहू के संघर्ष में शाहू की जीत हुई।

इस प्रकार शिवाजी के नेतृत्व में एक अजेय 'हिंदू राष्ट्र' का उदय हुआ, शिवाजी की इस परंपरा का निर्वाहन पेशवाओं ने जारी रखा।

हैदराबाद– निगाम–उल–मुल्क आसफ जाह' 'चिनकिलिचरवा' ने 1724 में हैदराबाद स्वतंत्र राज्य की नींव डाली। आसफ जाह दक्षिण का सूबेदार था। उसे मुगल शासक 'मुहम्मदशाह' ने वजीर बनाया परंतु दिल्ली दरबार के दूषित वातावरण से नाराज होकर दक्कन चला गया और हैदराबाद में स्वतंत्र शासक की तरह व्यवहार करने लगा।

नासिर जंग– निजाम के बाद यह हैदराबाद का शासक बना। उसका मुजफ्फर जंग से संघर्ष चला जिसमें उसकी मृत्यु हो गई और फ्रांसीसियों की सहायता से मुजफ्फर जंग शासक बन गया।

सलाबत जंग– इसने भी फ्रांसिसियों की सहायता से सत्ता प्राप्त की थी। इसके बाद निजाम अली गद्दी पर बैठा। यह दूसरे मैसूर युद्ध में तटस्थ रहा और तीसरे, चौथे युद्ध में अंग्रेजों का साथ दिया। लार्ड वैलेजली के साथ 1798 में सहायक संधि कर ली।

अवध– सहादत खाँ अवध का गवर्नर था और अवसर पाते ही 1722 में स्वतंत्र सत्ता स्थापित कर ली। इसके पश्चात सफदरजंग अवध की सत्ता पर बैठा। इसने जाटों और बंगस पठानों के विरुद्ध सैन्य अभियान किये। इसके बाद अवध का नवाब 'शुजा–उद–दौला' बना। इसने अंग्रेजों के विरुद्ध 1764 में बक्सर के युद्ध में मीर कासिम और शाहआलम का साथ दिया। अगला नवाब 'आसिफ–उद–दौला' बना। इसके समय में राजधानी 'फैजाबाद' से लखनऊ बनी। सहादत अली ने 1801 में लार्ड वैलेजली से सहायक संधि स्थापित की। 'वाजिद–अली–शाह अवध का अंतिम शासक था। 1856 में डलहौजी ने अवध को ब्रिटिश राज्य में मिला लिया।

कर्नाटक– 'सादतुल्ला खां' ने 1720 में 'कर्नाटक के स्वतंत्र राज्य की स्थापना की और 'अर्काट' को राजधानी बनाया। दोस्त अली, सफदर अली, अनवरुद्दीन, चंदा साहिब, मुहम्मद अली कर्नाटक की सत्ता पर बैठने वाले नवाब थे। 1801 में वैलेजली ने कर्नाटक के नवाब को पेंशन देकर ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लिया।

भरतपुर– जाट नेता 'चूरामन' तथा 'बदनसिंह' ने दिल्ली, मथुरा तथा आगरा के कुछ क्षेत्रों को जीतकर स्वतंत्र जाट राज्य भरतपुर की स्थापना की।

मैसूर राज्य– मैसूर राज्य, विजय नगर साम्राज्य के पतन के पश्चात 1565 में अस्तित्व में आया। जब हिंदू वाडयार राजवंश ने स्वतंत्र मैसूर राज्य की घोषणा की। देवराज तथा नंदराज ने मैसूर की सत्ता पर कब्जा करते हुए वहां के तत्कालीन चिक्का राजा 'कृष्णराज' को अपने हाथों की कठपुतली बना लिया। हैदर अली ने अपना जीवन एक घुड़सवार के रूप में प्रारंभ किया एवं मैसूर राज्य के सेनापति के पद पर पहुंचा। मैसूर राज्य पर मराठों के बराबर आक्रमण का सामना तात्कालिक शासक देवराज नहीं कर सका। हैदर अली ने इस अवसर का लाभ उठाया और 1761 में मैसूर राज्य का शासक बन गया। उसने अपनी योग्यता से विशाल मैसूर साम्राज्य का निर्माण किया लेकिन कभी भी उसने सुल्तान के पद को ग्रहण नहीं किया। इन सबके कारण हैदरअली के बहुत से गुप्त शत्रु हो गये। इनमें निजाम, अंग्रेज, मराठे प्रमुख थे। इसकी मृत्यु के पश्चात 'टीपू सुल्तान' शासक बना। इन तीनों शक्तियों ने मिलकर मैसूर राज्य को बहुत नुकसान पहुंचाया और मैसूर राज्य को चार आंग्ल–मैसूर युद्धों का सामना करना पड़ा। प्रथम युद्ध (1766–69) द्वितीय युद्ध (1780–84) तृतीय युद्ध (1790–92) चतुर्थ युद्ध (1799) में हुआ।

नये राजा के साथ अंग्रेजों ने एक सहायक संधि पर हस्ताक्षर किये। मैसूर के शासक द्वारा अच्छी तरह से शासन नहीं करने के कारण 'विलियम बैंटिक' ने 1831 में प्रशासन अपने हाथों में ले लिया। 1881 में रिपन ने इसे पुनः वहां के शासक को वापस कर दिया।

सिख राज्य– सिख राज्य के उदय होने में मुगल–सिख संबंधों का प्रमुख योगदान है। गुरु गोविंद सिंह सिखों के अंतिम गुरु थे जिन्होंने सिखों को सैनिक शक्ति में परिवर्तित किया। इसके पीछे प्रमुख कारण जहांगीर द्वारा 'गुरु अर्जुन देव' के प्रति किया गया व्यवहार तथा शाहजहां द्वारा उसका अनुसरण करना, औरंगजेब के द्वारा गुरु तेगबहादुर की यातनापूर्वक हत्या करवा देना– इन सब घटनाओं ने गुरु गोविंद सिंह के जीवन में क्रांति ला दी। बंदा बहादुर ने सिखों को एकत्रित कर नये सिख राज्य को निर्मित करने का विचार बनाया। उन्होंने लोहागढ़ को अपनी राजधानी बनाया। इन सब

बातों से मुगल उसके विरोधी हो गये और उसकी हत्या करवा दी। सिख सरदारों ने इन सभी घटनाओं से प्रभावित होकर अपनी शक्तियों को एकत्रित कर सिखों को मजबूती प्रदान करने लगे। अहमदशाह अब्दाली के आक्रमणों से केंद्रीय सत्ता और मराठा सत्ता कमजोर पड़ गई जिसका लाभ सिखों ने उठाया और अपनी शक्ति को 12 मिस्लों में एकत्रित कर लिया। कालान्तर में इन बारह मिस्लो में एक 'सुकरचकिया' मिस्ल का प्रमुख रणजीत सिंह बना। वह योग्य और साहसी व्यक्ति था। उसने अफगान शासक 'जमानशाह' की सहायता की उसके बदले में उसे लाहौर की सूबेदारी एवं 'राजा' की पदवी मिली। आगे चलकर उसने सिख राज्य की स्थापना की।

रणजीत सिंह की मृत्यु के बाद सिख राज्य अराजकता का केंद्र बन गया। उसके अयोग्य उत्तराधिकारी इस स्थिति पर नियंत्रण स्थापित नहीं कर पाये और 1849 में लार्ड डलहौजी ने युद्ध में परास्त कर इसे अंग्रेजी साम्राज्य में मिला लिया।

2.4.5 राज्य निर्माण प्रणाली : दिल्ली सल्तनत एवं मुगल साम्राज्य

राज्य निर्माण और राज्य के पतन की प्रक्रिया प्राचीन काल से चली आ रही है। मध्य काल भी इस राज्य निर्माण की प्रक्रिया से अछूता न रहा। यहीं से प्राचीन भारतीय परंपरा में इस्लामिक तत्वों का समावेश हुआ और सल्तनत काल का उत्कर्ष हुआ। मोहम्मद गौरी के आक्रमणों की सफलता का मुख्य कारण भारतीय शक्तियों के बीच का विभाजन था। गौरी को भारत में सफलता तो मिली पर राज्य निर्माण का सपना पूरा नहीं हो सका। इस सपने को साकार रूप उसके दास सेनापति कुतुबुद्दीन ऐबक ने पूरा किया। इल्तुतमिश ने इस सपने को आगे बढ़ाने का कार्य किया। सल्तनत को स्थायित्व प्रदान करने के लिए उसने सुल्तान पद को धारण किया। खिल्लत प्राप्त की। अपने नाम का फतवा पढ़वाया और अपने नाम के सिक्के जारी करवाये। इक्तादारी व्यवस्था का आरंभ किया। उसने राज्य निर्माण की प्रक्रिया को स्थायित्व प्रदान किया। उसके अयोग्य उत्तराधिकारियों ने इस व्यवस्था के स्थायित्व हेतु कोई भी प्रयास नहीं किया। बलबन योग्य और कूटनीतिज्ञ शासक था। उसने राज्य निर्माण के लिए 'राजत्व सिद्धांत का प्रतिपादन किया। जिसमें राजा के दैवीय सिद्धांत को मान्यता प्रदान कर सुल्तान की प्रतिष्ठा को चर्मोत्कर्ष पर पहुंचा दिया। एक वृद्ध जलालुद्दीन दास वंश के अंतिम शासक की हत्या कर सत्ता पर आसीन हुआ पर अपनी उदारता के कारण अपने भतीजे के षड्यंत्र का शिकार बना। और उसकी हत्या कर दी गई। अलाउद्दीन खिलजी एक विजेता और कुशल प्रबंधक के तौर पर भारतीय इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। उसने अपनी साम्राज्य विस्तार नीति, बाजार का नियंत्रण कर विशाल सेना रखने की नीति, अपने प्रतिद्वंद्वियों को समाप्त कर उसने राज्य निर्माण की प्रक्रिया को मजबूती प्रदान की। अलाउद्दीन का कोई भी उत्तराधिकारी योग्य नहीं था और गयासुद्दीन तुगलक ने सत्ता का हरण कर लिया। उसने राज्य निर्माण की प्रक्रिया में कोई ठोस कदम नहीं उठाये। इतिहासकार मुहम्मद बिन तुगलक को अपने पिता का हत्यारा मानता है। उसने अपनी अनुचित योजनाओं के कारण सल्तनत के सबसे विशाल साम्राज्य जो उसके शासन काल में था, खो दिया। उसके नागरिक सदैव उससे परेशान रहते थे और विद्रोह के लिए तत्पर रहते थे। उसकी मृत्यु पर बदायूंनी ने लिखा है– "सुल्तान को उसकी प्रजा और प्रजा को अपने सुल्तान से मुक्ति मिल गई।" फिरोज तुगलक ने आर्थिक व्यवस्था में सुधार कर

राज्य की अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ता प्रदान की किंतु वह धार्मिक रूप से कट्टर शासक था जिसने बहुसंख्य हिंदू प्रजा के प्रति कठोर नीति का अनुकरण किया। उसने प्रशासन में उलेमा वर्ग को अत्यधिक महत्व दिया जिससे भ्रष्ट और चापलूसों का प्रशासन में वर्चस्व कायम हो गया। इससे राज्य निर्माण की प्रक्रिया को धक्का लगा। इस दौरान केंद्रीय सत्ता की कमजोरी का लाभ उठाकर प्रांतीय राज्यों ने स्वतंत्र होना शुरू कर दिया।

खिज्र खां ने सैयद वंश की नींव रखी परंतु इस काल के शासक वर्ग प्रशासन की किसी भी इकाई को स्पष्ट नहीं कर पाये और इनका शीघ्र ही पतन हो गया। लोदी वंश की स्थापना के साथ राज्य निर्माण की प्रक्रिया को बहलोल लोदी ने जौनपुर राज्य को जीत कर मजबूती प्रदान की परंतु इसके अलावा कोई और ऐसा कार्य नहीं कर पाया। सिकंदर लोदी ने सुल्तानों को संतुष्ट करने की नीति अपनाई। उसने अपनी सैनिक प्रतिभा का परिचय दिया। बिहार को दिल्ली के अधीन किया। आगरा शहर की स्थापना का श्रेय इसी को जाता है। इब्राहिम लोदी ने अत्यधिक निरंकुशता की नीति अपने सरदारों के प्रति अपनाई जिसमें नाराज होकर एक सरदार दौलत खां लोदी ने बाबर को भारत आक्रमण का नियंत्रण दिया। बाबर ने 1526 में पानीपत प्रथम युद्ध में इब्राहिम लोदी को परास्त किया। इस युद्ध में वह मारा गया। राज्य निर्माण की प्रक्रिया का दौर जो 1206 में शुरू हुआ 1526 में समाप्त हो गया।

मुगल सल्तनत ने राज्य निर्माण की प्रक्रिया का भार अपने कंधे पर उठा लिया।

मुगल साम्राज्य के समय राज्य निर्माण की प्रणाली

दिल्ली सल्तनत की पतन की गीली मिट्टी पर मुगल सल्तनत का बीज बाबर के द्वारा द्वारा बोया गया। बाबर चंगेज खां एवं तैमूर लंग का वंशज था उसने सल्तनत कालीन राजनीति में धर्म के हस्तक्षेप को बंद कर दिया और 'बादशाह' की उपाधि को धारण किया जिसका अर्थ है– "ऐसा शक्तिशाली स्वामी या राजा जिसे कोई अपदस्थ नहीं कर सकता।" इस अल्प समय में उसने राज्य निर्माण की प्रक्रिया के लिए ठोस कदम उठाकर मजबूती प्रदान की। हुमायुं के लिए यह कथन सही साबित हुआ "जीवन भर ठोकर खाता रहा और ठोकर से ही उसका अंत हो गया।" अपने भाइयों से वैमनस्य एवं प्रशासनिक अस्थिरता के कारण वह राज्य निर्माण की प्रक्रिया में कोई भी सहयोग नहीं दे सका। एक अफगान नेता शेरशाह सूरी से पराजित होकर हिंदुस्तान छोड़ने को मजबूर हो गया।

शेरशाह की बुद्धिमता अकबर से भी अधिक थी। उसने अपनी प्रशासनिक कुशलता से राज्य निर्माण की प्रक्रिया को पुनः शुरू किया और राजनीतिक एवं आर्थिक परिवर्तन किये। वह अपने आने वाले शासकों के लिए श्रेष्ठ पथप्रदर्शक बन गया। अकबर एक राष्ट्रवादी शासक था जिसने राज्य निर्माण की प्रक्रिया के सभी पक्षों को मजबूती प्रदान की। साम्राज्य विस्तार की नीति का अनुसरण किया। इसके लिए मनसबदारी व्यवस्था को लागू किया। वह एक बुद्धिमान शासक था। वह जानता था हिंदु बहुल भारत में बिना उनका सहयोग लिए श्रेष्ठ शासन का निर्माण नहीं किया जा सकता, इसलिए उसने राजपूतों से वैवाहिक संबंध स्थापित किये और प्रशासन में उनका सहयोग लिया। जहांगीर और शाहजहां ने कुछ हद तक इस परंपरा का निर्वाहन किया।

औरंगजेब अपनी धार्मिक नीति एवं दक्षिण नीति के कारण कभी जनता का सहयोग प्राप्त नहीं कर सका। परवर्ती मुगल शासक अयोग्य, विलासी और निकम्मे साबित हुये और अंग्रेजों ने उनकी सत्ता को खत्म कर ब्रिटिश साम्राज्य की नींव रखी।

अपनी प्रगति जांचिए

11. दिल्ली सल्तनत की स्थापना किस सन् में हुई?
    (क) 1200 (ख) 1206
    (ग) 1191 (घ) 1192
12. मुगल सल्तनत की स्थापना किसने की?
    (क) अकबर (ख) हुमायूं
    (ग) बाबर (घ) शाहजहां
13. मराठा साम्राज्य की स्थापना किसने की?
    (क) शिवाजी (ख) शम्भा जी
    (ग) ताराबाई (घ) राजाराम
14. मैसूर राज्य की स्थापना किसने की?
    (क) हसन खां (ख) टीपू सुल्तान
    (ग) यल्दौज (घ) हैदर अली
15. 'कृष्ण देव राय' किस वंश से संबंधित था?
    (क) सुलुव वंश (ख) संगम वंश
    (ग) तुलुव वंश (घ) अरविंडु वंश

2.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (क)
2. (क)
3. (ख)
4. (ग)
5. (घ)
6. (घ)
7. (ख)
8. (क)
9. (ख)
10. (ख)

11. (ख)
12. (ग)
13. (क)
14. (घ)
15. (ग)

2.6 सारांश

मध्यकालीन इतिहास, इतिहास की दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण अध्याय है। मुस्लिम आक्रमणकारियों से पहले भारत में हिंदू राज्यों का अस्तित्व था जो छोटे–छोटे राज्यों में विभाजित थे और एक–दूसरे के प्रति वैमनस्य की भावना रखते थे जिसका लाभ बाहरी आक्रमणकारियों ने उठाया और भारत में 1206 से लेकर 1857 तक मुस्लिम साम्राज्य का बोलबाला था। उन्होंने भारत में नवीन शासन व्यवस्था की शुरुआत की। इस राज्य का केंद्रीय तथा प्रांतीय शासन अच्छा और मजबूत था। सल्तनतकालीन इक्ता व्यवस्था, विजयनगर कालीन अमरम व्यवस्था, मुगलकालीन जागीरदारी व्यवस्था एवं मनसबदारी व्यवस्था शासन के महत्वपूर्ण अंग थे जिनकी सहायता से मुस्लिम साम्राज्य को और अधिक सुदृढ़ता मिली। ग्राम प्रशासन भी महत्वपूर्ण था।

तुर्कों के आगमन पूर्व भारत एक क्षेत्रीय इकाई की तरह था। राजपूत अनेक जातियों में विभक्त थे। वे पारस्परिक ईर्ष्या एवं संघर्षों में रत थे। सामाजिक, सांस्कृतिक एकता के बाद भी उन जातियों में सामंजस्य का अभाव था। इसका लाभ मध्यकाल के मुस्लिम आक्रमणकारियों ने उठाया और उन्होंने यहां विशाल मुस्लिम साम्राज्य का निर्माण किया। उनकी शक्ति का सामना कुछ हद तक मेवाड़ एवं मारवाड़ के क्षेत्रीय राज्यों ने करने की कोशिश की किंतु वे सफल नहीं हो सके।

यही अराजकता की स्थिति अन्य क्षेत्रीय राज्यों की भी थी जिनमें विजयनगर एवं बहमनी साम्राज्य प्रमुख हैं। वे सदैव एक दूसरे से संघर्षरत रहते थे।

मुगल काल में सल्तनत को लंबे समय तक स्थायित्व मिला परंतु औरंगजेब की धर्मान्ध नीतियों के कारण मुगल सत्ता कमजोर होती गई और पतन की ओर अग्रसर हो गई। जिसका लाभ तत्कालीन क्षेत्रीय शक्तियों ने उठाया और अपनी स्वतंत्रता की स्थापना कर ली।

इन स्थितियों का सीधा प्रभाव क्षेत्रीय राज्यों की प्रशासकीय संरचना एवं उनके गठन पर पड़ा जो कालान्तर में धीरे–धीरे कमजोर होती गई और यूरोपियन्स ने इसका भरपूर लाभ उठाया।

तुर्कों की भारतीय राज्यों पर सफलता के साथ कुतुबुद्दीन ऐबक के द्वारा दिल्ली सल्तनत की नींव रखी गई। लगातार पांच वंशों [(1206–1526) गुलाम वंश, खिलजी वंश, तुगलक वंश, सैय्यद वंश, लोदी वंश] ने दिल्ली सल्तनत पर शासन किया।

इस वंश के अंतिम शासक इब्राहिम लोदी को परास्त कर बाबर ने मुगल वंश की आधारशिला रखी जिसे सुदृढ़ता उसके वंशजों– हुमायूं, अकबर, जहांगीर, शाहजहां, औरंगजेब ने दी। परवर्ती मुगल शासक अयोग्य साबित हुये और मुगल दरबार भ्रष्टता

एवं अराजकता का केंद्र बन गया। जिसका लाभ उठाकर प्रांतीय शक्तियों ने अपने को स्वतंत्र कर लिया। कालान्तर में अंग्रेजों ने भारत में अपना शासन स्थापित किया।

टिप्पणी

2.7 मुख्य शब्दावली

- **निरंकुश** : जो किसी का प्रतिबंध न माने, अनियंत्रित
- **दायित्व** : जिम्मेदारी
- **सरदेशमुखी** : एक प्रकार का कर (टैक्स)
- **आधिपत्य** : अधिकार
- **प्रतिरोध** : रुकावट, बाधा
- **जिल्ले अल्लाह** : ईश्वर का प्रतिबिंब
- **बार–ए–आजम** : सभा हॉल
- **वजीर** : प्रधानमंत्री
- **बरीद** : सूचना विभाग का प्रमुख
- **इक्ता** : धन के स्थान पर तनख्वाह के रूप में भूमि देना
- **हुलिया** : हाव–भाव, शक्ल

2.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. मनसबदारी प्रथा से क्या तात्पर्य है? स्पष्ट कीजिए।
2. ग्राम प्रशासन की व्याख्या कीजिए।
3. दिल्ली सल्तनत के प्रशासक वर्ग का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
4. क्षेत्रीय राज्यों के उद्‌भव की प्रक्रिया पर टिप्पणी लिखिए।
5. मुगल साम्राज्य के समय राज्य निर्माण की प्रणाली को समझाइए।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. सल्तनतकालीन प्रशासनिक व्यवस्था की विवेचना कीजिए।
2. मनसबदारी प्रथा क्या थी? इसके दोषों की व्याख्या करते हुए यह बताइए कि इसका मुगल साम्राज्य पर क्या प्रभाव पड़ा।
3. मुगल सल्तनत के सत्तावर्ग के गठन एवं विकास की प्रक्रिया पर निबंध लिखिए।
4. मुगल शासक वर्ग की भूमिका पर प्रकाश डालिए।
5. दिल्ली सल्तनत के क्रमबद्ध संकट एवं विघटन पर विस्तृत चर्चा कीजिए।
6. शाही व्यवस्था में अन्तर्निहित तनाव एवं संघर्ष की व्याख्या कीजिए।
7. मुगल साम्राज्य के पतन के कारणों की समीक्षा कीजिए।

2.9 सहायक पाठ्य सामग्री

1. चंद्र सतीश, मध्यकालीन भारत, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली–1990
2. चंद्र सतीश, मध्यकालीन भारत में इतिहास लेखन : धर्म और राज्य का स्वरूप ग्रंथ शिल्पी दिल्ली 1999
3. राधेशरण, इतिहास और इतिहास लेखन, मध्य प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी भोपाल 2003
4. वर्मा हरिचंद्र, मध्यकालीन भारत खण्ड–1 एवं 2 हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय 1993
5. श्रीवास्तव बी.के. इतिहास लेखन अवधारणा, विधाएं एवं साधन, साहित्य भवन पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स प्रा.लि. आगरा 2005
6. 'इतिहास लेखन धारणाएं तथा पद्धतियां' लक्ष्मीनारायण अग्रवाल आगरा
7. वरे– डॉ. एस.एल. इतिहास लेखन की अवधारणा कैलास पुस्तक सदन भोपाल
8. बुद्ध प्रकाश– इतिहास लेखन की अवधारणा हिंदी समिति प्रयाग
9. लाल के.एस. खिलजी वंश का इतिहास विश्व प्रकाशन दिल्ली
10. जैन डॉ. राजीव– भारत का इतिहास कैलास पुस्तक सदन भोपाल
11. वार्डर ए.के. भारतीय इतिहास लेखन की भूमिका हरियाणा साहित्य अकादमी चंडीगढ़
12. जैन संजीत– पूर्व एवं उत्तर मध्यकालीन भारत का आर्थिक एवं राजनीतिक इतिहास कैलाश पुस्तक सदन भोपाल

इकाई 3 कृषि अर्थव्यवस्था एवं राज्य

टिप्पणी

संरचना

3.0 परिचय

3.1 उद्देश्य

3.2 कृषि अर्थव्यवस्था एवं राज्य : भूमि पर अधिकार और उत्पादन से संबंध

- 3.2.1 सल्तनत काल में सिंचाई के कृत्रिम साधन
- 3.2.2 दिल्ली सुल्तानों की कृषि नीति
- 3.2.3 भूमि के प्रकार एवं भू–राजस्व व्यवस्था
- 3.2.4 उत्पादन पर राज्य का हिस्सा
- 3.2.5 कृषि उत्पादन संबंधी वर्ग एवं भूमि से संबंध
- 3.2.6 ग्राम समुदाय के वर्ग

3.3 संसाधनों के आधार, कृषि उत्पादन में उपयोग होने वाले संसाधन, करों का स्वरूप और कृषि संबंध

- 3.3.1 कृषि संसाधन
- 3.3.2 मुगल साम्राज्य की आय और उसके साधन
- 3.3.3 भूमि के प्रकार
- 3.3.4 कर निर्धारण पद्धति
- 3.3.5 भूमिकर संबंधी व्यवस्था एवं सुधार
- 3.3.6 सिंचाई के साधन

3.4 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

3.5 सारांश

3.6 मुख्य शब्दावली

3.7 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

3.8 सहायक पाठ्य सामग्री

3.0 परिचय

मध्यकालीन भारतीय अर्थव्यवस्था कृषि एवं व्यापार पर आधारित थी। कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिए दिल्ली सल्तनत के सुल्तानों ने विभिन्न प्रयास किये एवं सिंचाई व्यवस्था के समुचित प्रबंध किये। कृषि के साथ–साथ व्यापार के क्षेत्र में भी प्रगति हुई। आंतरिक व्यापार सड़क एवं जलमार्ग द्वारा होता था। विदेशी व्यापार भी जलमार्ग के द्वारा होता था। अरब एवं यूरोपीय व्यापारी व्यापार कार्य में संलग्न थे। सुल्तानों द्वारा भू–राजस्व की दरें समय–समय पर निर्धारित की जाती थीं।

मध्यकालीन भारतीय इतिहास की कृषि, अर्थव्यवस्था, भूमि संबंधों, कृषि उत्पादन में उपयोग में लाये जाने वाले संसाधनों, करों के निर्धारण, आंतरिक एवं विदेशी व्यापार, व्यापार की संरचना में भी परिवर्तन आए।

प्रस्तुत इकाई में मध्यकालीन अर्थव्यवस्था के विभिन्न पक्षों का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया गया है।

3.1 उद्देश्य

टिप्पणी

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- कृषि के क्षेत्र में आए प्रशासनिक एवं आर्थिक परिवर्तनों को जान पाएंगे;
- सल्तनत काल में कृषि के साधन क्या थे, इसकी जानकारी प्राप्त कर पाएंगे;
- भू–राजस्व के बारे में समझ पाएंगे;
- उत्पादन की प्रणालियों के बारे में जान पाएंगे।

3.2 कृषि अर्थव्यवस्था एवं राज्य : भूमि पर अधिकार और उत्पादन से संबंध

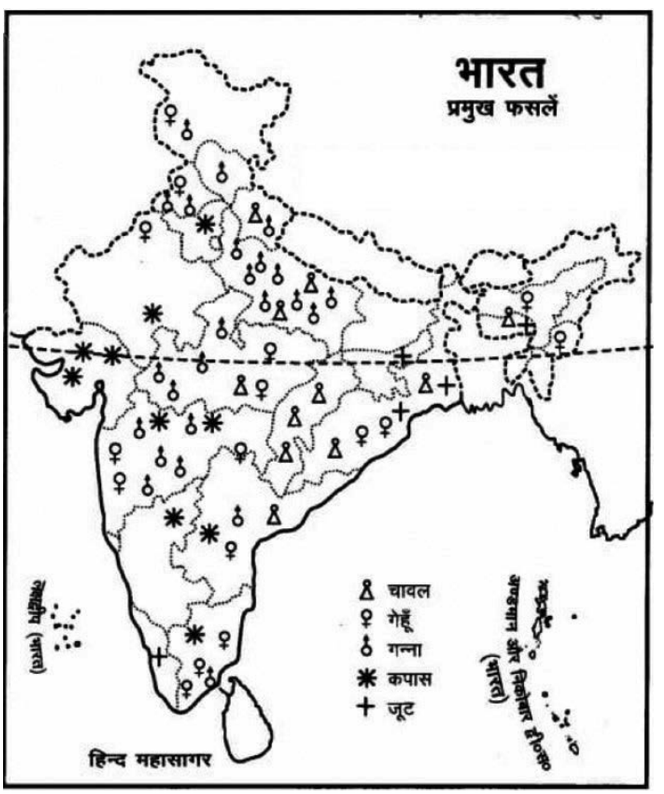

प्राचीन काल से भारतीय अर्थव्यवस्था का आधार कृषि ही रहा। मध्य काल में भी इसी कृषि परंपरा का निर्वहन होता रहा है। दिल्ली सल्तनत काल में दो संस्कृतियों के मिलन के कारण जनसंख्या में वृद्धि हुई और उसका दबाव कृषि पर भी पड़ा। दिल्ली के सुल्तानों ने कृषि नीति में सुधार करने का निरंतर प्रयास किया। इसके लिए सुल्तानों द्वारा कृत्रिम सिंचाई साधनों का उपयोग किया गया।

दिल्ली सल्तनत की स्थापना से लेकर अंत तक सिंचाई के कृत्रिम साधनों का विकास होता रहा। खिलजी एवं तुगलक शासकों के द्वारा सिंचाई के लिए कृत्रिम साधनों का विकास कर बड़े क्षेत्र को सिंचित बनाया गया और सिंचाई के लिए प्रकृति

पर निर्भरता को कम किया गया। अन्य उद्योग धंधों का विकास होने के बावजूद भारतीयों की कृषि पर निर्भरता कम नहीं हुई थी।

पारंपरिक लघु उद्योगों एवं कुटीर उद्योग में ज्यादा परिवर्तन नहीं हुआ था और वे उसी रूप में अर्थव्यवस्था के आधार बने रहे। सल्तनत काल की भूमि व्यवस्था में देशी एवं मुस्लिम विचारधारा का समावेश था।

टिप्पणी

इल्तुतमिश के द्वारा स्थापित इक्ता व्यवस्था के माध्यम से भू–राजस्व व्यवस्था को संचालित किया जाता था। इसमें स्थानीय स्तर पर पारंपरिक जमींदारों द्वारा सहयोग किया जाता रहा।

मुगल साम्राज्य ने लंबे समय तक एक श्रेष्ठ प्रशासनिक व्यवस्था को स्थापित किया जिसका असर तत्कालीन अर्थव्यवस्था पर भी दिखाई देता है। उन्होंने एक सुदृढ़ और केंद्रीकृत साम्राज्य की स्थापना की। बहुत सी परिस्थितियों एवं प्रक्रियाओं को संस्थाओं का रूप देकर नियमितता प्रदान की। मुगल काल में भी आय का प्रमुख स्रोत कृषि थी। भू–राजस्व व्यवस्था से बादशाह, जमींदार और जागीरदार संबद्ध होते थे। इसका बंटवारा यही तीनों मिलकर करते थे।

3.2.1 सल्तनत काल में सिंचाई के कृत्रिम साधन

सिंचाई के साधन कृषि व्यवस्था की रीढ़ होती है। बिना उस व्यवस्था के बेहतर उत्पादन की कल्पना नहीं की जा सकती है। यह विरासत सदियों से चली आ रही है। उसे दिल्ली के सुल्तानों ने भी अपनाया। प्राचीन काल से चले आ रहे सिंचाई के साधन– नदियां, कुएं, तालाब थे। इनका और अधिक विस्तार इस काल में किया गया।

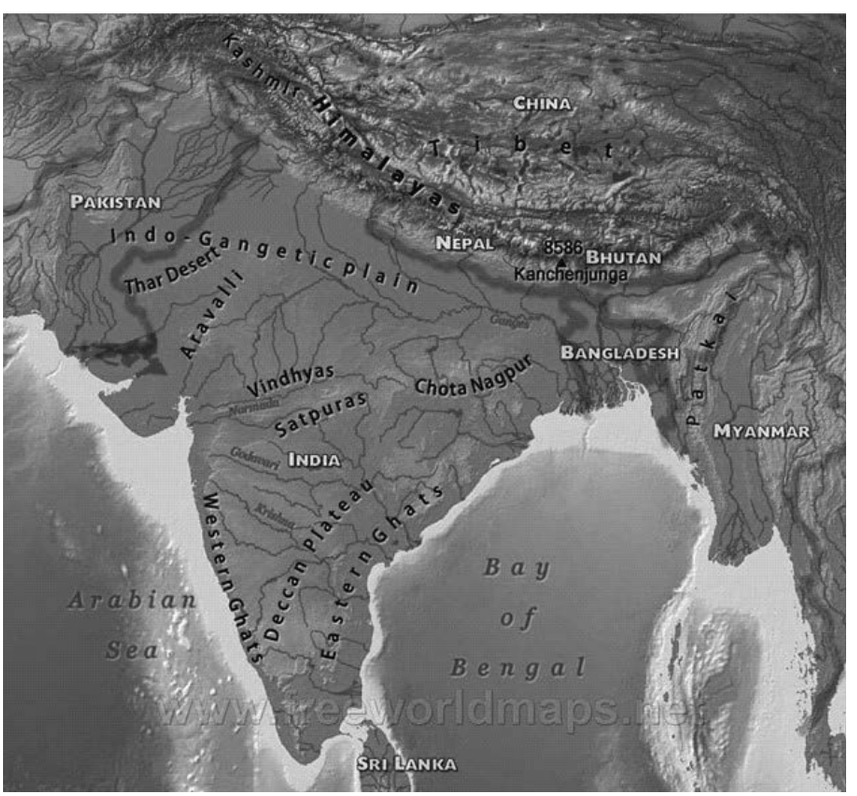

टिप्पणी

सल्तनत की स्थापना के साथ कृत्रिम साधनों का विस्तार होता रहा। खिलजी शासकों की साम्राज्य विस्तार की नीति से सल्तनत का क्षेत्र बंगाल एवं दक्षिण भारत तक पहुंच गया। इन क्षेत्रों में अनेक बांधों व तालाबों का निर्माण करवाया गया। 'मिनहाज ए सिराज' अपनी पुस्तक 'तबकाते नासिरी' में बांधों के निर्माण की जानकारी देता है। 'शेख जैन' की 'तबकाते बाबुरी' से ज्ञात होता है कि सियालकोट में कई कोलाब या तालाब बनाये गये।

सुल्तान इल्तुतमिश ने 'दिल्ली ईदगाह के पास और गजनी द्वार के बाहर एक झील का निर्माण करवाया। 'इब्नबतूता' के अनुसार गर्मी के दिनों में इस झील के किनारे सब्जी व खरबूजे जैसे मौसमी फल हुआ करते थे। इस झील में न केवल वर्षा का पानी एकत्र होता था; वरन जमुना से नहर द्वारा तथा सूरजकुंड से पानी लाया जाता था।

अहमद खां, खिलजी के पुत्र 'मसूद' ने भी एक झील का निर्माण कराया, जिससे वहां के किसानों को सुविधा मिली। इसका विवरण 1232 ई. के एक शिलालेख से प्राप्त होता है। अलाउद्दीन खिलजी ने सिंचाई के साधनों का विकास किया इसकी जानकारी 'बरनी' देता है।

तुगलक काल– सबसे अधिक सिंचाई के साधनों का विस्तार तुगलक काल में हुआ। आप्लावन नहरों के निर्माण में तेज प्रगति की गई। नदियों पर बांधों का निर्माण करके पानी को अवरुद्ध किया गया। इन बांधों का निर्माण राज्य और निजी स्रोतों, दोनों के द्वारा किया जाता था। 'गयासुद्दीन तुगलक को ऐसा पहला शासक होने का गौरव प्राप्त है जिसने नहरें खोदने को प्रोत्साहन दिया। बरनी ने लिखा है– उसके पास बड़ी–बड़ी नहरें खुदवाने, कृषि को सुगम बनाने व बेकार भूमि को उर्वर बनाने के अतिरिक्त कोई कार्य न था। यदि वह थोड़े समय और जीवित रहता तो गंगा–जमुना के समान न जाने कितनी नहरें कोसों तक खुदवा देता।

कुएं से सिंचाई की एक नई प्रणाली इस काल में विकसित हुई जिसे 'गियर' प्रणाली 'साकिया' कहते हैं। मुहम्मद बिन तुगलक द्वारा कुएं की खुदाई के लिए ऋण दिये गये। इस प्रकार की सिंचाई व्यवस्था पर 'मध्य एशिया' का प्रभाव था।

इस समय के प्राप्त शिलालेखों के अनुसार बिहार, गढ़मुक्तेश्वर (जिला– गाजियाबाद), मंगलौर (जिला– सहारनपुर), बारीखाट (जिला– नागौर, राजस्थान) के वलियों या मुक्ताओं ने जलाशयों का निर्माण करवाया।

फिरोज तुगलक की सिंचाई योजना– फिरोज तुगलक का सबसे उल्लेखनीय कार्य सिंचाई के लिए नहरों का निर्माण था। सल्तनत की प्रमुख नहरों का निर्माण केंद्रीय सरकार द्वारा होता था और छोटी नहरों का निर्माण प्रांतीय सरकार के द्वारा होता था। इन नहरों से 160 मील के क्षेत्र में सिंचाई होती थी। फरिश्ता लिखता है उसने 30 विशाल जलाशय उन प्रदेशों में बनवाये जहां सिंचाई के लिए नहरें उपलब्ध न थी। इसके लिए वह किसानों से कर भी लेता था। इन नहरों से पंजाब व दिल्ली तथा दोआब के क्षेत्रों में सिंचाई होती थी।

बरनी पांच प्रमुख नहरों की जानकारी देता है–

(1) यमुना नदी से हिसार तक उलूमखानी नहर जो लगभग 150 मील लंबी थी।

(2) सतलज से घग्घर तक रजबाह नहर जो लगभग 96 मील लंबी थी।

(3) सिरमौर से हांसी तक की नहर

(4) घग्घर से फिरोजाबाद तक

(5) यमुना से फिरोजाबाद तक की नहर

टिप्पणी

उसने इसमें 'हक–ए–शर्व/शुर्ष नाम का सिंचाई कर लगाया। इसके अलावा उसने 'गजना' अदक, रमला, नजद, नका खान, तथा 'होडा', 'हदूर' व 'हद' आदि नहरें बनवाई।

कृत्रिम साधनों द्वारा सिंचाई योजना में फिरोजशाह तुगलक अत्यधिक रुचि लेता था। इसके लिए उसने विशेष इंजीनियरों को नियुक्त किया था।

बरनी उसके बारे में लिखता है– उसने शुभ राजकाल में गंगा तथा जमुना नदी के समान लंबी नहरों (50–50, 60–60 कोस तक नहर) का निर्माण करवाया। नहरें जंगलों व रेगिस्तानों के बीच से (जहां पहले कोई हौज व कुआं न था) गुजरने लगीं।

सिंचाई के लिए नहरों के अलावा कूप, तालाब एवं झीलों का निर्माण कराया गया।

प्रांतीय राज्यों के द्वारा भी कृत्रिम सिंचाई व्यवस्था के प्रयास किये गये। गुजरात में कंकरिया झील का निर्माण सुल्तान कुतुबुद्दीन के शासन काल में हुआ।

शिहाब हाकिम अपनी 'मसनबी अरवत–उल–बुथका' में पानी निर्माण के महत्व का उल्लेख करता है और कहता है–

"उस महल में अनेक झरनों व जलाशयों की व्यवस्था की गई जिन्हें उद्यानों में पेड़ों को सींचने में प्रयोग किया जाता था।"

इस प्रकार दिल्ली के सुल्तानों द्वारा कृत्रिम सिंचाई साधनों का पर्याप्त विकास हुआ जिसमें सर्वाधिक योगदान का श्रेय फिरोजशाह तुगलक को जाता है।

3.2.2 दिल्ली सुल्तानों की कृषि नीति

दिल्ली सल्तनत की स्थापना के साथ शासकों ने प्रशासनिक व्यवस्था में सुदृढ़ता का प्रयास किया। किसी भी शासन व्यवस्था का मुख्य आधार संरचना उसकी अर्थव्यवस्था होती है। और मध्यकालीन अर्थव्यवस्था कृषि पर केंद्रित व्यवस्था थी। दिल्ली सुल्तानों ने अपनी कृषि नीति लागू की। यह नीति दो चरण में लागू की गई। प्रथम कृषि योग्य भूमि में वृद्धि की गई, द्वितीय बंजर भूमि को उर्वर तथा खेती योग्य बनाने का प्रयास किया गया।

इस काल में चार प्रकार की भूमि को उर्वर बनाया गया–

(1) वह भूमि जो कृषि योग्य है, किंतु बेकार पड़ी हुई है।

(2) 13वीं शताब्दी के ऊपरी दोआब क्षेत्र के घने जंगल वाले क्षेत्र।

(3) 14वीं शताब्दी तक जमुना–सतलज क्षेत्र के सूखे तथा सिंचाई के साधन विहीन प्रदेश को जो खेती के लिए अत्यंत उत्तम था।

(4) सिवालिक की पहाड़ियों या सिंध में भक्कर के निकटवर्ती क्षेत्र, जो कि दलदली निचला प्रदेश था।

टिप्पणी

सुल्तानों के द्वारा कृषि को उर्वर बनाने के लिए तकनीक का भी सहारा लिया गया। बंजर भूमि, दलदली भूमि को कृषि योग्य बनाया गया। इल्तुतमिश, जलालुद्दीन खिलजी ने इस ओर ध्यान दिया। मुहम्मद तुगलक ने एक कृषि विभाग का निर्माण किया जो 'दीवान–ए–कोही' के नाम से प्रसिद्ध था। इसका मुख्य उद्देश्य बंजर भूमि को खेती योग्य बनाना था। सर्वप्रथम साठ वर्ग मील का क्षेत्र चुना गया जिस पर लगभग दो वर्ष में सत्तर लाख खर्च किया गया तथा इस भूमि में अनेक प्रकार की फसलें बोई गईं। इब्नबतूता भारतीय कृषि की प्रशंसा करता है।

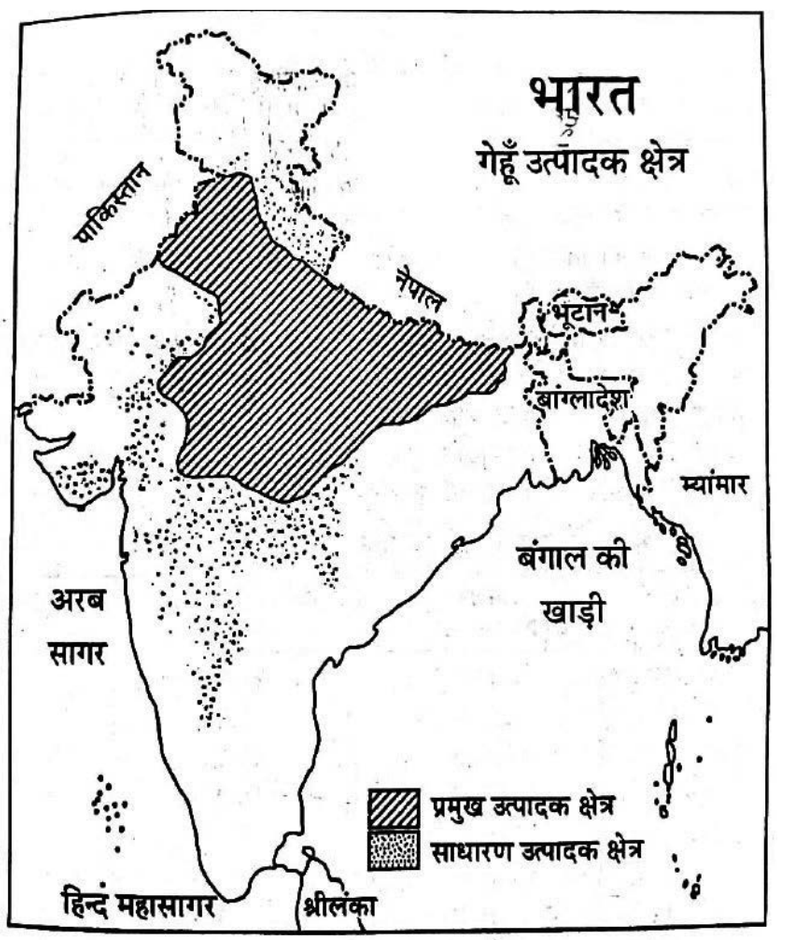

कृषि मुख्य रूप से वर्षा या नदियों द्वारा सिंचाई पर निर्भर थी। पहला सुल्तान गयासुद्दीन तुगलक था जिसने नहरों का निर्माण कराया था। फिरोज तुगलक ने बड़े पैमाने पर नहरों का निर्माण कराया अफीक के अनुसार– पूर्वी पंजाब में अब सिंचाई की सुविधा होने से दो फसलें होने लगी थीं। इसके अलावा 'कालपी' फिरोजशाह देहली के मध्य बंजर भूमि को कृषि योग्य बनाने के लिए चंबल नदी से भीखन नहर निकालकर फिरोजाबाद देहली शहर में जमुना नदी से जुड़वा दिया। सुल्तान ने 1200 बाग लगाए थे। सलोरा बांध के आस–पास 80 बगीचे एवं चित्तौड़ में 44 बगीचे बनवाए।

शेख 'फखरुद्दीन' को अजमेर में स्थित 'मौजा मंडल' अनुदान में प्राप्त हुआ। यहां की भूमि सूखी थी जिसे उसने उर्वर बनाया।

प्रस्तुत विवरण से दिल्ली सुल्तानों के कृषि व्यवस्था सुधार की नीति का पता चलता है। और यह स्पष्ट होता है कि सैनिक शासन की प्रमुखता के बाद भी शासक वर्ग सुधारों पर ध्यान देते थे।

टिप्पणी

3.2.3 भूमि के प्रकार एवं भू–राजस्व व्यवस्था

सल्तनत काल में प्रशासनिक व्यवस्था भारतीय एवं विदेशी पद्धति का सम्मिश्रण थी परंतु मुख्य रूप से यह शरियत एवं पर्शियन शैली पर आधारित थी। मध्यकालीन शासकों ने श्रेष्ठ सैनिक व्यवस्था को अपनाकर राज्य को संगठित करने का प्रयास किया किंतु भूराजस्व व भूमि व्यवस्था के संदर्भ में हिंदू पद्धतियों को अपनाया था। इसलिए विद्वानों की अवधारणा है कि उनके समय की प्रशासनिक व्यवस्था हिंदू व मुस्लिम पद्धति का मिश्रित रूप थी।

तुर्कों ने इस्लामी अर्थव्यवस्था सिद्धांत को बगदाद के मुख्य काजी 'अबु याकूब' की पुस्तक 'किताब–उल–खराज' से अपनाया था। सल्तनत काल में भू–राजस्व व्यवस्था को व्यवस्थित चलाने के लिए भूमि को चार भागों में बांटा।

1. इक्ता भूमि, 2. खालिसा भूमि, 3. मिल्क, वक्फ भूमि, 4. हिंदू सामंतों की भूमि

चारों प्रकार की भूमि के विकास की व्यवस्था करने में प्रशासन सदैव सजग रहा और उनकी व्यवस्था करने के लिए वह समय–समय पर नियम बनाते रहे।

(1) इक्ता भूमि– अमीरों को वेतन के स्थान पर दी जाने वाली भूमि को 'इक्ता' कहते थे। 'इक्ता' एक अरबी शब्द है जिसका अर्थ संपत्ति या भूमि के उस भाग से है, जिसे व्यक्ति राज्य से प्राप्त करता था। इक्तादार भूमि प्राप्त करने के बदले में प्रशासनिक सहयोग करते थे। भू–राजस्व वसूलना; शांति व सुरक्षा करना उनका दायित्व था। 'सियासतनामा' के लेखक के अनुसार वे अपनी सेना का खर्च इक्ता के भू–राजस्व से निकालते थे और समय आने पर सुल्तान की मदद करते थे।

'अल माबार्दी ने दो प्रकार की इक्ताओं का वर्णन किया है–

(i) इक्ता–ए–तमलीक

(ii) इक्ता–ए–इस्तिगाल

पहली श्रेणी के अंतर्गत तो अमीरों को वेतन के स्थान पर भूमि मिलती थी। दूसरी श्रेणी में अनुदान या वजीफे के रूप में प्राप्त होती थी।

मुहम्मद गौरी ने सर्वप्रथम इस व्यवस्था की शुरुआत कुतुबुद्दीन ऐबक को 'कोहराम' व 'उच्च उच्छ' मलिक नसरुद्दीन को भूमि को इक्ताओं के रूप में देकर किया। इल्तुतमिश ने इस व्यवस्था को विस्तृत रूप प्रदान किया और दिल्ली सल्तनत की स्थायी व्यवस्था बना लिया। उसने दो प्रकार की इक्ताएं अपने प्रशासन में लागू की।

(1) साधारण इक्ता– इन्हें सैनिकों को उनके वेतन के बदले दिया जाता था जिन्हें सुल्तान स्वयं भर्ती करता था। ये इक्ताएं खालिसा भूमि का भाग होती थी।

(2) इस प्रकार की इक्ताएं वे थी जिनका क्षेत्रफल एक प्रांत के समान होता था और जो खालिसा भूमि के बाहर हुआ करती थी।

टिप्पणी

बलबन के समय में उसने इस व्यवस्था में जांच पड़ताल करवाने पर पाया कि बहुत से इक्तादार इस व्यवस्था का दुरुपयोग कर रहे हैं और 'दीवान–ए–अर्ज' के मुंशियों को अपने पक्ष में मिलाकर घर पर बैठे रहते थे और अवसर का लाभ उठाकर जमीनें अपने नाम करवा लेते थे।

(1) वे इक्तादार जो वृद्ध हो चुके थे उनका 40 से 50 'तन्के' का वजीफा तय कर दिया।

(2) जो जवान थे उनका योग्यता के आधार पर वेतन निर्धारित कर दिया।

(3) वे स्त्री व बच्चे जो इक्तादारों की मृत्यु के बाद निराश्रित थे इन सभी की भूमि को जब्त करके उनकी आवश्यकता व परिस्थिति के अनुसार वेतन दिया जाने लगा।

सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी ने अपनी कार्य प्रणाली में परिवर्तन किया तथा दिल्ली व उसके समीपवर्ती क्षेत्र के इक्तादारों की भूमि 'खालिसा' में मिला ली तथा दूरस्थ क्षेत्र की भूमि इक्तादारों के पास ही रहने दिया तथा कर वसूला। सैनिकों को नगद वेतन दिया।

गयासुद्दीन तुगलक ने 'दीवान–ए–वजारत' विभाग को आदेश दे दिया कि वे मुक्तों की आय में 1/10 या 1/12 तक की वृद्धि करे तथा मुक्ति इक्ता से प्राप्त अपनी आय के उस भाग को भी प्रशासन को सौंपेगा जो कि सैनिकों के लिए निश्चित की गई थी। फिरोज तुगलक के समय इसे वंशानुगत कर दिया गया।

सैय्यद काल में इक्तादारों ने सैनिक दायित्व भी पूरे किए। इस समय 'इक्ता' के स्थान पर 'सरकार' शब्द का प्रयोग होने लगा। लोदी काल में भी इक्ता प्रणाली का स्वरूप पूर्ववत् ही बना रहा।

(2) खालिसा भूमि– खालिसा भूमि प्रत्यक्ष रूप से राजस्व विभाग के अन्तर्गत हुआ करती थी। इस प्रकार की भूमि से प्राप्त धन सेना के वेतन, कारखानों को चलाने में प्रयोग किया जाता था। इस प्रकार की भूमि दिल्ली के निकटवर्ती प्रदेश व दोआब में हुआ करती थी। अलाउद्दीन खिलजी को खालिसा भूमि में वृद्धि का श्रेय जाता है। उसने आदेश दिया कि वे गांव जो कि लोगों के पास 'मिल्क' या 'वक्फ' है खालिसा में सम्मिलित की जाये। खालिसा भूमि का क्षेत्र निश्चित नहीं था। डॉ. रामप्रसाद त्रिपाठी के अनुसार– "इस प्रकार की भूमि में केंद्रीय प्रशासन भू–राजस्व के विभिन्न मान निर्धारित करता था।"

बलबन ने भी खालिसा भूमि में वृद्धि का प्रयास किया उन इक्तादारों में या तो अनेक मर गए थे या वृद्ध हो गये अथवा वे इक्ताएं जो मुस्लिम वंशजों या विधवाओं या दासों के पास थी। बलबन ने ऐसी इक्ताओं को खालिसा में शामिल करने का प्रयास किया। बरनी के अनुसार– "सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी ने आदेश दिया कि खालिसा में आने वाले गांव में से भू–राजस्व अनाज के रूप में वसूल किया जाये।" मिन्हाज–उस सिराज के अनुसार भू राजस्व एकत्र करने वाले अधिकारियों को 'शहाना' अमीर या मलिक कहा जाता था।"

(3) अनुदान में दी गई भूमि (मिल्क, इनाम, वक्फ)– सल्तनत काल में भिन्न–भिन्न प्रकार से अनुदान या इनाम में दी गई भूमि कर मुक्त होती थी और

टिप्पणी

यह सुल्तान के अधिकार से मुक्त होती थी। ऐसी भूमि को 'मिल्क' (राजा द्वारा प्रदत्त) 'वक्फ' (धर्म की सेवा के आधार पर प्राप्त भूमि) 'इनाम' (पेंशन) कहते थे।

अलाउद्दीन खिलजी ने इन सभी भूमि को छीनकर खालिसा भूमि में शामिल कर लिया। तुगलक काल में अनुदान के रूप में भूमि देना जारी रहा। 'इरफान हबीब का मानना है कि अनुदान भूमियों का आर्थिक महत्व सीमित था, क्योंकि इनका प्रसार क्षेत्र व्यापक नहीं था। इस काल के 'मदद–ए–माश' प्रपत्र अधिक उपलब्ध नहीं हैं। अनुदान में दी गई भूमियों से कर नहीं लिया जाता था।

मुगलकाल में इन अनुदान भूमियों को 'मदद–ए–माश' एवं मिल्का अथवा 'सदूरगल' आदि नाम से जाना जाता था।

(4) हिंदू सामंतों की भूमि– हिंदू सामंतों को 'राणा' 'राय' या ठाकुर के नाम से जाना जाता था। 'राय' मुख्य रूप से भू–राजस्व वसूल करते थे। ये प्रशासन और किसानों के बीच मध्यस्थ का कार्य करते थे। प्रत्येक सौ गांव में हिंदुओं का मुख्य सरदार एक चौधरी तथा कर वसूल करने वाला 'मुतसर्रिफ' नामक अधिकारी होता था। 'खत् मुकद्दम, राणा, राय, रावत, चौधरी इनकी नियुक्ति प्रशासन द्वारा होती थी। धीरे–धीरे इनको जमींदार वर्ग में शामिल किया जाने लगा।

भू–राजस्व व्यवस्था– प्रत्येक काल में भू–राजस्व राज्य की आय का प्रमुख साधन रहा है। इसी कारणवश प्रत्येक शासक ने सामान्यतः अपनी भू–राजस्व नीति की ओर ध्यान दिया।

(i) बलबनकालीन भू राजस्व नीति– दिल्ली सल्तनत की स्थापना के कुछ समय पश्चात तक पूर्व में चली आ रही भू–राजस्व प्रणाली यथावत चलती रही। कालान्तर में सुल्तानों ने इस व्यवस्था में परिवर्तन किया। बलबन ने 'खिराज' वसूलने का मध्यम मार्ग अपनाया। उसका मानना था कि कर इस प्रकार वसूला जाये कि कृषक उसे चुकाने में दरिद्र न हो, और न ही इतनी ढील दी जाये कि वह विरोधी हो जाए।

(ii) खिलजीकालीन भू–राजस्व नीति– अलाउद्दीन खिलजी की भू–राजस्व नीति लोक कल्याण की भावना की बजाए राजनीतिक या सैनिक सुरक्षा की भावना को लिए हुए थी। उसने इनाम दी गई समस्त भूमि को खालिसा भूमि में मिला लिया तथा कृषकों से भू–राजस्व के अलावा कोई भी कर न वसूलने का आदेश दिया। कृषकों की विभिन्न श्रेणियों से 3 कर अर्थात् 'खिराज–ए–जजिया', चराई तथा घरी' (गृहकर) वसूल करने का आदेश दिया गया। भू राजस्व की दर कुल उत्पादन का 1/2 भाग अर्थात् 50% निर्धारित की। भू राजस्व नगद व अनाज दोनों रूप में लिया जाता था।

(iii) तुगलक कालीन भू राजस्व व्यवस्था– गयासुद्दीन तुगलक ने भू–राजस्व अंकन की पद्धति को समाप्त कर बटाई प्रणाली लागू की। उसका मुख्य उद्देश्य ग्रामीण समुदाय के हितों की रक्षा करना था। कृषि एवं कृषक दोनों को आर्थिक दबाव से मुक्त रखना उसका मुख्य उद्देश्य था। मुहम्मद तुगलक ने भू–राजस्व नीतियों को दो भागों में बांटा– (1) प्रांतों में लागू की गई भू–राजस्व नीति

(2) दोआब में लागू की गई भू–राजस्व नीति। बरनी के अनुसार 'सानेधर' (तकाबी) ऋण किसानों को दिया जाता था।

टिप्पणी

फिरोज तुगलक ने प्राचीन प्रथा जिसके अंतर्गत 'मुक्ते' सुल्तान के लिए बहुमूल्य उपहार लाते थे, में परिवर्तन करके यह आदेश दिया कि उनके द्वारा लाए गए उपहारों का मूल्यांकन करके उतनी रकम भू–राजस्व में घटा दी जाये। जिससे किसानों के शोषण को रोका जा सके।

लोदी कालीन भू राजस्व नीति– सैय्यद वंश के पतन के पश्चात बहलोल लोदी ने 'इक्ता प्रणाली' को कायम रखा। इब्राहिम लोदी ने नकद रूप में भू–राजस्व न लेकर अनाज के रूप में वसूल करना प्रारंभ किया।

इस प्रकार सल्तनतकालीन शासकों ने अपनी भू–राजस्व नीतियों से आर्थिक स्थिति में सुधार किया और दिल्ली सल्तनत को राजनीतिक एवं आर्थिक स्थिरता प्रदान की।

3.2.4 उत्पादन पर राज्य का हिस्सा

सल्तनत काल में राज्य कृषकों से भूमि कर के रूप में कितना भाग वसूल करता था इसकी कोई निश्चित जानकारी प्राप्त नहीं होती है। साधारणतः संपूर्ण सल्तनत युग में किसानों को पैदावार का एक तिहाई से लेकर आधा भाग तक राज्य को देना पड़ता था। आरंभ में यह एक–तिहाई ही रहा परंतु अलाउद्दीन के समय में इसे आधा कर दिया गया। परंतु अलाउद्दीन के उत्तराधिकारी शासक इस आधे भाग को वसूल नहीं कर सके और बाद के समय में लगान पैदावार का 1/3 भाग ही रहा।

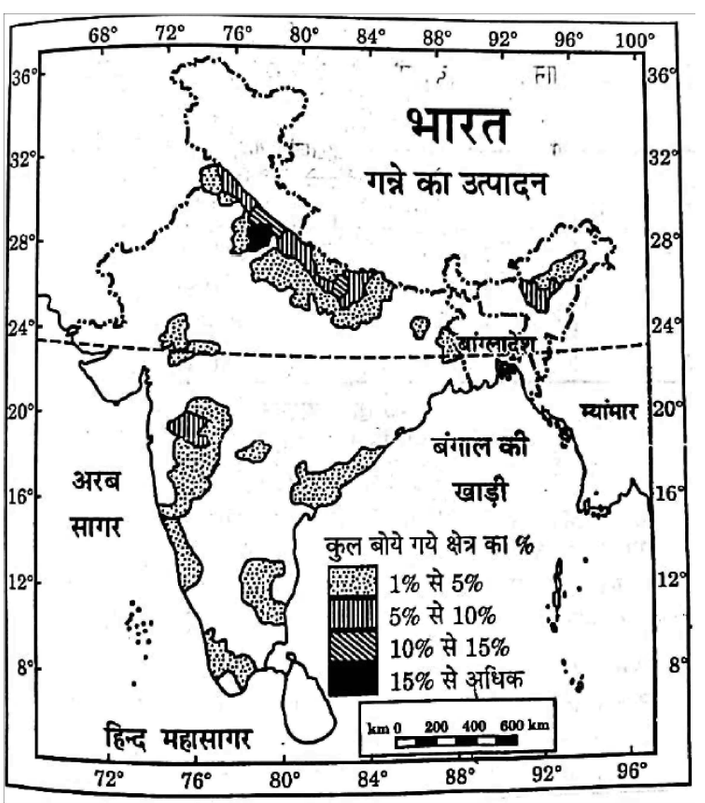

टिप्पणी

मुहम्मद तुगलक ने दोआब में कर वृद्धि करने का प्रयत्न किया परंतु वह असफल रहा। साधारणतया राज्य लगान को सिक्कों के रूप में वसूल करता था परंतु अलाउद्दीन ने अपनी बाजार व्यवस्था के कारण दिल्ली के निकटवर्ती क्षेत्रों और दोआब में लगान गल्ले के रूप में वसूल किया। अलाउद्दीन और मुहम्मद तुगलक के अतिरिक्त किसी भी सुल्तान ने भूमि की पैमाइश करके लगान लेने की पद्धति नहीं रखी बल्कि पैदावार का अनुमान करके ही लगान निश्चित किया जाता था।

अलाउद्दीन ने अपने समय में दान में दी गई समस्त भूमि को खालिसा में मिला लिया। उसने समसत हिंदु जमींदारों से लगान संबंधी अधिकारों को भी छीन लिया। गयासुद्दीन तुगलक ने किसानों की भलाई के लिए यह निश्चित किया था कि किसी भी इक्ता के लगान में एक वर्ष के अंतर्गत 1/11 से 1/10 भाग से अधिक वृद्धि न हो। मुहम्मद तुगलक ने संपूर्ण राज्य की आय और व्यय का लेखा तैयार करवाया। कृषि विभाग खोला और दीवान–ए–कोही अधिकारी की नियुक्ति की।

फिरोज तुगलक ने संपूर्ण राज्य के लगान का अनुमान लगाकर उसे अपने संपूर्ण काल के लिए निश्चित कर दिया। किसानों को तकाबी कर्ज से मुक्त कर दिया। मोरलैण्ड के अनुसार "मुस्लिम युग में वह प्रथम घटना थी, जिसके द्वारा सल्तनत की आय जानने का प्रयास किया गया।"

लोदी सुल्तानों ने अफगान सरदारों को बड़ी–बड़ी जागीरें प्रदान की थी जिससे खालिसा भूमि का क्षेत्र कम हो गया और सिकंदर लोदी के द्वारा भूमि की पैमाइश करके लगान को निश्चित करने के प्रयत्न असफल हुए।

सामान्यतः राजस्व नगद वसूल किया जाता था परंतु अलाउद्दीन खिलजी ने इसे खाद्यान्न के रूप में वसूल किया। 'इंसा–ए–महरु' में इस बात का प्रमाण मिलता है कि फिरोज तुगलक ने राजस्व अनाज के रूप में और वन क्षेत्रों के रूप में लिया। उसने सिंचाई के लिए बहुतायत से नहरों का निर्माण किया और 1200 के लगभग बगीचे लगवाये इससे 18,000 टका वार्षिक आमदनी में वृद्धि हुई।

इस प्रकार सुल्तानों द्वारा कृषि के क्षेत्र में किये गये सुधारों से उत्पादन में वृद्धि हुई और राज्य की आमदनी के स्रोत भी बढ़े। राजस्व व्यवस्था नियमित हुई। अर्थव्यवस्था का विकास हुआ।

3.2.5 कृषि उत्पादन संबंधी वर्ग एवं भूमि से संबंध

जिस प्रकार भारतीय अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार कृषि है, उसी प्रकार दिल्ली सल्तनत की जीविका का प्रमुख आधार स्तंभ भी कृषि थी। और कृषि जिस आधार स्तंभ पर खड़ी थी उसमें कृषक वर्ग, खत मुकद्दम, चौधरी वर्ग, जमींदार वर्ग का महत्वपूर्ण स्थान था। यहां हम इन्हीं वर्गों का अध्ययन करेंगे।

कृषक वर्ग– कृषि की कल्पना बिना 'किसान' के नहीं हो सकती है। कृषक का सर्वप्रमुख संबंध कृषि से होता है। सल्तनत काल में भी कृषक अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण योगदान देते थे। इस काल में कृषकों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया– (i) वे किसान जिनके खेत में अन्य मजदूर कार्य करते थे (ii) वे किसान जिनके परिवार के सदस्य उनके साथ कार्य करते थे। (iii) अत्यंत निर्धन किसान जिनके खेत इतने छोटे

टिप्पणी

होते थे कि वे स्वयं ही उस पर खेती करके कठिनाई से जीवन–निर्वाह कर पाते थे। किसानों को अनिवार्य रूप से खेती का कुछ भाग जमींदार या राज्य के प्रतिनिधियों को देना होता था। उसके लिए यह भी अनिवार्य था कि उसके अधिकार में कुछ भूमि हो तथा उस पर वह अन्य मजदूरों या परिवार के सदस्यों की सहायता से खेती करता हो। कृषक को अपना मूल गांव छोड़ने का अधिकार न था। वे लोग हर प्रकार के बीज, हल, बैल तथा अन्य सामग्रियां अपनी आवश्यकतानुसार रख सकते थे तथा भू–राजस्व का भुगतान करने के लिए उन्हें अपनी उपज बेचने का भी अधिकार था।

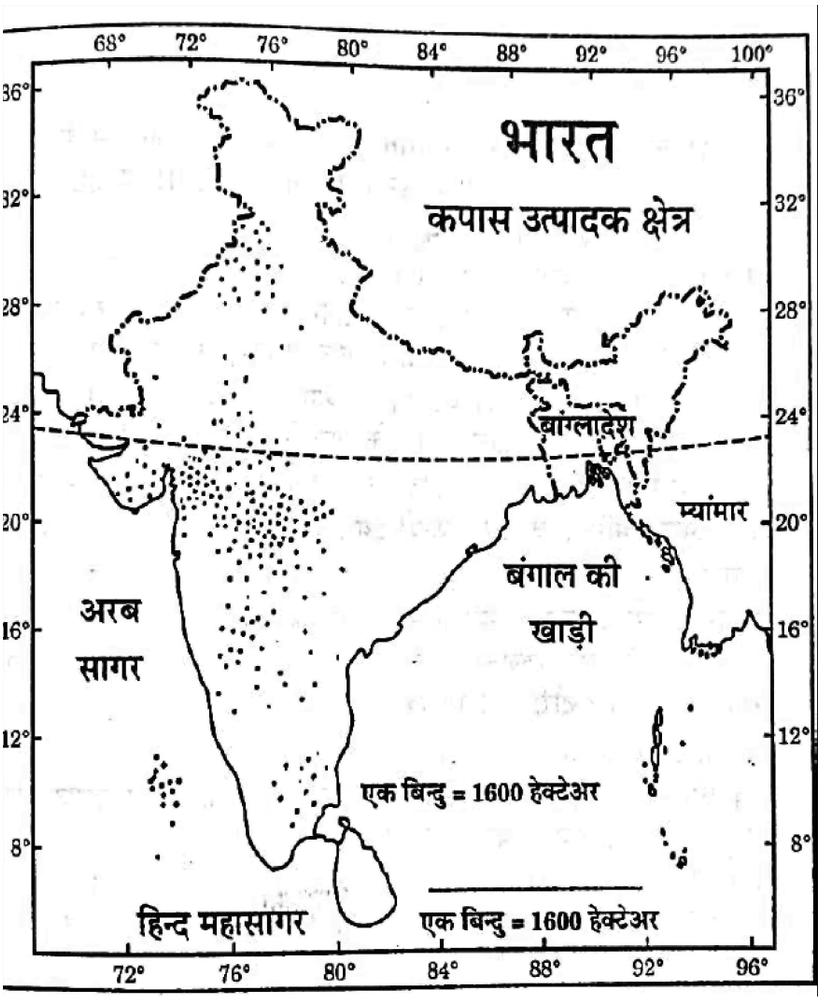

(ii) खत् मुकद्दम तथा चौधरी– सल्तनत काल में एक बड़ा बहुमत गांवों में रहता था। जिसका आधार अभी भी पारंपरिक था। उच्च श्रेणी के किसानों को खत, मुकद्दम, चौधरी कहते थे। इनका जीवन स्तर उच्च श्रेणी का था। उन्होंने अपने से ऊंचे सरदारों के तौर तरीकों की नकल की जैसे– घुड़सवारी करना, अच्छे कपड़े पहनना और पान खाना। फिरोज शाह तुगलक के शासन में बरनी इतिहासकार इनकी खुशहाली का विवरण देता है। प्रत्येक व्यक्ति के पास सोने और चांदी की भरमार थी और असंख्य सामान थे तथा किसानों की कोई भी औरत बिना गहनों के नहीं थी। प्रत्येक किसान के घर में साफ चादरें, बेहतरीन चारपाई और दूसरे सामान थे।

टिप्पणी

ये उच्च श्रेणी के कृषक थे तथा जजिया, खिराज, गृहकर व चराई कर का भुगतान करने से मुक्त थे। उन्हें इतना अधिकार था कि वे कृषकों पर अपने कर लगायें और वसूल करें। अलाउद्दीन खिलजी ने उनके समस्त अधिकारों को छीन लिया। उसने उन्हें अपने खेतों पर पूरा भू–राजस्व, गृह कर व चराई कर देने के लिए बाध्य कर दिया।

बरनी ने लिखा है "अलाउद्दीन का उद्देश्य था कि वे घोड़े पर न बैठ सकें, शस्त्र न रख सकें, अच्छे कपड़े न पहन सकें और किसी प्रकार का आनंद न उठा सकें।" उसकी इस नीति से उनका जीवन तकलीफ से भर गया। बरनी फिर कहता है– विवश होकर खत्, मुकद्दम, चौधरी की स्त्रियां मुसलमनों के घरों में काम करने लगीं। संपूर्ण राज्य में हिंदू दुःख और दरिद्रता में डूब गये।

खत्, मुकद्दम, चौधरियों की स्थिति भले ही अलाउद्दीन के शासन में दयनीय हो गई परंतु बाद के सुल्तानों ने उनके प्रति सहिष्णुता की नीति अपनाई और उनके विशेषाधिकारों को लौटा दिया। जिससे उनकी स्थिति में पुनः सुधार आ गया।

(iii) राणा, राय, ठाकुर– सल्तनत काल में राजपूतों का अस्तित्व पंजाब, दोआब, बिहार, गुजरात के क्षेत्रों में कायम रहा। उन्हें राम, राणा, रावत आदि नाम से जाना जाता है। इनकी अपनी सशस्त्र सेना होती थी और ये प्रायः देहातों में अपने किलों या गढ़ियों में रहते थे। वे ग्राम की राजनीतिक, सामाजिक, एवं आर्थिक जीवन में महत्वपूर्ण स्थान रखते थे। सल्तनत काल में इनके और तुर्क सुल्तानों के बीच संपर्क में बढ़ोत्तरी हुई।

'राय' में एक वर्ग 'रावत' था जो घुड़सवारों के नेता थे। इस समय से कृषकों के दो स्वामी थे : मुक्ता या गवर्नर तथा दूसरे राय जो मुख्य रूप से भू–राजस्व वसूल करते थे। अलाउद्दीन के शासन काल में गाजी मलिक दीपालपुर का मुक्ति था और रामलाल भट्ठी 'आबूहर' एक राय था। इन्हें किसानों तथा प्रशासन के बीच मध्यस्थ के रूप में नियुक्त करके समाज में शक्तिशाली तथा सम्मानजनक स्थान प्रदान किया गया तथा दूसरी ओर ऐसा करके प्रशासन को भू–राजस्व वसूलने में काफी सहायता मिलने लगी।

प्रत्येक सौ गांव में हिंदुओं का मुख्य सरदार, एक चौधरी तथा वसूल करने वाला मुत्सर्रिफ नामक अधिकारी होता था। इस समय 'परगना' शब्द का प्रयोग प्रारंभ हुआ। 1000 गांवों की इकाई को परगना कहा जाने लगा और उन परगनों से लगान वसूल करने वाले अधिकारी को चौधरी कहा जाता था। इनकी नियुक्ति प्रशासन के द्वारा होती थी। धीरे–धीरे प्रशासन में नियुक्त वर्ग 'जमींदार वर्ग' में शामिल किया जाने लगा तथा ये लोग अत्यंत शक्तिशाली वर्ग के रूप में सामने आये।

(iv) जमींदार वर्ग– 14वीं सदी के आरंभ तक हमें जमींदारों का अधिकाधिक उल्लेख मिलने लगता है। यह शब्द भारत से बाहर कहीं भी प्रयुक्त नहीं होता था। भारत में इसका प्रयोग वंशानुगत बिचौलियों के अर्थ में होने लगा। इस शब्द का सबसे का प्रयोग खूतो, मुकद्दमो और चौधरियों एवं यहां तक कि उन भूतपूर्व राजाओं के लिए भी होने लगा जो एक निश्चित राशि के बजाए भू–राजस्व के आधार पर तय राशि का भुगतान करने के लिए बाध्य थे। मुगलों के शासन में भूमि के सभी वंशानुगत स्वामियों अथवा भू–राजस्व में वंशानुगत हिस्सा पाने वाले

को जमींदार कहा जाने लगा। यहां तक कि राजाओं अथवा सरदारों को भी इस श्रेणी में शामिल कर लिया गया।

टिप्पणी

इस प्रकार विशाल साम्राज्य को आर्थिक सुदृढ़ता प्रदान करने में कृषि उत्पादन संबंधी वर्ग का महत्वपूर्ण योगदान रहा।

(v) भूमि से संबंध– भूमि से मनुष्य का संबंध तब से है जबसे इस सृष्टि का निर्माण हुआ है। इतिहास में मानव गतिविधियां अधिकतर उन भूमि क्षेत्रों में हुई हैं जहां कृषि निवास और विभिन्न प्राकृतिक संसाधन होते हैं। अनेक संस्कृतियों का उत्थान और पतन इसी भूमि पर हुआ। भूमि सदैव नवनिर्माण करती रहती है।

प्राचीन काल से ही विभिन्न विचारकों ने भूमि के संबंध में अपने विचार व्यक्त किये हैं। मेधातिथी के अनुसार 'शासक ही भूमि का स्वामी होता है। अर्थशास्त्र में भी शासक को भूमि का वास्तविक स्वामी माना गया है।

कहीं–कहीं व्यक्तिगत भूमि के संबंध में भी साक्ष्य उपलब्ध होते हैं। अधिक समय तक एक ही क्षेत्र में रहने वाले लोगों द्वारा कृषि कार्य करने के कारण भूमि पर उनका स्वामित्व हो जाता था। चूंकि ये वर्ग प्रशासन में पूर्ण सहयोग प्रदान करता था अतः शासक वर्ग भी उनके भूमि संबंधी अधिकारों को सुरक्षित रखते थे।

3.2.6 ग्राम समुदाय के वर्ग

ग्राम समुदाय को पांच भागों में वर्गीकृत किया गया था–

(i) ताल्लुका ग्राम– ये ग्रामों का समूह थे जो जमींदारों के लिए काम करने वाले व्यक्ति को मालगुजारी प्रदान करते थे। जमींदार उन ग्रामों के सर्वेसर्वा होते थे।

(ii) रैती ग्राम– ये वे ग्राम थे जो जमींदारों के अधिकार क्षेत्र के बाहर थे जो पेशकश का भुगतान करते थे या जिनके पास मुक्त भूमि थी।

(iii) असली ग्राम– पारंपरिक रूप से बसे हुए ग्रामों को असली ग्राम कहा जाता था।

(iv) दाखिली ग्राम– नये स्तर पर बसाए हुए ग्रामों को दाखिली ग्राम कहा जाता था।

(v) एक्मा ग्राम– मदद–ए–माश माफी और वक्फ के रूप में राज्य की ओर से जिन ग्रामों को मुक्त अनुदान प्रदान किया जाता था 'एक्मा' ग्राम कहलाते थे।

अपनी प्रगति जांचिए

1. 'इक्ता' किस भाषा का शब्द है–

   (क) हिंदी (ख) अंग्रेजी

   (ग) फारसी (घ) अरबी

2. दिल्ली सल्तनत में सर्वाधिक नहरें किसने बनवाई?

   (क) फिरोज तुगलक (ख) मुहम्मद तुगलक

   (ग) गयासुद्दीन तुगलक (घ) अलाउद्दीन खिलजी

टिप्पणी

3. सल्तनत काल में भूमि के कितने प्रकार थे?

(क) 3 (ख) 4

(ग) 5 (घ) 2

4. 'दीवान–ए–कोही' विभाग की स्थापना किसने की थी?

(क) मुहम्मद बिन तुगलक (ख) फिरोज तुगलक

(ग) अलाउद्दीन खिलजी (घ) बलबन

5. 'दीवान–ए–कोही' विभाग संबंधित था?

(क) सिंचाई (ख) भू–राजस्व

(ग) कृषि (घ) सेना

3.3 संसाधनों के आधार, कृषि उत्पादन में उपयोग होने वाले संसाधन, करों का स्वरूप और कृषि संबंध

दिल्ली सल्तनत के पतन के पश्चात मुगल सल्तनत की आधारशिला रखी गई। उन्होंने आर्थिक स्थितियों में परिवर्तन नहीं किया बल्कि केंद्रीकृत राज्य की स्थापना कर उसे सुदृढ़ता प्रदान की। इसका प्रभाव समाज के समस्त पहलुओं पर पड़ा और यह तत्कालीन अर्थव्यवस्था पर भी देखने को मिलता है।

कृषि व्यवस्था मुगल काल की आय का महत्वपूर्ण स्रोत था और इस आय के स्रोतों पर राज्य के सभी वर्गों का अधिकार होता था। शासकों के द्वारा कृषि नीति के निर्धारण द्वारा, कर एवं करों के निर्धारण द्वारा, भूमि के आकलन द्वारा, सिंचाई साधनों के विकास के द्वारा इसे और भी उन्नत बनाने का प्रयास किया गया।

कृषि संसाधनों में 'भूमि' संसाधन सबसे महत्वपूर्ण था। "चलित पूंजी में हल, बैल, कृषि संबंधी उपकरणों का महत्व था। एक और प्रमुख संसाधन था– कृषक रूप में मानव संसाधन, उसका परिवार और स्वयं की मेहनत करने की क्षमता भी उन्नत कृषि के लिए प्रभावशील तत्व होता है" मेहनत की क्षमता के साथ कृषि की उन्नति प्रकृति की निर्भरता पर भी तय होती थी।

इन्हीं सभी विशेषताओं के साथ मुगल शासकों ने कृषि के क्षेत्र में विस्तार कर आय के साधनों में वृद्धि की।

3.3.1 कृषि संसाधन

सल्तनत काल की भांति मुगल काल में भी अधिकांश जनता कृषि पर निर्भर रहती थी। समकालीन लेखकों एवं यूरोपियन भ्रमणकर्ताओं ने इसका विस्तृत वर्णन किया है। कृषि संसाधनों का कृषि के विकास में उतना ही महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

(i) भूमि– भारत में कृषि योग्य भूमि की उपलब्धता हमेशा से रही है, सल्तनत शासकों ने इसमें और अधिक विस्तार किया। बर्नियर, पीटर मुंडी, पेलामर्ट, अबुल फजल ने यहां की कृषि भूमि के संबंध में अपने यात्रा वृतांत में वर्णन किया है।

टिप्पणी

औरंगजेब ने भी आमिलों को हिदायत दी थी कि यदि कोई कृषक भूमि छोड़कर चला गया है तो उसे वापस खेती में संलग्न करना चाहिए।

कृषि आय का प्रमुख स्रोत था इसलिए शासक वर्ग भी इसकी वृद्धि में विशेष रुचि रखते थे। शाहजहां के समय में कृषि क्षेत्र में पर्याप्त वृद्धि हुई। राजा भारमल ने भी अपनी पुस्तक में यह जानकारी दी है।

(ii) चलित पूँजी– कृषि से संबंधित एक अन्य प्रसिद्ध उद्योग पशुपालन था। कृषि कार्य हेतु किसानों को अनेक प्रकार के पशुओं की आवश्यकता होती थी, जिसके कारण वे पशुपालन करते थे। पशुओं का प्रयोग खेती में सहायक व्यवसाय के रूप में किया जाता था।

अबुल फजल ने लिखा है कि प्रत्येक काश्तकार को 4 बैल 2 गायें और 1 भैंस बिना कर दिये रखने की अनुमति थी।

(iii) कृषि उपकरण– कृषि उपकरण भी कृषि संसाधन का महत्वपूर्ण स्रोत थे। हल, फावड़े, कुदाल, खुरपे, जुआठ, पाटा, ड्रिल तथा हंसुआ आदि उपकरणों का मुगल काल में उपयोग होता था। मुगल काल में भारत में खेतों की जुताई हेतु प्रयुक्त किये जा रहे हल को 'टेरी' ने 'फुट प्लाऊ' नाम से संबोधित किया है। विभिन्न उद्देश्यों के लिए अलग–अलग प्रकार के हल बैलों के द्वारा खींचे जाते थे। इसके अतिरिक्त खाद बीज एवं कीटनाशक आदि का भी प्रयोग किया जाता रहा है। अर्थशास्त्र में शहद, गोबर, हड्डियों एवं मछलियों का उर्वरक के रूप में प्रयोग किया जाता रहा है। मुगल काल में भी ऐसे पदार्थ का उपयोग किया जाता था।

जंगल– जंगलों को साफ करके कृषि योग्य भूमि में वृद्धि की जाती थी। शाहजहां एवं अकबर के समय में कृषि के क्षेत्र में पर्याप्त वृद्धि की गई। जो लोग जंगलों की सफाई करते थे उन्हें इन क्षेत्रों के पट्टे दे दिये जाते थे। इससे कृषि का जितना विस्तार होता गया, जंगल उतने ही संकुचित होते जाते थे।

धन– प्रतिष्ठा का मापदंड धन से भी होता था। जिसके पास जितना धन था उसका सामाजिक रुतबा उतना ही अधिक था। साहूकार, महाजनों पर ग्रामों के निर्धन वर्ग की निर्भरता अत्यधिक थी, क्योंकि उन्हें धन की आवश्यकता होती थी।

मानव संसाधन– निर्मित संसाधनों में जान डालने का कार्य किसान अपनी मेहनत से करता था और राज्य भी इस कार्य के लिए उनकी मदद करता था। जो कृषक कृषि कार्य के द्वारा आय बढ़ाते थे, उन्हें पुरस्कृत किया जाता था और जो आय को कम करते थे, उन्हें दंड दिया जाता था। किसानों को कृषि में उन्नति करने के लिए शासक की ओर से सहायता दी जाती थी।

प्रो. सरकार ने लिखा है– "गरीब प्रजा को राजकोष से तकाबी दी गयी जिससे लोग बीज और कृषि से संबंधित सामान खरीद सकें।"

3.3.2 मुगल साम्राज्य की आय और उसके साधन

मुगल साम्राज्य में शासकों एवं साम्राज्य की आय एक समान न होकर घटती–बढ़ती रहती थी। उसका प्रमुख कारण था– शासकों की नीतियों में परिवर्तन होना तथा यह उनकी योग्यता और उनके द्वारा किये गये सुधारों पर भी निर्भर करता था। अकबर के

समय में साम्राज्य की सीमा में वृद्धि हुई तो उसकी आय में भी वृद्धि हुई। इसके अतिरिक्त शासकों के द्वारा कर निर्धारण की नीतियों में परिवर्तन करना भी इसका एक प्रमुख कारण था।

टिप्पणी

तत्कालीन लेखकों ने करों से होने वाली आय का स्पष्ट उल्लेख तो नहीं किया है फिर भी उन्होंने जो जानकारी दी है उनके अनुसार अकबर की वार्षिक आय साढ़े तेरह करोड़, शाहजहां की साढ़े बाइस करोड़ तथा औरंगजेब की साढ़े अड़तीस करोड़ थी। यह आय अनेक साधनों से होती थी। भू–राजस्व का योगदान उसमें सर्वाधिक था।

आय के साधन

(1) जजिया– यह एक प्रकार का धार्मिक कर था जो हिंदुओं से लिया जाता था। भारत में इसका प्रथम साक्ष्य 'मुहम्मद बिन कासिम' के आक्रमण के पश्चात मिलता है। सल्तनत शासकों के अलावा बाबर और हुमायुँ के समय भी इसे लिया जाता रहा। अकबर ने 1564 में इसे समाप्त कर दिया। औरंगजेब ने इसे 1679 में पुनः लागू किया। 1712 में जहांदार शाह ने अपने वजीर 'जुल्फिकार खां के कहने पर इसे समाप्त कर दिया। फर्रुखशियर ने 1717 ई. में पुनः लगा दिया। 1720 में मुहम्मदशाह रंगीला ने 'जयसिंह' के अनुरोध पर इसे सदा के लिए समाप्त कर दिया।

(2) जकात– यह केवल मुसलमानों से लिया जाता था जिसका अर्थ 'दान देना' है। मुस्लिमों से उनकी आय का 2.5% लिया जाता था। उस धन को केवल मुस्लिमों के हितों के लिए व्यय किया जाता था।

(3) आयात–कर तथा निर्यात कर– यह कर बाहर से आने वाली एवं बाहर जाने वाली वस्तुओं पर लगाया जाता था। मुसलमानों से वस्तु के मूल्य का 2.5% तथा हिंदुओं से 5% लिया जाता था। सभी मुगलशासकों द्वारा इसी दर से कर लिया जाता था। 1667 में औरंगजेब ने मुसलमानों को इस कर से मुक्त कर दिया था परंतु मुसलमान भ्रष्टाचार कर के हिंदुओं के माल को अपना माल बता कर उसे चुंगी कर से मुक्त करवा लेते थे। औरंगजेब द्वारा इसे पुनः लागू कर दिया गया।

(4) नमक कर– पंजाब के पहाड़ों और राजपूताना की सांभर झील पर सम्राट का एकाधिकार था वहां से जो आय होती थी उस पर केवल केंद्रीय सरकार का अधिकार रहता था।

(5) खनिज पदार्थ– खनिज पदार्थों भी आय के साधन थे। इसके अतिरिक्त डच और अंग्रेज व्यापारी चीनी, अफीम, नील, शराब, ताँबा, 'शोरा' का निर्यात करते थे। बिहार इस व्यवसाय का प्रमुख केंद्र था।

(6) सिक्कों का निर्माण– 1595 ई. में लगभग 42 टकसालों में तांबे के सिक्के ढाले जाते थे। 14 टकसालों में चांदी के तथा 4 टकसालों में सोने के सिक्के ढाले जाते थे। इन मदों से भी पर्याप्त आय होती रही होगी।

(7) खम्म– युद्ध में लूटे हुए माल एवं भूमि में गड़े खजाने से प्राप्त संपत्ति में से 4/5 भाग सैनिकों को मिलता था तथा 1/5 भाग राज्य को मिलता था।

(8) राजगामिता कानून– जहांगीर द्वारा इस कानून को लागू किया गया। मरने पर अमीरों की संपत्ति पर राज्य का अधिकार होने लगा।

टिप्पणी

(9) उपहार– अनेक अवसरों पर राज्य के अधीनस्थ अधिकारियों के द्वारा शासकों को कीमती उपहार देने का उल्लेख मिलता है। इसके अलावा अधीनस्थ राजाओं से कर की भी वसूली की जाती थी। ये भी राज्य की आय के साधन के प्रमुख स्रोत थे।

(10) भू–राजस्व– भारत सदैव कृषि प्रधान देश रहा है। राज्य की आय का सबसे महत्वपूर्ण स्रोत भू–राजस्व था। बाबर और हुमायूं ने अस्थिर स्थिति के कारण सल्तनतकालीन व्यवस्था को कायम रखा। शेरशाह तथा अकबर ने भू राजस्व व्यवस्था में महत्वपूर्ण सुधार किये। 1560 से 1590 तक अकबर ने उसमें सुधार किये। समस्त पैदावार का 1/3 भू–राजस्व के रूप में लिया जाता था। इरफान हबीब एवं मोरलैण्ड क्रमशः 1/2 और 3/4 भाग लेने का वर्णन करते हैं।

मूल्यांकन– विभिन्न स्रोतों से होने वाली आय से मुगल सल्तनत की अर्थव्यवस्था सुदृढ़ हुई और उनकी गिनती विश्व के अमीर और समृद्धशाली राजाओं में होती रही है। उनका प्रभाव उस समय की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक स्थिति में स्पष्ट दिखाई देता है।

3.3.3 भूमि के प्रकार

मुगल शासन प्रणाली में भू–राजस्व उत्पादन का हिस्सा होता था। यह भूमि पर कर नहीं वरन् उत्पादन और उपज पर कर होता था। आइन–ए–अकबरी के अनुसार भू–राजस्व राजा द्वारा दिये जाने वाले संरक्षण के बदले लिया जाने वाला संप्रभुता शुल्क था।

भूमि व्यवस्था को समझने के लिए उसे दो भागों में विभाजित किया गया था।

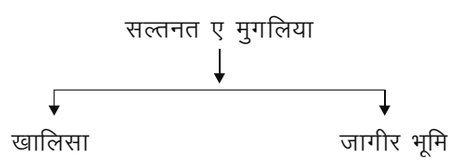

खालिसा भूमि राजकीय नियंत्रण वाला वह क्षेत्र जिसका भू–राजस्व सीधे केंद्रीय खजाने में जाता था। यह भूमि राज्य की कुल भूमि का 20% हिस्सा था। क्षेत्रफल बादशाह की मर्जी से घटता बढ़ता रहता था। जहांगीर के काल में यह कुल भूमि का 1/9 भाग था। औरंगजेब के शासन काल में यह कुल भूमि का 1/5 भाग हो गया था।

जागीर भूमि– प्रशासनिक अधिकारियों, सैनिकों, धार्मिक वर्गों व अन्य लोगों को प्रदान की जाने वाली, ऐसी भूमि जिसका राजस्व उसे मिलता है, जिसे राज्य अधिकृत करे।

सल्तनत काल में इस व्यवस्था को 'इक्ता' कहते थे। मुगल काल में 'जागीर' या 'तुयूल' कहते थे। इक्ता और जागीर में अंतर यह था कि इक्ता के साथ वित्तीय एवं प्रशासनिक कार्य जुड़े हुये थे 'जागीर' के साथ प्रशासनिक कार्य लगभग नहीं होते थे। मुगल काल में 5 प्रकार की जागीर दी जाती थी।

(i) तनखा–ए–जागीर

टिप्पणी

(ii) मशूरत–ए–जागीर

(iii) इनाम–ए–जागीर

(iv) वतन–ए–जागीर

(v) अलतमगा–ए–जागीर

उपरोक्त जागीरों में से प्रथम तीन जागीरें वंशानुगत नहीं थीं और स्थान्तरणीय थी। बाकी की जागीरें वंशानुगत थी।

अनुदान में दी गई भूमि– अनुदान में दी गई भूमि को 'सपूरगल' 'मिल्क' (अमलाक) 'मदद–ए–माश' कहा जाता था। यह भूमि दान स्थायी एवं वंशानुगत होती थी। 'मदद–ए–माश' अनुदान 'अल्लाह' के गरीब तथा दीनहीन प्राणियों की सुरक्षा के लिए दिया जाता था। अनुदान प्राप्त भूमि कई रूपों में दी जाती थी।

ऐम्मा– यह भूमि प्रार्थना एवं प्रशंसा के लिए 'मुस्लिम धर्म विदों एवं उलेमाओं' को दी जाती थी।

- **वक्फ**– धार्मिक कार्यों के लिए संस्थाओं को दी जाने वाली भूमि एवं धन संपत्ति आदि थी।
- **अलतमगा**– जहाँगीर द्वारा प्रारंभ की गई यह विशेष सुविधा शाही कृपा प्राप्त धार्मिक व्यक्ति को वंशानुगत रूप से दी जाती थी।
- **वजीफा**– यह अनुदान दीन–दुखियों, अपाहिजों, विद्वानों और धार्मिक व्यक्तियों को नगद रूप में दिया जाता था। इन सभी अनुदानों के लिए पृथक विभाग होता था। जिसे सद्र–उस–सद्र कहा जाता था।

(iii) मोकासा, जागीर और सरंजाम– मराठा, राज्य में सैनिकों को नगद भुगतान किया जाता था लेकिन बड़े–बड़े सरदारों और सेनापतियों को भुगतान जागीर (सरंजाम या मोकार्सा) के रूप में दिया जाता था।

"शिवाजी ने जागीरें देने की प्रथा को अधिकांशतया नहीं माना था। यदि भूमि जागीर के रूप में दी भी गयी थी तो उसकी आय का हिसाब राज्य के कर्मचारी रखते थे और उसी के अनुरूप उस जागीरदार के वेतन में कमी कर दी जाती थी।

मोकामादार अवसर पाते ही मोलसा को वंशानुगत करवा लेते थे। गांव की राजस्व वसूली में दो लोगों का हिस्सा होता था। 'वतनदार' तथा 'मोकासादार' के भूमि पर वंशानुगत अधिकार थे जबकि दूसरे वर्ग के लोगों को केवल भू–राजस्व में हिस्सा प्राप्त होता था।

3.3.4 कर निर्धारण पद्धति

मुगल काल में कर निर्धारण की पद्धतियों में सुधार किया गया। कर निर्धारण पद्धति के दो प्रकार थे। पहला लगान निर्धारण करना और दूसरा लगान वसूल करना। "जमा" शब्द का अर्थ था आंका गया कुल लगान जिसे किसी व्यक्ति को राज्य को अदा करना होता था। "हासिल" शब्द का अर्थ था– राज्य द्वारा वसूल की वास्तविक राशि।

बाबर और हुमायुं के शासन काल में स्थिरता न होने के कारण पुरानी चली आ रही पद्धतियों को ही जारी रखा।

टिप्पणी

(1) शेरशाह सूरी के शासन काल में कर निर्धारण पद्धति– उसने संपूर्ण जमीन की पैमाइश कराई और उपज के हिसाब से लगान निश्चित किया। पैदावर योग्य सारी जमीन तीन श्रेणियों में विभाजित कर दी गयी थी। अच्छी, साधारण, खराब– इन तीनों तरह की जमीनों पर की जाने वाली पैदावार निश्चित की जाती थी। पैदावर का 1/3 भाग सरकारी हिस्सा समझा जाता था।

मुल्तान तथा राजस्थान में 'गल्ला बक्सी' अथवा बटाई नरक अथवा मुकताई नगदी अथवा जब्ती प्रणालियां चलती रहीं। कुनकूत प्रणाली बटाई का संशोधित रूप था। इसे दानाबंदी भी कहा जाता था।

(2) अकबर की कर निर्धारण पद्धति– मुगल काल में कर निर्धारण को संगठित रूप प्रदान करने का श्रेय अकबर को है, उसने 1560 से 1590 तक निरन्तर इस क्षेत्र में कार्य किया। वी.ए. स्मिथ ने लिखा है– "अकबर के भूमि प्रबंध के तरीकों को बाद में अंग्रेजों ने भी अपनाया।"

कर निर्धारण का प्रथम प्रयोग अकबर ने 1563 में एतमाद खां के द्वारा कराया। उसने दिल्ली, आगरा और लाहौर में भूमि की नाप करवायी तथा भू राजस्व निश्चित कर दिया।

द्वितीय प्रयोग 'मुजफफर खां के द्वारा 1565–66 में किया गया। प्रत्येक परगने के लिए अनाज की अलग–अलग दर निश्चित की गई। इसी आधार पर भू–राजस्व नगद वसूल किया जाने लगा।

तृतीय प्रयोग 1569 में शहाबुद्दीन ने खालिसा भूमि पर किया। इस प्रयोग के अनुसार खड़ी फसल के समय ही सरकारी पदाधिकारियों द्वारा खेतों का निरीक्षण करके उपज का अनुमान लगाया जाता था तथा कर का निर्धारण किया जाता था इसे 'नरक' या 'कनकूत' कहा जाता था।

कर निर्धारण में चतुर्थ प्रयोग 1570–74 में मुजफ्फर खाँ तथा टोडरमल ने किया। 1573 में समस्त भूमि की नाप करवाई। इसके लिए 'सिक–दरी गज' अपनाया। टोडरमल ने भूमि को चार वर्गों में विभाजित किया गया। (1) पोटाज प्रतिवर्ष फसल देने वाली (2) परती एक फसल के बाद एक वर्ष छोड़ी जाने वाली (3) चाचर प्रति फसल के बाद तीन–चार साल तक छोड़ी जाने वाली (4) बंजर पांच या अधिक वर्षों तक छोड़ी जाने वाली। पालेज एवं परती भूमि की प्रति बीघा औसत फसल का अनुमान लगाया गया। औसत फसल का 1/3 भू–राजस्व निश्चित किया गया।

व्यक्तिगत कर निर्धारण के लिए दूसरे तरीकों का प्रयोग किया जाता था। जमीन की किस्म और उसकी उत्पादन शक्ति, अनाज कौन सा उगाया जा रहा है। कर निर्धारण में कौन–सी पद्धति लागू की गई है।

सारांश में अकबर के शासन के पश्चात भी बाद के मुगल शासकों द्वारा इसी तरह की कर–निर्धारण पद्धति को लागू किया गया। इस व्यवस्था से राज्य की आय में वृद्धि हुई तथा किसानों के शोषण में भी कमी आई।

भूमि कर आकलन की पद्धतियां– कृषि मध्यकालीन लोगों का प्रमुख व्यवसाय था और भू–राजस्व राज्य की आय का प्रमुख साधन था। बाबर एवं हुमायुँ का शासन

अत्यंत अल्पकालीन रहा इसलिए वे इस दिशा में कोई महत्वपूर्ण उपलब्धि अर्जित नहीं कर सके।

टिप्पणी

गल्ला बख्शी प्रणाली– शेरशाह सूरी के शासन काल में यह प्रचलित प्रणाली थी। 'बंटाई अथवा गल्ला बख्शी' इसे माझोली भी कहा जाता था। इस प्रणाली के अंतर्गत फसल का किसान और राज्य के बीच एक निश्चित अनुपात में बंटवारा किया जाता था। इसमें भी उपज के 1/3 भाग पर राज्य का अधिकार होता। इस–प्रणाली से राजस्व निर्धारण तीन तरह से होता था– 'खेत बटाई' लंक बटाई, राशि बटाई। यह राज्य के सभी भागों में प्रचलित नहीं थी।

कनकूत प्रणाली– आइन–ए–अकबरी में एक दूसरी पद्धति का वर्णन किया गया है, "जिसके द्वारा संपूर्ण भूमि या तो वास्तव में नपाई करके या कदमों की गिनती करके प्राप्त की जाती थी और खड़ी फसलों का अनुमान निरीक्षण करके लगाया जाता था। यह कनकूत प्रणाली कहलाती थी। शेरशाह ने इसे जब्ती में परिवर्तित किया।"

जब्ती प्रणाली– शेरशाह सूरी ने संपूर्ण जमीन की पैमाइश कराई और उपज के हिसाब से लगान निश्चित किया। पैदावर योग्य सारी जमीन तीन श्रेणियों में विभाजित की गई। अच्छी, साधारण तथा खराब। इन तीनों तरह की जमीनों पर की जाने वाली पैदावर निश्चित की जाती थी। पैदावर का 1/3 भाग राज्य की आय (राई) के रूप में निर्धारित किया जाता था।

आइन–ए–दहसाला प्रणाली– अकबर ने अपने शासन के 24वें वर्ष 1580 में आइने दहसाला (टोडरमल बंदोबस्त) नामक एक नयी कर प्रणाली को शुरू किया इसके अंतर्गत कर अदायगी नगद रूप में करनी पड़ती थी। कर का निर्धारण पिछले दस वर्षों के उत्पादन और प्रचलित मूल्यों के आधार पर किया जाता था लेकिन उसका 1/10 भाग हर साल वसूला जाता था जिसे 'माल–ए–हरमाला' कहा जाता था। यह पद्धति एक प्रकार से रैय्यतवाड़ी व्यवस्था थी क्योंकि इसमें सीधे कृषक ही प्रतिवर्ष लगान देने के लिए उत्तरदायी होते थे। इस व्यवस्था में खालिसा और जागीर दोनों प्रकार की भूमि को शामिल किया जाता था।

इरफान हबीब के मतानुसार– "इस नई पद्धति का सार यह है कि खेती की श्रेणियों तथा कीमतों के स्तरों के बारे में प्रत्येक परगना की दस वर्षों की स्थिति (हाल–ए–दहसाला) का पता लगाने के बाद उन्होंने वार्षिक राजस्व के रूप में उसका दसवां भाग निर्धारित किया गया।

दहसाला प्रणाली प्रत्येक राज्य में लागू नहीं की जाती थी।

भूमि का विभाजन– मुगल काल में भूमि का विभाजन दो प्रकार से किया गया था। खालिसा भूमि एवं निर्दिष्ट भूमि। निर्दिष्ट भूमि को "तुयूल" "जागीर" या इक्ता कहा जाता था। खालिसा भूमि राज्य की भूमि होती थी। निर्दिष्ट भूमि विभिन्न अधिकारियों में विभाजित थी। निर्दिष्ट कार्य दो प्रकार के होते थे– (1) सेवा कार्य (2) परोपकारी या गैर–प्रतिबंधित अनुदान। सेवा कार्य "दाम" के रूप में लिए जाते थे और परोपकार कार्य के लिए भूमि दान में दी जाती थी।

टिप्पणी

जहांगीर के शासन काल में अमीरों को उनके निवास स्थान के निकट ही जागीरें प्रदान की गईं। धीरे–धीरे ये जागीरें वंशानुगत हो गईं। शाहजहां के काल में 70% के लगभग कृषि भूमि जागीरों में विभक्त हो गयी। भू–राजस्व की दर 1/3 से बढ़ाकर 1/2 कर दी गई। इससे राज्य की आय बढ़कर चालीस करोड़ हो गई।

औरंगजेब के शासन काल में जब्ती प्रणाली लगभग समाप्त हो गई। नस्क प्रणाली का व्यवहार बढ़ा अर्थात् अनुमान के आधार पर तथा साधारण पैमाइश के आधार पर भू–राजस्व निश्चित होने लगा। औरंगजेब ने उपज का 1/2 भू राजस्व वसूल किया। उसके समय में भी जागीरदारी और ठेकेदारी प्रथा जारी रही। नस्क प्रणाली के अपनाए जाने से इस बात का संकेत मिलता है कि प्रशासनिक तंत्र विभिन्न स्तरों पर दुर्बल पड़ गया था।

जब्ती व्यवस्था में नापने के कार्यों पर अत्यधिक व्यय करना पड़ता था तथा उसके लिए बड़ी संख्या में कुशल कर्मचारियों की आवश्यकता होती थी। पिछले रिकार्डों पर आधारित होने के कारण नस्क व्यवस्था सरल थी।

मुगल शासन के अंतर्गत कृषि की दशा को सुधारने के लिए प्रयोग किये गये। अकबर ने इसके लिए तालाब, बाग और सराय का निर्माण करवाया। शाहजहां के काल में कृषि क्षेत्र में वृद्धि की गई। टोडरमल किसानों को ऋण देने का उल्लेख करते हैं। तत्कालीन विदेशी यात्री 'पेलसार्ट' बर्नियर 'मनुकी' किसानों और मजदूरों की दरिद्रता का उल्लेख करते हैं। बर्नियर के अनुसार "कृषि की दशा खराब थी। शिल्पकार दरिद्र थे और प्रांतीय शासक उत्पीड़न करते थे।"

अंत में कुछ दोषों के उपरांत भी उनके कर आकलन की पद्धतियां तत्कालीन दृष्टिकोण से श्रेष्ठ पद्धतियां थीं।

भूमि के नाप की इकाई– सल्तनत काल में 'सिकंदर लोदी' के समय 'सिकंदरी गज' भूमि माप के लिए उपयोग में लाया जाता था जो 42 अंगुल का होता था। कपड़ा नापने पर 46 अंगुल का प्रयोग होता था। आइन–ए–अकबरी के अनुसार अकबर के शासन काल के 31वें वर्ष में 'इलाही गज' (41 अंगुल या 33 इंच) का प्रयोग आरंभ किया गया।

सल्तनत काल में 'रस्सी' का प्रयोग किया जाता था परंतु इससे भूमि के क्षेत्रफल का सही अनुमान नहीं लग पाता था। इसके लिए अकबर ने 'जरीब' (बाँस का डंडा जिस पर लोहे की कड़ियां जुड़ी होती थी) का प्रचलन प्रारंभ किया।

समकालीन इतिहासकार 'सादिक' के अनुसार 'मदद–ए–माश भूमि' तो 'बीघा–ए–इलाही' से नापी जाती थी परंतु सरकारी अभिलेखों के लिए भूमि 'दिरा–ए–शाहजहानी' या 'बीघा–ए–दफतरी' से नापी जाती थी। औरंगजेब के पश्चात 'बीघा–ए–दफतरी' का प्रयोग बंद हो गया किंतु 'बीघा–ए–इलाही' मुगल काल के अंत तक चलता रहा।

क्षेत्रफल की इकाई 'बीघा' से नापी जाती थी। 'बीघा' को बीस 'बिस्वा' में विभाजित किया जाता था। बिस्वा को फिर बीस 'बिस्वानसो' में बांटा जाता था। बिस्वानसो बहुत छोटी इकाई थी। इससे राजस्व वसूल नहीं किया जाता था।

3.3.5 भूमिकर संबंधी व्यवस्था एवं सुधार

टिप्पणी

मध्ययुगीन शासकों की समृद्धि का आधार भू–राजस्व व्यवस्था थी। वही आय का मुख्य स्रोत था। उसकी सफलता–असफलता प्रशासन पर उनकी मजबूती पर निर्भर करती थी। मध्ययुगीन समस्त शासकों ने भूमि व्यवस्था में सुधार के लिए उद्यम किया।

सल्तनतकालीन सुल्तानों की राजस्व व्यवस्था– इस काल में भूमि के स्वामित्व के विषय में मतभेद है। भूमि का वास्तविक स्वामी शासक होता था तथा अन्य व्यक्ति उसको जीवकोपार्जन के साधन के रूप में प्रयोग करते थे तथा उस समय वे ही उसके स्वामी होते थे। सल्तनत काल में सुल्तानों के शासन में स्थिरता न होने के कारण इस क्षेत्र में सुधार नहीं किये गये। अलाउद्दीन की नीतियां लोक कल्याण की भावना की बजाय राजनीतिक या सैनिक सुरक्षा की भावना से अधिक प्रेरित थीं।

तुगलक काल में भू राजस्व के अंतर्गत भू–राजस्व अंकन की पद्धति को समाप्त करके बटाई प्रणाली लागू की गई। शेरशाह से पूर्व इस दिशा में सफल प्रयास परिलक्षित नहीं होते हैं।

शेरशाह के भूमि–कर संबंधी सुधार– शेरशाह बुद्धिमान और योग्य शासक था। उसकी लोकप्रियता उसके समस्त कार्यों में दिखती है। उसने अनुभव किया कि भूमि–कर व्यवस्था न्यायसंगत हो तथा योग्यता के आधार पर कर का निर्धारण होना चाहिए। पुरानी चली आ रही व्यवस्था न्यायसंगत नहीं थी और न ही किसी नियम पर आधारित थी। उसका मानना था कृषकों की समृद्धि में ही राष्ट्र की समृद्धि निहित है। अतः उसने किसानों की आर्थिक स्थिति को सुधारने का प्रयास किया। कृषकों को शोषण से बचाया जा सके, इस बात के उसने प्रयास किये।

भूमि की पैमाइश– शेरशाह ने इस सुधार की प्रक्रिया हेतु 'अहमद खां' नामक अधिकारी को अधिकृत किया। अहमद खां ने हिंदू ब्राह्मणों की सहायता से भूमि की माप कराई और कृषि भूमि का एक दस्तावेज तैयार किया। भूमि माप में शेरशाह ने माप की इकाई के रूप में 'गज–ए–सिकंदरी' का प्रयोग किया, जो 39 अंगुल या 32 इंच या 3/4 मी. होता था। शेरशाह की भूमि माप की पद्धति जब्ती पद्धति कहलाती है। माप की इकाई के लिए शेरशाह ने जरीब का प्रयोग किया। यह सन् के डंडे या रस्सी का बना होता था। माप क्षेत्र की सबसे छोटी इकाई बीघा को माना गया और सबसे बड़ी इकाई परगना को बनाया गया।

साम्राज्य के कुछ भागों जैसे मालवा और राजपूताना की पैमाइश नहीं की गई थी और उन भागों में पुराना "बटाई वाला अथवा जागीरदारी" नियम ही चलता रहा।

प्रो. कानूनगो के अनुसार– "शेरशाह कृषकों से अनुमानित उपज का केवल चौथा भाग राज्य कर के रूप में लेता था।"

भूमि कर निर्धारण की पद्धतियां– भूमिदर के विषय में विद्वानों में मतभेद है। डॉ. कानूनगो तथा डॉ. एस.आर. वर्मा के अनुसार लगान उपज का 1/4 भाग था जबकि डॉ. आर्शीवादी लाल, वी. शरण और आर.पी. त्रिपाठी के अनुसार यह दर उपज का 1/3 भाग थी। शासकों ने भूमि को तीन भागों में विभाजित कर दिया। अच्छी, साधारण, खराब। इन तीनों प्रकार की भूमि की उपज का औसत उपज निकालकर सरकारी भाग

निश्चित किया गया। लगान जिन्स अथवा नकद रूप में दिया जाता था। लगान निर्धारण की तीन प्रणालियां थीं।

टिप्पणी

(i) गल्ला बक्शी अथवा बंटाई– बंटाई प्रणाली सबसे अधिक प्राचीन रही है। बंटाई तीन प्रकार की होती थी।

(क) खेत बंटाई– बोने के पश्चात खेत बांटकर

(ख) लंक बंटाई– फसल काटकर खलियान में रखे जाने पर

(ग) रास बंटाई– भूसा और अनाज को अलग कर

(ii) नस्क अथवा मुकताई या कनकूत– खड़ी फसल की उपज को अनुमान लगा लिया जाता था फिर उसके आधार पर हिस्सा निश्चित किया जाता था।

(iii) नगदी अथवा जब्ती या जमई– इस प्रणाली के अंतर्गत किसान तथा जमींदार के बीच एक निश्चित समय के लिए समझौते द्वारा प्रति बीघा लगान निश्चित हो जाता था। इस प्रकार से निश्चित लगान में किसी भी अवस्था में कमी अथवा वृद्धि नहीं हो सकती थी।

पट्टा तथा कबूलियत– प्रत्येक किसान को पट्टा दिया जाता था और उसमें कबूलियत लिखवाई जाती थी। पट्टे में जमीन के स्वामी का नाम आदि स्पष्ट दिया जाता था। कबूलियत में यह बात स्पष्ट की जाती थी कि संबंधित किसानों को कितना राजस्व प्रदान करना है।

इस कबूलियत पत्र में पट्टे में किसान के अधीन दी गई भूमि, उसकी स्थिति, क्षेत्रफल और भूमि के विवरण के साथ–साथ कृषकों की स्वीकृति भी लिखी रहती थी।

- **जरीबाना, मुहासिलाना दाह अंसारी, लगान**

भू–राजस्व के अलावा कुछ अन्य प्रकार के कर भी लिए जाते थे। किसानों को 2½ से 5% तक अतिरिक्त कर जरीबाना (नाप–जोख) के लिए तथा मुहासिलाना (वसूली भत्ते के रूप में) सरकार को देना होता था। हसन खाँ के 'तारीख–ए–शेरशाही' से जानकारी के अनुसार 'दाह अस्तरी लगान' लिया जाता था। सरकार इस प्रकार से एकत्रित किए गए अनाज का संग्रह करती थी और दुर्भिक्ष के समय उसका पीड़ित लोगों में वितरण किया जाता था। शेरशाह ने राजस्व अधिकारियों को यह स्पष्ट आदेश दे रखा था– "राजस्व निर्धारित करते समय कोमलता दिखाओ किंतु वसूल करते समय किसी प्रकार की दया मत करो।"

तकाबी ऋण– प्राकृतिक प्रकोप के कारण फसल खराब होने की स्थिति में लगान माफ या कम कर दिया जाता था। आवश्यकता पड़ने पर उन्हें 'तकाबी ऋण' दिये जाने की व्यवस्था की गई, जिन्हें किसान आसान किश्तों में चुका सकते थे।

किसानों की भलाई के कार्य– शेरशाह किसानों की भलाई का सदैव ध्यान रखता था जो अधिकारी किसानों के साथ दुर्व्यवहार करता था, उसे कठोरतम दंड दिया जाता था। वह इस वास्तविकता को अच्छी प्रकार समझता था कि कृषकों की समृद्धि में ही राष्ट्र की समृद्धि निहित है। अतः उसने किसानों की आर्थिक स्थिति को सुधारने का भरसक प्रयत्न किया। यदि सैनिक अभियानों में फसल को हानि पहुंचती थी तो किसानों को उसका पूरा हर्जाना दिया जाता था।

डॉ. आर्शीवादी लाल के अनुसार– "उसने किसान और सरकार के मध्य सीधा संबंध स्थापित किया।" उसकी सफलता का मुख्य कारण उसकी सुसंगठित शासन प्रणाली थी।

टिप्पणी

अकबर की भूमिकर संबंधी व्यवस्था और सुधार

आइन–ए–दहसाला पद्धति– लगान को नकद में परिवर्तित करने के लिए 1581 में दहसाला प्रथा या जाब्ती प्रथा लागू की गयी। इसके अनुसार 1571 ई. से 1580 तक के पिछले दस वर्षों के भू–राजस्व और अनाज की प्रचलित कीमतों के योग में दस का भाग देकर औसत निकाल लिया जाता था। इसे स्थायी कर दिया गया। इस प्रथा को 'आइन–ए–दहसाला' तथा टोडरमल बंदोस्त भी कहा जाता है। यह प्रणाली साम्राज्य के बारह में से आठ सूबों में लागू की गई।

विशेषताएं–

(1) रस्सी के प्रयोग की जगह भूमि नापने के लिए टोडरमल ने लोहे के गुच्छों से परस्पर जुड़े हुये बांसों का प्रयोग किया।

(2) वीघा को भूमि की इकाई स्वीकार किया गया जिसकी नाप 60×60 गज = 3600 वर्ग गज स्वीकार की गयी।

(3) कृषि योग्य भूमि को टोडरमल ने चार भागों में विभाजित किया।

(A) पोलज– यह श्रेष्ठतम भूमि थी, इस पर प्रतिवर्ष फसल उगायी जाती थी।

(B) परती– इसे एक या दो वर्ष के लिए खाली छोड़ दिया जाता था।

(C) चाचर– उसे 4 वर्ष की अवधि के लिए खाली छोड़ दिया जाता था।

(D) बंजर– यह अनुपयोगी भूमि थी।

(4) पिछले दस वर्ष की उपज की गणना के आधार पर लगान की राशि का औसत निकाला जाता था।

(5) एक बीघा पर उत्पादित अनाज का 1/3 भाग राजकीय हिस्सा घोषित किया गया।

(6) वार्षिक हिसाब–किताब, भूमि की किस्म व पैदावार का हिसाब रखना सरकारी कर्मचारियों का कार्य था।

(7) अकबर ने रैय्यत प्रणाली के द्वारा किसानों से सीधा संबंध स्थापित किया।

(8) पट्टा और कबूलियत की प्रथा को भी लागू किया गया था।

(9) आपातकाल की स्थिति में किसान को राजकीय सुविधाएं दी जाती थीं।

(10) राजस्व की वसूली में पटवारियों, मुकद्दमों का योगदान अधिक था तथा कानूनगो का नया पद सृजित किया गया था। जिसे शाही कोष से वेतन दिया जाता था।

अन्य प्रणाली– अकबर द्वारा संचालित 'आइन–ए–दहसाला' पद्धति राज्य के सभी क्षेत्रों पर लागू नहीं थी इसलिए कुछ अन्य प्रणालियां भी प्रचलित थीं। भूमि कर के लिए 'बटाई प्रणाली' इसे भाओली प्रणाली भी कहा जाता था 'कनकूत', 'गलत–बक्शी' अथवा

'गलल–कजमी', खेत बटाई, लंक बटाई नामक प्रणाली आदि प्रणालियां भी प्रचलित थीं।

टिप्पणी

जहांगीर एवं शाहजहां ने अकबर की नीति का अनुकरण किया परंतु नियमों को कठोरता से लागू नहीं किया। किसान एवं राज्य के बीच संबंधों में मधुरता बनी रही। औरंगजेब ने आढ़ती प्रणाली बंद करके 'नाम प्रणाली' को लागू किया।

उत्तरकालीन मुगल शासक न तो कभी अपनी सेना को ठीक से वेतन दे सके, न शासन को ठीक कर सके और न अपने किसानों की स्थिति को ही ठीक कर उनकी वफादारी प्राप्त कर सके।

अकबर ने राज्य तथा कृषक के बीच सीधा संपर्क स्थापित किया। किसी भारतीय इतिहासकार ने 'दहसाल पद्धति' की कमियों की ओर संकेत नहीं किया है। अंग्रेजी इतिहासकारों ने अपनी राजस्व व्यवस्था को श्रेष्ठ सिद्ध करने हेतु इस प्रणाली में कमियां बतायी हैं। अकबर के शासन काल में किसान समृद्ध थे। अकाल के समय किसानों का राजस्व कम किया जाता था और उन्हें तकाबी ऋण भी दिये जाते थे।

कृषि उपकरण और उर्वरक– मुगल काल में कृषि उपकरणों में हल, फावड़े, कुदाल, खुरपे, जुआठ, पाटा, ड्रील तथा हसुआ आदि कृषि यंत्रों का प्रयोग किया जाता था। हलों के लिए 'टेरी' ने 'फुट प्लाऊ' कहा है। विभिन्न उद्देश्यों के लिए अलग–अलग हल का प्रयोग होता था। बीज बोने के लिए 'ड्रील' उपकरण का उपयोग किया जाता था। पौधों की निराई गुड़ाई के लिए 'खुरपे' का प्रयोग होता था फसल काटने के लिए हंसुआ एक सामान्य उपकरण था। खेतों की उत्पादकता बढ़ाने के लिए विभिन्न प्रकार के उर्वरकों का प्रयोग किया जाता था 'अर्थशास्त्र' में शहद, गोबर, हड्डियों एवं मछलियों का उर्वरक के रूप में प्रयोग किये जाने का वर्णन मिलता है। मुगलकाल में भी ऐसे ही उर्वरकों का प्रयोग होता था। 'कृषि पराशर' में गोबर से खाद बनाने का उल्लेख मिलता है। मछली की खाद का प्रयोग भी होता था। फसलों की प्रकृति के अनुसार ही खाद का प्रकार एवं उसकी मात्रा निर्धारित की जाती थी।

3.3.6 सिंचाई के साधन

सिंचाई के कृत्रिम साधनों का बाबर ने उल्लेख किया है। कुएं, तालाब तथा नहरें आदि स्रोत थे। मुगल काल में गंगा के ऊपरी मैदानी क्षेत्रों तथा दक्षिणी भाग में कुएं सिंचाई के मुख्य स्रोत थे। लाहौर, दिपालपुर तथा सरहिंद के क्षेत्रों में 'रहट' से सिंचाई होती थी। बाबर के अनुसार 'आगरा' चंदवार, बयाना आदि क्षेत्रों में चरस द्वारा सिंचाई होती थी। 'ढेकली' एक सिंचाई का उपकरण था। इसकी जानकारी तत्कालीन चित्रकला से मिलती है। बर्नियर शाहजहां द्वारा नहर निर्माण का उल्लेख करता है। पूर्वी यमुना की पुरानी नहर शाहजहां के काल में बनी एवं उसने कुछ पुरानी नहरों की मरम्मत करवाई।

शाहजहां के काल में 'नहर–ए–फैज' था। नहर–ए–बहिस्त (स्वर्ग की नहर) 150 मील लंबी थी जो यमुना नदी के तराई क्षेत्र में प्रवेश करते ही अलग हो जाती थी। एक अन्य जो लंबाई में 160 मील से कम थी रावी नदी से निकलती थी। लाहौर के निकट उसी में मिल जाती थी। इसका निर्माण 'अली मदीन खां' ने करवाया था। रावी नदी से निकाली गई 'शाह नहर' के अतिरिक्त तीन अन्य छोटी नहरों का उल्लेख भी मिलता है।

तालाब एवं झीलें भी कृत्रिम सिंचाई साधन के स्रोत थे। मध्य भारत, दक्कन और दक्षिण भारत में तालाब से सिंचाई होती थी। गोलकुंडा साम्राज्य को 'टेवरनियर' ने तालाबों से मुक्त पाया। शाहजहां ने खानदेश, बरार के क्षेत्रों में बांध निर्माण करवाया। मेवाड़ में 'घेबर' झील थी। विजय नगर में 'मदाक झील' से सिंचाई होती थी।

टिप्पणी

निष्कर्ष– भारतीय कृषि के लिए सिंचाई व्यवस्था निर्णायक भूमिका का निर्वहन करती थी। यही कारण है कि प्रत्येक युग के शासकों ने इस ओर ध्यान दिया और सिंचाई के साधनों के लिए आविष्कार एवं उपकरणों का विकास हुआ इससे आर्थिक समृद्धि संभव हो सकी।

अपनी प्रगति जांचिए

6. 'राजगामिता कानून' किसने लागू किया?
   (क) अकबर (ख) जहांगीर
   (ग) शाहजहां (घ) हुमायुँ
7. 'आइन–ए–दहसाला' पद्धति अकबर ने अपने शासन के कौन–से वर्ष में लागू की।
   (क) 31वें वर्ष (ख) 40वें वर्ष
   (ग) 24वें वर्ष (घ) 26वें वर्ष
8. 'सिकंदरी गज' क्या था?
   (क) भूमि नाप की इकाई (ख) सिंचाई का साधन
   (ग) सड़क मार्ग (घ) भूमि कर
9. 'तकाबी' ऋण कौन–सी स्थिति में दिये जाते थे?
   (क) व्यापार के लिए (ख) प्राकृतिक विपदा
   (ग) कृषि के लिए (घ) सिंचाई के लिए
10. 'जजिया' लिया जाता था–
   (क) मुसलमानों से (ख) सिक्खों से
   (ग) हिंदुओं से (घ) तुर्कों से

3.4 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (घ) 2. (क)
3. (ख) 4. (क)
5. (ग) 6. (ख)
7. (ग) 8. (क)
9. (ख) 10. (ग)

टिप्पणी

3.5 सारांश

दिल्ली सल्तनत की स्थापना के साथ उसे प्रशासनिक एवं आर्थिक स्थिरता प्रदान करने हेतु कृषि विकास की ओर दिल्ली के शासकों ने ध्यान दिया जिससे कृषि व्यवस्था का तीव्रता से विकास हुआ। सभी शासकों ने समय–समय पर कृषि नीतियों का निर्धारण कर एवं उन्नत सिंचाई साधनों का विस्तार कर भू–राजस्व में वृद्धि की। उन्होंने बंजर भूमि, दलदली भूमि को कृषि योग्य बनाया और कृषि भूमि में वृद्धि की।

भू–राजस्व की सुविधा की दृष्टि से भूमि को कई भागों में विभाजित किया गया और उत्पादन पर राज्य की सहभागिता को शामिल कर आय में वृद्धि की गई।

कृषि व्यवस्था का मुख्य आधार स्तंभ कृषि उत्पादन संबंधी वर्ग से भी राज्य ने अपने संबंधों को खुशहाल बनाकर उनका सहयोग लिया।

ग्राम विभिन्न समुदायों का वर्ग था जिसका आधार जाति, वर्ग और व्यवसाय था। किसान और जमींदारों के बीच ये वर्ग मध्यस्थता का कार्य करता था।

सुल्तान वर्ग अपनी महत्वकांक्षाओं की पूर्वी एवं जनकल्याण की भावना से ओत–प्रोत होकर कृषि को अत्यधिक बढ़ावा देते थे।

मुगल सल्तनत की स्थापना के साथ मुगल शासकों ने आर्थिक सुधारों की ओर ध्यान दिया। कृषि जो राज्य व्यवस्था की रीढ़ होती है, उसके संसाधनों का विस्तार कर आय के साधनों की तरफ ध्यान दिया। उन्होंने व्यवस्था में परिवर्तन न कर पुरानी चली आ रही आय की पद्धतियों में क्रमिक सुधार किया।

भूमि के प्रकार एवं कर निर्धारण की प्रणाली को आसान बनाकर राज्य एवं किसानों के संबंधों में निकटता लाये। इसमें उन्होंने सल्तनत काल से हटकर कुछ नये प्रयोग एवं तकनीकी का विस्तार किया। भूमि की माप में नई इकाइयों को जोड़ा एवं कृषि उपकरण एवं उर्वरक का उपयोग कर कृत्रिम सिंचाई साधनों का विस्तार कर कृषि की उत्पादक क्षमता में वृद्धि की जिससे उत्पादन बढ़ सके। किसानों के साथ राज्य भी आर्थिक रूप से समृद्धशाली हो सके ऐसा प्रयास मुगल शासकों के द्वारा किया गया।

3.6 मुख्य शब्दावली

- **जलाशय** : तालाब
- **बंजर** : जिस भूमि में कुछ पैदा न हो
- **उर्वर** : उपजाऊ
- **कृषक** : किसान
- **दरिद्रता** : गरीबी
- **काश्तकार** : खेती करने वाला
- **संरक्षण** : सहारा
- **पैमाइश** : भूमि को मापना

- **लगान** : कर (टैक्स)
- **चरस** : खेतों की सिंचाई हेतु पानी निकालने का एक साधन
- **कृत्रिम** : बनावटी

टिप्पणी

3.7 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. 'इक्ता व्यवस्था' से आप क्या समझते हैं?
2. फिरोज तुगलक की सिंचाई व्यवस्था पर टिप्पणी लिखिए।
3. अलाउद्दीन खिलजी की भू–राजस्व व्यवस्था क्या है? समझाइए।
4. कृषि उपकरण एवं उर्वरक पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
5. शेरशाह सूरी की भू–राजस्व व्यवस्था कैसी थी? व्याख्या कीजिए।
6. कनकूत प्रणाली क्या थी? स्पष्ट कीजिए।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. सल्तनत काल में सिंचाई के कृत्रिम साधन क्या–क्या थे? व्याख्या कीजिए।
2. सल्तनतकालीन भू राजस्व व्यवस्था का विश्लेषण कीजिए?
3. कृषि उत्पादन से संबंधित विभिन्न वर्गों के योगदान की विवेचना कीजिए।
4. मुगल काल में कृषि संसाधनों का उल्लेख कर उसकी व्याख्या कीजिए।
5. मुगल साम्राज्य में आय और उसके साधनों की विवेचना कीजिए।
6. मुगल काल में भूमि के कौन–कौन से प्रकार थे? समीक्षा कीजिए।
7. कर निर्धारण पद्धतियों की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
8. कृत्रिम सिंचाई के साधनों के विस्तार पर निबंध लिखिए।

3.8 सहायक पाठ्य सामग्री

1. चंद्र सतीश, मध्यकालीन भारत, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली–1990
2. चंद्र सतीश, मध्यकालीन भारत में इतिहास लेखन : धर्म और राज्य का स्वरूप ग्रंथ शिल्पी दिल्ली 1999
3. राधेशरण, इतिहास और इतिहास लेखन, मध्य प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी भोपाल 2003
4. वर्मा हरिचंद्र, मध्यकालीन भारत खण्ड–1 एवं 2 हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय 1993

टिप्पणी

5. श्रीवास्तव बी.के. इतिहास लेखन अवधारणा, विधाएं एवं साधन, साहित्य भवन पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स प्रा.लि. आगरा 2005
6. 'इतिहास लेखन धारणाएं तथा पद्धतियां' लक्ष्मीनारायण अग्रवाल आगरा
7. वरे– डॉ. एस.एल. इतिहास लेखन की अवधारणा कैलास पुस्तक सदन भोपाल
8. बुद्ध प्रकाश– इतिहास लेखन की अवधारणा हिंदी समिति प्रयाग
9. लाल के.एस. खिलजी वंश का इतिहास विश्व प्रकाशन दिल्ली
10. जैन डॉ. राजीव– भारत का इतिहास कैलास पुस्तक सदन भोपाल
11. वार्डर ए.के. भारतीय इतिहास लेखन की भूमिका हरियाणा साहित्य अकादमी चंडीगढ़
12. जैन संजीत– पूर्व एवं उत्तर मध्यकालीन भारत का आर्थिक एवं राजनीतिक इतिहास कैलाश पुस्तक सदन भोपाल

इकाई 4 व्यापार और मौद्रिक प्रणाली : शहर और कस्बों का विकास

टिप्पणी

संरचना

4.0 परिचय

4.1 उद्देश्य

4.2 व्यापार एवं वाणिज्य : सल्तनत एवं मुगल काल में व्यापार का विस्तार

- 4.2.1 मध्यकालीन भारत में व्यापार की संरचना एवं विस्तार
- 4.2.2 जलमार्गों तथा स्थल मार्गों द्वारा व्यापार
- 4.2.3 अरब एवं यूरोपीय व्यापारियों की भूमिका

4.3 भारतीय व्यापारी एवं उनका वाणिज्यिक व्यवहार, विनिमय का माध्यम, मुद्रा, सिक्के एवं बैंकिंग

- 4.3.1 भारतीय व्यापार एवं वाणिज्य
- 4.3.2 विनिमय के साधन (माध्यम)
- 4.3.3 मुद्रा प्रणाली
- 4.3.4 सिक्के
- 4.3.5 मध्यकालीन बैंकिंग प्रणाली

4.4 नगरों तथा कस्बों का विकास– प्रकृति तथा वर्गीकरण, जनांकिकी परिवर्तन, प्रशासन, शहरी समुदाय तथा नगरों की संरचना

- 4.4.1 मध्यकालीन भारत में नगरों एवं कस्बों का विकास : प्रकृति तथा वर्गीकरण
- 4.4.2 मध्यकालीन भारत में जनांकिकी परिवर्तन
- 4.4.3 प्रशासन : दिल्ली सल्तनत एवं मुगल काल के अंतर्गत प्रशासन
- 4.4.4 समुदाय
- 4.4.5 नगरों की संरचना

4.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

4.6 सारांश

4.7 मुख्य शब्दावली

4.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

4.9 सहायक पाठ्य सामग्री

4.0 परिचय

मध्ययुगीन बादशाहों के भारत पर आक्रमण करने के अनेकानेक कारणों में भारत की आर्थिक समृद्धि भी एक कारण थी। आक्रमणकारियों ने धन संपदा को लूटा परंतु उत्पादन के साधनों को नष्ट नहीं कर सके। कृषि, उद्योग, व्यापार की स्थिति अच्छी रही।

तत्कालीन साहित्यिक स्रोत, विदेशी यात्रियों के वृत्तांत तथा व्यक्तिगत पत्र व्यवहार से उस समय की अर्थव्यवस्था तथा वाणिज्य, व्यापार की जानकारी मिलती है। उत्तर भारत में तुर्क शासन की स्थापना के कारण समाज और आर्थिक जीवन में दूरगामी परिवर्तन हुए। तुर्क शासकों ने ऐसे सामाजिक तत्वों को विकसित किया जिन्होंने पहले से चले आ रहे आर्थिक संगठन से कहीं अधिक श्रेष्ठ आर्थिक संगठन का निर्माण किया।

मध्यकाल में नगरीकरण की प्रक्रिया से नवीन नगरों एवं कस्बों की स्थापना से व्यापार एवं वाणिज्य में वृद्धि हुई। जनसंख्या वृद्धि ने मांग को परिवर्तित किया, जिससे उत्पादन क्षमता में वृद्धि हुई और उपभोग की संस्कृति से बाहर निकलकर लाभ के दृष्टिकोण को अपनाया गया।

उत्पादन के साधनों की वृद्धि ने नये और पुराने उद्योगों जैसे– वस्त्र उद्योग कृषि उद्योग, धातु विज्ञान तकनीक, हस्तशिल्प आदि को और अधिक विकसित किया। इन गतिविधियों को स्थापित करने का श्रेय तत्कालीन व्यापारिक समुदायों को जाता है, जिनके सहयोग के बिना उन्नत अर्थव्यवस्था संभव नहीं हो सकती थी।

प्रस्तुत इकाई में नए शासन की स्थापना के परिणामस्वरूप व्यापार एवं वाणिज्य के क्षेत्र में आए हुए परिवर्तनों का अध्ययन विस्तार पूर्वक करेंगे।

4.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- सल्तनतकालीन व्यापार एवं वाणिज्य से संबंधित जानकारी प्राप्त कर पाएंगे;
- मुगलकालीन व्यापार तथा वाणिज्य के विस्तार की विवेचना कर पाएंगे;
- मध्यकाल में आयात एवं निर्यात से अवगत हो पाएंगे;
- जलमार्ग एवं स्थलमार्गों की जानकारी प्राप्त कर पाएंगे;
- भारत में आने वाले अरब एवं यूरोपीय यात्रियों के व्यापार का विश्लेषण कर पाएंगे;
- मध्यकालीन व्यापार एवं वाणिज्य के विकास क्रम को समझ पाएंगे;
- मध्यकालीन व्यापार वाणिज्य में विनिमय के साधनों को जान पाएंगे;
- 'मुद्रा प्रणाली' के विकास क्रम को समझ पाएंगे;
- मध्य कालीन भारत में नगरीकरण की प्रक्रिया को समझ पाएंगे;
- नगरों के विकास की प्रक्रिया से अवगत हो पाएंगे;
- नगरों की संरचना के बारे में जानकारी प्राप्त कर पाएंगे;
- मध्यकालीन भारत में 'जनांकिकी परिवर्तनों' का अध्ययन कर पाएंगे;
- शहरों एवं कस्बों के विकास से अवगत हो पाएंगे।

4.2 व्यापार एवं वाणिज्य : सल्तनत एवं मुगल काल में व्यापार का विस्तार

सल्तनत काल के दौरान देश के आर्थिक संसाधनों के संबंध में विस्तृत विवरण उपलब्ध नहीं है और इस कमी को पूरा करने के लिए 16वीं सदी के अंत में लिखी 'आइने–अकबरी' में 'अबुल फजल' द्वारा दिए गये विवरणों की सहायता ली जा सकती है।

टिप्पणी

इरफान हबीब के मतानुसार "पहले की सामंती अर्थव्यवस्था अब शहरी अर्थव्यवस्था में परिवर्तित हो गई।"

आंतरिक व्यापार

सल्तनतकालीन आंतरिक व्यापार एवं वाणिज्य अत्यंत विस्तृत था। स्थल एवं जलमार्ग दोनों से व्यापार किया जाता था। व्यापारियों के काफिले एक स्थान से दूसरे स्थान तक बाजारों में माल पहुंचाते थे। 'मुल्तान, लाहौर, दिल्ली और देवगिरी जैसे नगरों में विभिन्न वस्तुओं की बड़ी–बड़ी मंडियां थी, जहां से माल गांवों एवं कस्बों में पहुंचता था। बैलगाड़ियां, घोड़े, खच्चर व जानवरों द्वारा तथा कुछ राज्य नावों व जहाजों के माध्यम से माल एक मंडी से दूसरी मंडी तक भेजते थे। इब्नबतूता ने कुछ व्यापारिक केंद्रों के संदर्भ में उल्लेख किया। "कालीकट, खम्भात और भड़ौच उन्नतशील व्यापार के केंद्र थे।"

दिल्ली सल्तनत के शासकों ने व्यापार एवं वाणिज्य को बढ़ावा दिया। उनकी आर्थिक नीति के परिणामस्वरूप सल्तनत राजधानी दिल्ली से दूर–दूर तक व्यापारिक एवं व्यवसायिक केंद्रों को सुरक्षित मार्गों से जोड़ती गई। लोदी शासक स्वयं व्यापारी थे।

प्रमुख व्यापारिक केंद्र एवं उद्योग

यहां सल्तनतकालीन व्यापारिक केंद्र और उद्योगों के बारे में वर्णन करेंगे जो उस समय प्रचलित थे और जो उस समय की अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ता प्रदान करते थे।

(i) वस्त्र उद्योग– सल्तनत काल में वस्त्र उद्योग अत्यंत उन्नत था। सूती, ऊनी, रेशमी तीनों प्रकार के वस्त्र बनाये जाते थे। 'अमीर खुसरो' ने 'खजाइनुल फतुह' में लिखा है कि दिल्ली में 'दारुल' 'अदल' में प्रत्येक प्रकार का कपड़ा किरपास 'हरीर' शीत तथा ग्रीष्म में पहनने के लिए बिहार से गुले बकावली, शीर, गलीम, जुज देवगिरी, महादेव नगरी सभी बिकते थे। प्रमुख व्यापारिक केंद्रों में गुजरात, बंगाल, कश्मीर, ढांका, सुनागांव, देवगिरी आदि थे।

(ii) धातु उद्योग– सल्तनत काल में धातुओं को पिघलाकर, उन्हें ढालकर तरह–तरह की मूर्तियां, हथियार, बर्तन एवं आभूषण, सिक्के बनाये जाते थे।

(iii) पत्थर एवं ईंट उद्योग– अमीर खुसरो ने कहा है "भारतीय शिल्पकारों की तुलना के शिल्पकार नहीं मिलते तथा उन्हें सुल्तानों का आश्रय प्राप्त था।" अलाउद्दीन खिलजी के यहां 70,000 शिल्पकार व मजदूर कार्य करते थे। फिरोजशाह तुगलक ने तो 4,000 दासों को शिल्पकारी सीखने में लगाया।

(iv) कागज उद्योग– कागज का उपयोग शाही फरमान, हिसाब किताब, भू–राजस्व तथा प्रशासनिक आदेश एवं पुस्तकों की प्रतिलिपि तैयार करने के लिए होता था। अमीर खुसरो उल्लेख करता है कि 'शामी कागज' का प्रयोग होता था। 'बंगाल' कागज उद्योग के लिए जाना जाता था।

(v) चीनी उद्योग– मध्य युग में गन्ने का उत्पादन विशाल पैमाने पर होता था। इसके कारण चीनी उद्योग भी काफी विकसित था 'बंगाल' में शक्कर का उत्पादन इतना अधिक था कि चीनी का निर्यात भी किया जाता था। 'ताड़' से भी शक्कर बनाने का प्रचलन था।

टिप्पणी

(vi) चमड़ा उद्योग– इस कार्य में एक विशिष्ट वर्ग लगा हुआ था। चमड़े का उपयोग जूते, तलवार की म्यानें, पुस्तकों की जिल्द एवं 'मश्क' व सिंचाई हेतु 'पुर' बनाये जाते थे। 'गुजरात' में चमड़े की चटाई पर पशु पक्षियों के चित्रों की कढ़ाई की जाती थी।

(vii) इत्र उद्योग– सल्तनत काल में इत्र तथा सुगंधित तेल का बहुत प्रचलन था। 'कन्नौज, जौनपुर, गाजीपुर' आदि इत्र के लिए प्रसिद्ध थे।

अन्य उद्योग– अन्य उद्योगों में मदिरा उद्योग, तेल उद्योग, लकड़ी उद्योग, हाथी दांत का उद्योग, जूट, केसर, अफीम, नील, बारुद उद्योग भी उन्नतिशील थे।

प्रमुख व्यापारिक केंद्र– सल्तनकालीन प्रमुख व्यापारिक केंद्रों में मुल्तान, लाहौर, थट्टा, दिल्ली, देवल, गुजरात, देवगिरी, बंगाल, आगरा, बनारस थे जहां पर वस्तुओं का उत्पादन होता था।

सल्तनतकालीन व्यापार एवं उद्योग धंधों का अवलोकन करने पर यह कहा जा सकता है कि भारतीय व्यापार विकसित श्रेणी का था एवं उन्नतिशील था। इसके लिए तत्कालीन शासकों के द्वारा प्रयास किये गये।

बाह्य व्यापार

सल्तनतकाल में विदेशी व्यापार जल एवं थल मार्ग दोनों से होता था। जलमार्ग से पश्चिमी देशों अफ्रीका, चीन, मलाया, पूर्वी द्वीपसमूह और श्रीलंका से होता था। भारतीय माल लाल सागर से होते हुए मिश्र और 'फारस' की खाड़ी के मार्ग से बगदाद एवं 'दमिश्क' पहुंचता था। खंभात, भड़ौच, गोवा, कालीकट प्रमुख बंदरगाह थे। समुद्री व्यापार पर अरब और तुर्की व्यापारियों का एकाधिकार था।

(क) निर्यात– भारत से वस्त्र, अनाज, तेल, बीज, चावल, चीनी, नील, अफीम, मसाले और पशुओं की खाल निर्यात होती थी। मलमल अरब व ईरान को एवं अफीम बर्मा, जावा, चीन, मलाया को निर्यात होती थी। डॉ. श्रीवास्तव ने लिखा है– "भारत का बाह्य जगत से घनिष्ठ व्यापारिक संबंध था।"

(ख) आयात– भारत में बहुमूल्य धातु, कीमती पत्थर, पारा, सिंदूर आदि वस्तुओं का आयात होता था। चीन, जापान तथा अन्य देशों से सोना और ईरान से 'मणिक' व रत्न भारत में आयात होते थे। शीशा, ऊनी वस्त्र और मखमल यूरोप से, घोड़े अरब से, मंगाये जाते थे। इस समय के प्रसिद्ध बंदरगाह देवल, कैम्बे, थाना, कालीकट आदि थे।

मुगल काल में व्यापार का विस्तार– हमारी आर्थिक समृद्धि का आधार प्राचीन काल से चला आ रहा है। यही भारत की आर्थिक संपन्नता का प्रमुख कारण था। सल्तनत कालीन अस्थिरता के बावजूद भी यह उन्नतिशील रहा। मुगल शासकों की केंद्रीयकृत शासन प्रणाली ने इसे और भी प्रतिष्ठित किया। मुगल काल में आंतरिक एवं बाह्य व्यापार उन्नत अवस्था में था।

मुगल काल के प्रमुख व्यापार

मुगल काल के प्रमुख उद्योग इस प्रकार थे–

(i) वस्त्र उद्योग– इस काल का प्रमुख उद्योग वस्त्र उद्योग था। आगरा, बनारस, जौनपुर, पटना, बुरहानपुर, लखनऊ वस्त्र उद्योग के प्रमुख केंद्र थे। बंगाल, ढाका रेशम, मलमल के लिए जाना जाता था। जहांगीर ने अमृतसर में ऊनी कालीन तथा शॉल बनाने का उद्योग स्थापित किया। पंजाब, उत्तर प्रदेश में कढ़ाई का काम होता था। फतेहपुर सीकरी, अलवर और जौनपुर में कालीन बनाये जाते थे।

(ii) हथियार निर्माण उद्योग– इन उद्योगों में तलवार, तीर, धनुष, भाला, बर्छी तथा बंदूक बनाये जाते थे। इस उद्योग के लिए पंजाब एवं सोमनाथ प्रसिद्ध थे। 'मीर फतहल्ला शीराजी' ने 'तोडदार' बंदूकों का आविष्कार किया।

(iii) रंगाई उद्योग– इस काल में स्त्री एवं पुरुषों को रंगीन वस्त्रों को पहनने का शौक था इसलिए रंगाई उद्योग प्रसिद्ध था। इसके लिए 'मछली पट्टम' प्रसिद्ध था।

अन्य उद्योग– चर्म उद्योग– गुजरात, उत्तर प्रदेश, आगरा, कानपुर आदि क्षेत्रों में विकसित था।

- इत्र सुगंधित तेल– जौनपुर, गुजरात, दिल्ली।
- कागज उद्योग– यालकोट, गया, कश्मीर, दिल्ली, शहजादपुर।
- जहाज एवं नौका निर्माण भी इस समय होने लगा था।
- आभूषण उद्योग– बीदर
- कांच उद्योग– फतेहपुर सीकरी, बरार, बिहार
- समुद्र से मोती निकालना, नमक उद्योग भी विकसित था। लकड़ी से वस्तुएं बनाने का कार्य देश के सभी भागों में प्रचलित था।

आंतरिक व्यापार– मुगल काल में आंतरिक व्यापार नदियों तथा सड़कों से होता था। जिसमें बैलगाड़ियों तथा ऊंट गाड़ियों का उपयोग किया जाता था। नदियों में नावों के द्वारा व्यापार किया जाता था। आगरा, जौनपुर, दिल्ली, सूरत, भड़ौच, अहमदाबाद, पटना, लाहौर, मुल्तान प्रमुख व्यापारिक केंद्र थे। इन शहरों में बड़े–बड़े बाजार थे। देश के सभी क्षेत्रों से वस्तुओं को वितरित किया जाता था। जैसे– कश्मीर से फल, शराब, ऊनी शॉल तथा कच्चा रेशम आदि। व्यापारी वर्ग डाकुओं तथा जंगली जानवरों के भय से काफिलों के रूप में एक स्थान से दूसरे स्थान को माल भेजते थे। टॉड ने लिखा है कि इन काफिलों में इतने अधिक व्यापारी तथा सामान हो जाता था कि सामान ढोने के लिए 40,000 बैल लगाये जाते थे। शासकों ने राहगीरों की सुरक्षा के लिये नियम बनाये एवं सड़कों का निर्माण किया। विश्राम गृह और कुएं खुदवाये जिससे एक स्थान से दूसरे जाना आसान हो गया।

विदेशी व्यापार– मुगल काल में चीन, जापान, नेपाल, फारस, मध्य एशिया, अरब और लाल सागर के बंदरगाहों तक तथा पूर्वी अफ्रीका से भी भारत का व्यापार होता था। यूरोप एवं यूरोप के देशों में भारतीय वस्तुओं की मांग थी। काली, मिर्च, नील, अफीम, शोरा, मसाले, चीनी रेशम, नमक, सुहागा आदि वस्तुएं विदेश निर्यात की जाती थीं। विदेशों से आयातित की जाने वाली वस्तुओं में घोड़े, साजी धातु, रेशम, हाथी दांत, मूंगा, रेशमी वस्त्र, मखमल, इत्र, चीनी बर्तन आदि प्रमुख थे। सूती कपड़े की मांग इटली,

टिप्पणी

फ्रांस, इंग्लैण्ड और जर्मनी में अधिक थी। भारत में प्रमुख व्यापारिक नगरों में सूरत, भड़ौच, वसीन, चोल, मछलीपट्टम थे। इन क्षेत्रों में समुद्री रास्तों से व्यापार होता था।

मुगल काल के विदेशी व्यापार की प्रमुख विशेषता थी भारत में यूरोपियन्स का व्यापारी के तौर पर आगमन जिससे प्रारंभ में यूरोपीय देशों से व्यापार में बढ़ोतरी हुई।

इस प्रकार भारतीय व्यापार और वाणिज्य यूरोपीय व्यापार की तरह उन्नत था। इसका प्रभाव तत्कालीन शासकों की शानो–शौकत वाली जीवन प्रणाली से प्रकट होता है।

मुगल काल में निर्यात एवं आयात

निर्यात– मुगल काल में अनाज, तेल, बीज, चावल, मसाले, चमड़ा और लोहे की वस्तुएं बाहर भेजी जाती थीं। अफीम चीन, जापान, जावा और फारस को निर्यात की जाती थी। कलसी शोरा यूरोप को, चीनी काबुल, फारस को, यूरोप को चावल निर्यात किया जाता था।

आयात– सोना, चांदी, तांबा, मूंगा, शराब आयात की जाने वाली वस्तुएं थीं। सोना–पूर्वी द्वीप समूह से, मोती, रत्न फारस से, घोड़े तुर्किस्तान, ईरान से, सूखे मेवे, फल, अफगानिस्तान व मध्य एशिया से, हिमालय के राज्यों से कस्तूरी एवं अन्य वस्तुएं आयात की जाती थीं।

मुगलकालीन व्यापार एवं वाणिज्य तत्कालीन आर्थिक समृद्धि को स्पष्ट करता है। एक अंग्रेज विद्वान ने लिखा है– "यूरोप एशिया को धनिक बनाने के लिए प्रयासरत था।"

4.2.1 मध्यकालीन भारत में व्यापार की संरचना एवं विस्तार

मिश्रित संस्कृतियों के उत्थान से अर्थव्यवस्था के स्वरूप में भी भारतीय और तुर्की व्यापारिक संरचना का जन्म हुआ। जिससे आर्थिक गतिविधियों को नया आयाम मिला। नये स्वरूप का आर्थिक ढांचा 1206 से 1526 और 1526 से 1857 तक चलता रहा।

(क) व्यापार का स्वरूप– मध्यकालीन भारत में अपने बुनियादी जीविकोपार्जन के लिए लोग अनेक प्रकार के आर्थिक क्रियाकलाप करते थे। उनके कामों का दायरा खेती–बाड़ी से लेकर कारीगरी के उत्पादनों, व्यापार और वाणिज्य तथा इनसे संबंधित वित्तीय सेवाओं तक विस्तृत था। इस अवधि के दौरान इन कार्य कलापों में लगातार परिवर्तन होते रहे।

मध्यकाल में भारत में आंतरिक एवं बाह्य व्यापार विकसित था। आंतरिक व्यापाार का विकास स्थानीय, प्रादेशिक और अन्तर प्रादेशिक स्तर पर था। इस कालावधि में व्यापारिक गतिविधियों में तेजी से वृद्धि हुई।

(ख) व्यापारिक समुदाय– भारत में प्राचीन काल से ही व्यापारियों और महाजनों के विकासशील वर्ग एवं व्यापार की पुरानी परंपरा रही है। इस काल में जैन, मारवाड़ी, गुजराती, बनिये एवं बोहरा का उल्लेख मिलता है, मुसलमान व्यापारी समुद्री व्यापार करते थे, थोक व्यापारियों में सर्राफा, गुजाश्तो, साहूकारों, दलालों तथा दुकानदारों के अलग समूह थे।

भारत के विभिन्न भागों में व्यापारी समुदायों के बारे में हमें बहुत कम ज्ञान है। गुजरात में व्यापार की एक सुस्थापित परंपरा रही थी और वहां भारतीय तथा विदेशी दोनों मूल के व्यापारी समुदाय रहा करते थे। मिश्र निवासी शिहाबुद्दीन कामरूनी जिसके पास कई पोत थे। इसके अतिरिक्त सूरत के व्यापारी वीर जी बोहरा अत्यधिक धनी थे।

आगरा, दिल्ली, बालामोर में धनी व्यापारी रहते थे। इनका प्रशासनिक क्षेत्रों में भी योगदान रहता था। इसके अलावा बंमारे व्यापारी जो माल को एक स्थान से दूसरे स्थान पहुंचाने का कार्य करते थे। व्यापारिक गतिविधियों में 'दलाल' वर्ग का भी योगदान था।

(ग) बैंकिंग प्रणाली– मध्य काल में बैंकिंग प्रणाली का वर्तमान स्वरूप नहीं था। बैंकिंग गतिविधियों के लिए साहूकारों, महाजनों एवं सर्राफों का उल्लेख आता है जो बिना किसी लिखा पढ़ी के धन देने का कार्य करते थे। इसका वर्णन "खुलासत–उल–तबारीख" के लेखक सुजान राय करते हैं।

यह वर्ग जरूरतमंदों के हिसाब से उन्हें ऋण देने का कार्य करता था। मध्यकालीन शासकों के संदर्भ में कहा जाता है कि व्यापार वृद्धि के लिए वे व्यापारी वर्ग को ऋण देकर सहायता करते थे। ऋण की दरें अलग–अलग होती थी। ये 6 से 12 प्रतिशत तक नगर क्षेत्रों में एवं तटीय क्षेत्रों में 18 से 36 प्रतिशत तक होती थी। व्यवस्थित बैंकिंग प्रणाली नहीं होने के कारण ऋण लेने वाला समय पर ऋण नहीं चुका पाता था तो उसकी खेती, संपत्ति ले ली जाती थी एवं वे आर्थिक शोषण से कभी मुक्त नहीं हो पाते थे।

हुंडी– हुंडी या 'विनिमय–पत्र को आधुनिक' चेक एवं 'ड्राफ्ट' भी कहा जा सकता है। यह मध्यकालीन गतिविधि थी। यह धन का स्थानांतरण करने की आसान विधि थी। "एक स्थान पर निश्चित समय पर भुगतान करने का वचन दिया जाता था।" इन हुंडियों में राशि, क्षेत्र एवं धन देने वाले व्यक्ति का उल्लेख होता था और वह व्यक्ति इन हुंडियों पर लिखी गई राशि को प्राप्त कर लेता था। यह प्रणाली धन का स्थानान्तरण करने की सबसे सुरक्षित और सुविधा वाली प्रणाली थी। जो मध्यकाल में अत्यधिक प्रचलित थी।

बीमा– यदि किसी विषम परिस्थिति में माल को नुकसान पहुंचता था तो उनके स्वामित्व वाली फर्मों को उस माल की क्षतिपूर्ति करनी पड़ती थी। समुद्रीय क्षेत्र की दर आंतरिक व्यापार की तुलना में अधिक होती थी।

'ओवोल' एक निवेश प्रणाली थी इसके अंतर्गत उधार लिया हुआ धन किसी विशिष्ट स्थान के लिए प्रस्थान कर रहे जहाजों में सामग्री के रूप में रख दिया जाता था।

राज्य की व्यापार और वाणिज्य नीतियां– मध्य काल में आंतरिक एवं विदेशी दोनों व्यापार संचालित थे जिसकी वृद्धि के लिए शासकों द्वारा विभिन्न स्तर पर प्रयास किये गये। सल्तनत कालीन शासकों ने व्यापार को अनेक प्रकार से प्रोत्साहन एवं संरक्षण प्रदान किया एवं पुलों, कुओं, सरायों का निर्माण कराया तथा व्यापारियों को सभी प्रकार की सुविधाएं दी। व्यापार मार्ग को सुरक्षित किया तथा निर्विरोध यातायात के लिए कड़े कदम उठाए। अलाउद्दीन खिलजी ने बाजार नियंत्रण व्यवस्था को सफल बनाने के लिए व्यापारी वर्ग को राज्य की सेवा में शामिल किया। फिरोज तुगलक ने व्यापारियों पर से 'दलाल–ए–बजारहा' तथा 'चुंगी–ए–गल्लाह' को समाप्त कर दिया।

टिप्पणी

शेरशाह के शासन काल में विभिन्न नगरों को अच्छी–अच्छी सड़कों से जोड़ा एवं अनेक सड़कों का निर्माण किया।

मुद्रा व्यवस्था– सल्तनत काल में इल्तुतमिश ने पहली बार सिक्कों का मानकीकरण किया। उसने चांदी के 'टंके' व तांबे के 'जीतल' जारी किये। मोहम्मद तुगलक ने 200 ग्रेन का सोने का सिक्का जारी किया जिसे 'इब्नबतूता' ने 'दीनार' कहा है। 'फिरोज तुगलक ने चांदी का 'शशगनी' सिक्का चलाया। बहलोल लोदी ने बहलोल सिक्का चलाया जो मुगल काल में भी चलता रहा।

अबुल फजल के अनुसार मुगल काल में लगभग 42 टकसालों से तांबे के सिक्के निकाले जाते थे। 14 टकसालों में चांदी का रुपया निर्मित किया जाता था। 4 टकसालों में सोने के सिक्कों को ढाला जाता था। मुगल काल में मौद्रिक व्यवस्था पूरी तरह सुव्यवस्थित थी। शेरशाह सूरी द्वारा चांदी का 'रुपया' चलाया गया। मुगलों ने अशर्फी, मुहर, स्वर्ण मुद्राएं जारी कीं। चांदी का दाम चलाया। छोटी–मोटी खरीदी के लिए कोड़ियों का भी उपयोग किया जाता था।

चुंगी तथा अन्य शुल्क– आयातों एवं निर्यातों पर 3.5% चुंगी लेते थे। सोना चांदी पर 2% चुंगी लेते थे। औरंगजेब के काल में मुसलमान व्यापारियों से 2.5% और हिंदू व्यापारियों से 5% चुंगी शुल्क वसूला जाता था। चुंगी करों को 'तमगा' या 'जाकर' नामों से जाना जाता था। ये कर राज्य की आय के स्रोत होते थे। सल्तनत काल में व्यापारियों से भी विभिन्न प्रकार के कर वसूले जाते थे। 'फतुहात–ए–फिरोजशाही' के अनुसार व्यापारियों से '36' कर लिए जाते थे।

परिवहन एवं संचार– मध्य काल में व्यापार के आवागमन हेतु जल मार्ग एवं स्थल मार्ग दोनों प्रकार के साधनों का उल्लेख मिलता है। आंतरिक व्यापार गांव से शहर के बीच अथवा एक शहर से दूसरे शहर के बीच विकसित था। इब्नबतूता के अनुसार मध्यकाल का व्यापार अत्यधिक विकसित अवस्था में था। मांसरेट का भी यही कहना है कि "देश का आंतरिक व्यापार भी पर्याप्त विकसित था और व्यापारी बिना किसी रुकावट के एक स्थान से दूसरे स्थान पर माल ले जाते थे। आंतरिक व्यापार को समृद्ध बनाने के लिए मध्यकालीन शासकों ने यातायात व्यवस्था और सड़कों की सुरक्षा का पूर्ण प्रबंध कर रखा था।"

सारांश में यह कहा जा सकता है कि एशिया तथा यूरोप के अनेक देशों में भारतीय व्यापार उन्नतिशील था। इस आर्थिक समृद्धि का आधार भारतीय उद्यम एवं तत्कालीन शासकों द्वारा व्यापारिक गतिविधियों में किया गया सुधार था।

4.2.2 जलमार्गों तथा स्थल मार्गों द्वारा व्यापार

मध्य काल में जल मार्ग के द्वारा आंतरिक एवं बाह्य व्यापार किया जाता था। इस बात के प्रमाण तत्कालीन लेखकों एवं भारत आये हुए विदेशी यात्रियों के वृतांतों से पता चलता है।

आंतरिक व्यापार तथा जलमार्ग– आंतरिक व्यापार नदियों से होता था तथा बड़ी–बड़ी नावें उनमें चलती थीं। बड़े–बड़े नगर नदियों से जुड़े थे जहां क्रय–विक्रय तथा वस्तुओं का आदान–प्रदान होता था। कश्मीर, सिंध और बंगाल में माल नदियों

द्वारा जाता था। लाहौर और मुल्तान नदी बंदरगाह थे जहां पर नावों के द्वारा पट्टा वस्तुएं भेजी जाती थीं। यमुना एवं गंगा के रास्ते 300 से 500 टन तक का माल पटना व बंगाल भेजा जाता था। दिल्ली से आगरा के लिए नाव चलती थी। पटना और बंगाल के बीच प्रमुख नदी मार्ग गंगा नदी थी जहां अनेक नावें चलती थीं। पीटर मुंडी एवं मेनरिक नौकाओं के बेड़े के बारे में जानकारी देते हुए कहते हैं कि "सिंधु, गंगा, यमुना, चंबल नदियों से भी जल मार्ग द्वारा व्यापार होता था।"

जल मार्गों के माध्यम से व्यापार करना आसान था तथा इसमें धन एवं समय दोनों की बचत होती थी।

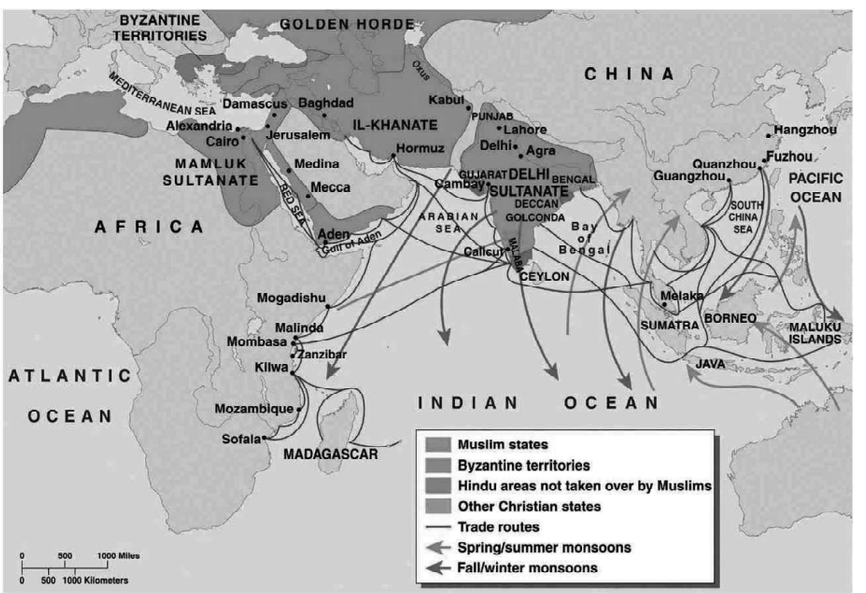

जलमार्गों द्वारा बाह्य व्यापार– जहाजों द्वारा व्यापार हमें प्राचीन काल से ही दृष्टिगोचर होता है। यह व्यापार जहाजों के माध्यम से होता था। मालाबार तथा विजयनगर राज्य में नारियल, सुपारी, इलायची, कीमती पत्थर, मसाले निर्यात होते थे। समुद्री व्यापार पश्चिमी देशों, अफ्रीका चीन, मलाया, पूर्वी द्वीप समूह और श्रीलंका से होता था। भारतीय माल लाल सागर के मार्ग से मिश्र और फारस की खाड़ी से बगदाद व दमिश्क को भेजा जाता था और भूमध्यसागर के मार्ग से इटली के बाजारों में पहुंचता था।

इब्नबतूता ने भड़ौच, गोवा, कालीकट बंदरगाहों को उन्नतिशील व्यापार केंद्र होना लिखा है। 'अब्दुर्रज्जाक' और 'बारबोसा' ने कालीकट में होने वाले व्यापार का उल्लेख किया है। समुद्री व्यापार पर अरब और तुर्की व्यापारियों का एकाधिकार था। निकोली कोटी के अनुसार "अदन के हिंदू सौदागरों के पास चालीस से भी अधिक जहाज थे।"

मुगल काल में विदेशी व्यापार मुख्य रूप से जलमार्ग से होता था। बंगाल में प्रसिद्ध बंदरगाह 'हुगली' व चटगांव थे। बर्नियर ने 'सूरत' को भी प्रमुख बंदरगाह कहा है जहां अरब व फारस के जहाज माल लेकर आते थे। मुगल काल में चीन, जापान, बर्मा से व्यापार होता था। 'आइन–ए–अकबरी' में जहाजों के निर्माण, जहाजी व्यापार का उल्लेख मिलता है।

टिप्पणी

'वास्कोडिगामा' द्वारा 1498 में यूरोप से भारत तक के समुद्री मार्ग की खोज करके उसने समुद्री व्यापार के क्षेत्र में क्रांति ला दी। धीरे–धीरे अन्य यूरोपियन्स के साथ भारत के व्यापारिक संबंध जलमार्ग से घनिष्ठ हुए।

प्रमुख बंदरगाह– समुद्री जल व्यापार में बंदरगाहों द्वारा महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन होता था। मध्यकाल में भड़ौच, गोवा, कालीकट, हुगली, चटगांव बंदरगाह थे। इन पर मुगलों का नियंत्रण था परंतु कालानन्तर में यहां से यूरोपियन्स का व्यापार प्रमुख रूप से होने लगा। गोवा, भटकल के बंदरगाह विजयनगर के शासकों के अधीन थे। बाद में इन पर पुर्तगालियों का अधिकार हो गया। इसके अलावा कोचीन, ओरमुज भी प्रमुख व्यापारिक केंद्र थे जिनसे बाह्य क्षेत्र का व्यापार होता था।

मछली पट्टनम, नागपट्टनम, सतगांव, श्रीपुर मलष्का भी प्रमुख बंदरगाह थे। ये भारतीय और चीनी समुद्रों के बीच के प्रमुख व्यापारिक केंद्र थे।

इब्नबतूता, बर्नियर, अब्दुर्रज्जाक, बारबोसा इन महत्वपूर्ण बंदरगाहों की समृद्धता का वर्णन अपने वृतांतों में करते हैं।

स्थल मार्गों द्वारा आंतरिक व्यापार– मध्य काल में आंतरिक व्यापार, स्थल मार्गों के द्वारा किया जाता था। ये व्यापार गांव से शहर के बीच अथवा एक शहर से दूसरे शहर के बीच होता था। तत्कालीन शासकों द्वारा व्यवस्थित सड़कों का निर्माण किया गया जो बड़े–बड़े नगरों तक जाती थीं। व्यापारियों की सुविधाओं के लिए रास्तों को सर्व सुविधा युक्त किया गया। फिरोज तुगलक द्वारा नवीन नगरों का निर्माण एवं सरायों का निर्माण किया गया। मुल्तान, लाहौर, दिल्ली और देवगिरी जैसे नगरों में विभिन्न वस्तुओं की बड़ी–बड़ी मंडियां थी, जहां से माल कस्बों व गांवों में पहुंचता था। व्यापारियों को जगह–जगह चुंगी देनी पड़ती थी।

मध्यकालीन शासकों द्वारा सड़क मार्ग का भी विस्तार किया गया। 'दिल्ली से बंगाल, बदायुँ, कन्नौज, इलाहाबाद, बनारस तक के लिए व्यवस्थित सड़कों का जाल बिछाया गया। दिल्ली से एक मार्ग पटना, आगरा, कालपी, कड़ा, इलाहाबाद, बनारस होकर जाता था। उज्जैन से एक मार्ग होता हुआ खंभात तक जाता था। बाबरनामा एवं 'तारीखेमुबारकशाही' के लेखक अनेक व्यापारिक मार्गों का उल्लेख करते हैं।

मुगलकाल में यातायात के लिए सर्वप्रथम शेरशाह ने सड़कों के निर्माण पर ध्यान दिया। उसने "ग्रैण्ड ट्रंक रोड का निर्माण करवाया। इसे 'सड़क–ए–आजम' कहा जाता था। यह दक्षिण एशिया को जोड़ने वाली सबसे पुरानी और लंबी सड़क है। यह मार्ग बांग्लादेश के चटगांव से प्रारंभ होता हुआ लाहौर अफगानिस्तान तक पहुंचता था। इसके अलावा सोनार गांव से पेशावर तक आगरा से चित्तौड़ व बुरहानपुर से जोधपुर, लाहौर से मुल्तान तक मार्गों का निर्माण करवाया।" साम्राज्य की धमनियां 1700 सरायों का निर्माण करवाया। इस प्रकार आंतरिक व्यापार का क्षेत्र व्यापक था।

स्थलमार्गों द्वारा बाह्य व्यापार– भारत का स्थलमार्गों द्वारा व्यापार पश्चिमी मध्य एशिया, अफगानिस्तान, तिब्बत, नेपाल और भूटान से होता था। 'बाबर' अपनी आत्मकथा 'बाबरनामा' में भारत और काबुल के बीच घनिष्ठ व्यापारिक संबंधों की जानकारी देता है। बर्नियर ने भी भारत का मध्य एशिया व अफगानिस्तान से व्यापार का उल्लेख किया है। सोना, चांदी, तांबा, टिन, हींग, सूखे मेवे आदि का आयात किया जाता था।

बाह्य व्यापार के लिए लाहौर से काबुल तथा मुल्तान से कंधार तक का रास्ता था। काबुल बहुत बड़ा व्यापारिक केंद्र था जिसका वर्णन बाबर ने भी किया है। थल मार्ग बोलन दर्रे से होते हुए 'हिरात' को जाता था। खैबर दर्रे से बुखारा, समरकंद तक मार्ग था। कश्मीर की घाटियों से होते हुए यारकंद और खोतान होते हुए चीन जाता था। भारत में सेना की आवश्यकता की पूर्ति हेतु अरबी, इराकी, मध्य एशियाई घोड़ों का आयात सर्वाधिक होता था। थलमार्ग का प्रमुख केंद्र 'मुल्तान' था। यह क्षेत्र सभी विदेशियों के लिए प्रवेश द्वार था। बंगाल भी चीन और दक्षिण–पूर्व एशिया के देशों के साथ व्यापार करता था एवं कपड़ों का निर्यात तथा रेशम, मसाले आदि का आयात करता था।

4.2.3 अरब एवं यूरोपीय व्यापारियों की भूमिका

अरब एवं यूरोपीय व्यापारियों की भूमिका को क्रमशः इस प्रकार समझा जा सकता है–

अरब व्यापारी– इस्लाम की भूमि अरब, एशिया महाद्वीप के दक्षिण और पश्चिम दिशा में स्थित है। भारत के अरब से व्यापारिक संबंध प्राचीन काल से चले आ रहे थे। मध्य काल में इस्लाम के उदय ने इन गतिविधियों को और तेज कर दिया। जिसके प्रमाण अलबरुनी, सुलेमान, अल्मसूदी जैसे भारत आने वाले मुस्लिम यात्री देते हैं। अरबी भूगोल के जानकारों ने व्यापारिक नगरों का उल्लेख किया है जैसे– मुल्तान, खम्बात, रामेश्वर, उज्जैन, कालिंजर पेशावर आदि।

अरब व्यापारियों ने पश्चिम एशिया एवं दक्षिण–पूर्व एशिया के देशों तथा चीन के साथ भारतीय समुद्री व्यापार को विकसित किया। भारतीय व्यापारियों की उपस्थिति एवं बगदाद में अब्बासी खलीफा के दरबार में भारतीय वैद्यों और शिल्पकारों का स्वागत होने का प्रमाण मिलता है। 'मालाबार' में अरबी व्यापारियों के बसने का प्रमाण भी मिलता हैं शक्तिशाली राष्ट्रकूट शासकों ने, जिनका दसवीं सदी तक पश्चिमी भारत, मालवा एवं दक्षिण भारत पर दबदबा था, अरबी व्यापारियों का स्वागत किया।

'मार्कोपोलो' अरबी व्यापारियों के घोड़ों की चर्चा करता है। साथ ही वह भारत के उन व्यापारियों का उल्लेख भी करता है जिन्होंने अरबों के साथ मिलकर घोड़ों के व्यापार पर एकाधिकार जमा रखा था। अरब यात्री इब्न खुर्दाजबा ने भारत से बाहर जाने वाली वस्तुओं की सूची दी है। चंदन, जायफल, नारियल, कपड़े, हाथीदांत, मोती आदि वस्तुएं निर्यात होती थीं। आयातित वस्तुओं में गुलाबजल, खजूर, घोड़े, मूंगा, शराब इत्यादि थे।

मध्यकाल में मुस्लिम शासन की स्थापना के साथ अरब व्यापार में वृद्धि हुई और इन व्यापारियों को किसी खास प्रतिस्पर्धा का सामना नहीं करना पड़ा। लाल सागर, काहिरा और अलेक्जेंड्रिया तथा फारस की खाड़ी के समुद्री मार्गों पर इनका एकाधिकार था। यूरोपियन्स के आगमन ने इन्हें कड़ी व्यापारिक प्रतिस्पर्धा दी जिससे इनके व्यापार में कमी आने लगी। समुद्री तटीय क्षेत्रों पर यूरोपियन्स का पूर्ण अधिकार हो जाने के बाद इनका व्यापार भारत से लगभग समाप्त हो गया।

यूरोपीय व्यापारी– पंद्रहवीं शताब्दी में वास्कोडिगामा के नेतृत्व में पुर्तगालियों का आगमन (1498) भारतीय सामुद्रिक व्यापार के इतिहास में क्रांतिकारी परिवर्तन था। जिसने आगामी यूरोपीय शक्तियों का भारत आने का मार्गदर्शन किया। कालान्तर में इन शक्तियों

ने भारतीय व्यापार पर एकाधिकार स्थापित कर लिया। वह वर्ग केवल व्यापारिक वर्ग नहीं था बल्कि एक राजनीतिक इकाई भी थे जो अपने राष्ट्र का प्रतिनिधित्व भी कर रहे थे। अपनी नौ सेना के बल पर दुनिया के समस्त राष्ट्रों पर अपने व्यापारिक और राजनीतिक प्रभुत्व की स्थापना कर रहे थे। यहां प्रश्न यह है कि इनके आगमन से भारतीय व्यापार समृद्ध हुआ था या यह उसकी अवनति के क्रम की शुरुआत थी?

पुर्तगाली व्यापारी– पुर्तगाल यूरोप का प्रथम देश था जिसने भारत में प्रवेश किया। इसका श्रेय 'वास्कोडिगामा' को जाता है जिसने 20 मई, 1498 में कालीकट में अपना डेरा डाला। और पुर्तगालियों का उत्साहवर्धन किया। भारतीय शासक 'जमोरिन' के द्वारा उसका स्वागत किया गया किंतु तात्कालिक व्यापारिक शक्तियों द्वारा उनका विरोध भी किया गया।

1500 ई. में पेडो अल्बेयर्स क्रेबल के नेतृत्व में जहाजी बेड़ा आया परंतु अरब व्यापारियों ने उनके मार्ग को अवरुद्ध करने की कोशिश की। उसने अनुभव किया कि स्थानीय राजाओं के आपसी विवादों से व्यापारिक लाभ उठाया जा सकता है। वास्कोडिगामा 1502 में पुनः भारत आया। 1503 में अल्बुकर्क भारत आया। पुर्तगाल उसके द्वारा पूर्वी जगत के कालीमिर्च और मसालों के व्यापार पर एकाधिकार स्थापित करना चाहता था। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसने 'कोचीन' में 'दुर्ग' (फैक्ट्री) की स्थापना की।

व्यापारिक एकाधिकार को स्थापित करने हेतु स्थायी गवर्नर बनाने की योजना का क्रियान्वयन किया। 'फ्रांसिस डी अल्मीडा' को प्रथम गवर्नर के रूप में नियुक्त किया गया। उसने पुर्तगाली प्रभुसत्ता स्थापित करने की जिस नीति का अनुसरण किया उसे 'नील जल नीति' (Blue Water Policy) कहा जाता है। क्रमशः नीनो डी कून्हा, मोटीने अल्फांसो डीसूजा गवर्नर बनकर भारत आये। 1510 में पुर्तगालियों ने 'गोवा' को 'बीजापुर' से छीन लिया। इसके बाद दीव, कोचीन, मालाबार तट, नागपट्टनम आदि उनके अधिकार क्षेत्र में आ गये। यहां से वे लौंग एवं कालीमिर्च का व्यापार करते थे।

पुर्तगालियों द्वारा 'कार्टेज' (Cartage) (परमिट) जारी किया। यदि कोई व्यक्ति भारत से बाहर व्यापार करना चाहता था। तो उन्हें 'कार्टेज' लेना आवश्यक था। जिसके लिए शुल्क देना आवश्यक था। यह पहली बार 1502 में जारी किया गया।

लगभग एक शताब्दी तक पुर्तगालियों का प्रभुत्व स्थापित रहा, परंतु भारत में यूरोप की अन्य व्यापारिक जातियों के आगमन से पुर्तगाली वैभव नष्ट होने लगा। इसके पीछे अनेक तत्वों का समावेश था जैसे प्रशासन में भ्रष्टाचार, धार्मिक असहिष्णुता की नीति, दक्षिण अमेरिका में रुचि का बढ़ना, अंग्रेजों का आगमन आदि तत्वों ने भारत में उनके व्यापारिक एकाधिकार को समाप्त कर दिया।

डच व्यापारी– भारत आने वाली दूसरी प्रमुख शक्ति 'डच' थे। पुर्तगालियों के साथ 1539 में एक डच व्यापारी 'लिसकोन्टेस' भारत आया, जिसने 12 वर्ष भारत में रहकर व्यापार की अपार संभावनाओं पर शोध कर पुस्तक का प्रकाशन किया। उसने भारत से व्यापार करने का दृढ़ निश्चय किया। इस प्रकार अनेक डच यात्रियों द्वारा समय–समय पर भारत की यात्रायें की गईं तथा निष्कर्ष के तौर पर 1602 में डच कंपनी को एक साथ मिलाकर 'संयुक्त ईस्ट इंडिया कंपनी' (वेरी गिदे ओस्त्र इण्डिशे कंपने) की स्थापना

की। हालैण्ड द्वारा उसी को 21 वर्ष के अधिकार के साथ व्यापार, किले बनाने, भारतीय शासकों से संबंध स्थापित करने तथा संधियां करने का अधिकार मिला।

डचों ने व्यापारिक हितों की पूर्ति के लिए अपनी प्रभुत्व स्थापना के प्रयास शुरू किये और मछलीपट्टनम, निजामपट्टम देवेनमपटनम, कालीकट, पुलीकट, कोचीन, चिन्सुरा इत्यादि क्षेत्रों पर अधिकार स्थापित कर लिया। ये मसाले, वस्त्र, नील, शोरा सिल्क का निर्यात करते थे। उन्होंने इसके बल पर चुंगी वसूल की।

अम्बोएना में जिस क्रूरता के साथ डचों ने अंग्रेजों से व्यवहार किया उससे अंग्रेजों और डचों के बीच शत्रुता उत्पन्न हो गई। यह शत्रुता 1759 में वेदरा युद्ध (डच–अंग्रेज) तक चलती रही। इस युद्ध में डचों ने अंग्रेजी नौ सैनिक शक्ति के समक्ष घुटने टेक दिए। 1795 में वे पूर्ण रूप से भारत से निष्कासित कर दिये गये।

अंग्रेज व्यापारी– पूर्व की व्यापारिक कंपनियों से प्रभावित होकर अंग्रेजों ने भी अपने कदम भारत की तरफ बढ़ाये। उनका उद्देश्य भौगोलिक, धार्मिक तथा व्यापारिक था।

'टामम स्टीफेंस' प्रथम अंग्रेज था जिसने भारत में प्रवेश किया। 1581 में व्यापार के उद्देश्य से कंपनी की स्थापना की जिसे 'लोवाण्ट कंपनी' का नाम दिया गया। इसे स्थल मार्ग से व्यापार करने की अनुमति थी। महारानी एलिजाबेथ की अनुमति से 1600 ई. में 15 वर्षों के व्यापारिक एकाधिकार के साथ ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना की गई।

अंग्रेज व्यापारियों द्वारा मुगल शासकों से रियायतें लेकर व्यापार प्रारंभ किया गया। इस क्रम में कैप्टन हाकिन्स, सर टामस रो, प्रमुख थे। 'सूरत' में 1608 में प्रथम फैक्ट्री स्थापित की गई। और यह क्रम लगातार चलता रहा। मद्रास, बंगाल, हुगली आदि क्षेत्रों पर उनका अधिकार स्थापित हो गया।

1632 में गोलकुंडा के सुल्तान ने कंपनी को 'गोल्डन फरमान' जारी कर 500 पगोडा के स्थान पर अपने राज्य में स्वतंत्र रूप से व्यापार करने की अनुमति दी। औरंगजेब ने भी एक फरमान के द्वारा वार्षिक भुगतान के बदले कंपनी को बंगाल में सीमा शुल्क से मुक्त कर दिया। 1717 में फरुर्खशियर ने अंग्रेजों को बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा में मुक्त व्यापार के लिए आज्ञापत्र जारी किया। जिसे 'दस्तक' कहा गया। इसे कंपनी का 'मैगनाकार्टा' भी कहा जाता है।

इस प्रकार व्यापारिक सुविधाओं की प्राप्ति के साथ अंग्रेजों में राजनीतिक महत्वाकांक्षायें जाग्रत होने लगी। मुगल सल्तनत की कमजोर स्थिति से क्षेत्रीय शक्तियों के उदय के काल तक एवं उनके बीच की प्रतिस्पर्धा ने अंग्रेजों को भारत में राजनीतिक शक्ति के रूप में सुदृढ़ता प्रदान की और कालांतर में समस्त भारतीय शक्तियों को परास्त कर वे भारत के वास्तविक शासक बन गये।

डेन्स व्यापारी– ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना के पश्चात भारत में 'डेनमार्क' निवासी 'डेन्स' का आगमन हुआ। इन्होंने ट्रावणकोर (तमिलनाडु), सेराम्पोर (बंगाल) में अपने केंद्र स्थापित किये। ये भारत में अपनी स्थिति को सुदृढ़ नहीं कर सके अंततः अपनी भारतीय बस्तियां अंग्रेजों को 1845 ई. में बेचकर वापस चले गये। भारत में व्यापार की तुलना में धर्म प्रचार का इनका उद्देश्य अधिक था।

टिप्पणी

फ्रांसीसी व्यापारी– यूरोप से भारत आने वाले व्यापारियों में सबसे अंत में 'फ्रेंन्च' आये। व्यापारिक उन्नति की आकांक्षा ने उन्हें भी पूर्व में आने के लिए आकर्षित किया।

फ्रांस के राजा लुई 14 के मंत्री 'कोलबर्ट' ने भारत के साथ नियमित व्यापार के उद्देश्य से 1664 में "फ्रांसीसी ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना की। कंपनी के डायरेक्टर 'फ्रांसिस केरन' के द्वारा 1667 में कोचीन 1668 में, सूरत 1669 में, मुसलीपटट्म में व्यापारिक कोठियों की स्थापना करने में सफलता प्राप्त की। इसके पश्चात् 'फ्रांसिस मार्टिन' ने मद्रास के निकट 'पांडिचेरी' में फ्रांसीसी बस्ती की स्थापना की एवं 'फोर्ट लुई' दुर्ग का निर्माण कराया। हुगली के निकट चंद्रनगर (चिन्सुरा) में कोठी की स्थापना की गई।

फ्रांसीसी व्यापारियों ने भारतीय शासकों के साथ मिलकर अनेक रियायतें प्राप्त की एवं सिक्के ढालने का भी अधिकार प्राप्त कर लिया। धीरे–धीरे उनका उद्देश्य भारत में व्यापारिक एकाधिकार स्थापित करने के साथ राजनीतिक प्रभुत्व जमाने का भी हो गया। ड्यूमा एवं डूप्ले जैसे गवर्नरों ने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रयास की शुरुआत की। उनके व्यापारिक, राजनीतिक हित अंग्रेजों से जा टकराये। परिणाम प्रतिष्ठा के लिए कर्नाटक में संघर्ष की शुरुआत हुई। इस संघर्ष में कुछ शासक दर्शक बने और कुछ कठपुतली। इस प्रकार फ्रांसीसी शक्ति अंग्रेजों का मुकाबला करने में असमर्थ रहे। 1760 में 'वांडीवास' के युद्ध ने भारत में फ्रेंच शक्ति को समाप्त कर दिया।

अपनी प्रगति जांचिए

1. वास्कोडिगामा ने भारत तक के मार्ग की खोज कब की?
   (क) 1598 (ख) 1698
   (ग) 1498 (घ) 1600
2. ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना कब हुई?
   (क) 1600 (ख) 1664
   (ग) 1575 (घ) 1443
3. फ्रांसीसी 'ईस्ट इंडिया कंपनी' की स्थापना कब हुई?
   (क) 1664 (ख) 1667
   (ग) 1735 (घ) 1602
4. 'लिसकोल्टेनस' नामक व्यापारी जो भारत में आया, वह था–
   (क) डच (ख) अंग्रेज
   (ग) फ्रेंच (घ) पुर्तगाली
5. पुर्तगाल का भारत में प्रथम वाइसराय था–
   (क) अल्बुकर्क (ख) वास्कोडिगामा
   (ग) डी. अल्मीडा (घ) पेडो अल्बेयर्स

टिप्पणी

4.3 भारतीय व्यापारी एवं उनका वाणिज्यिक व्यवहार, विनिमय का माध्यम, मुद्रा, सिक्के एवं बैंकिंग

मध्यकालीन अर्थव्यवस्था को दो संस्कृतियों के मिलन ने प्रभावित किया। सदियों से चली आ रही भारतीय व्यापार एवं वाणिज्य की परंपरा में बदलाव स्पष्ट दिखाई देने लगा। प्रारंभिक तुर्क शासकों की अस्थिर सत्ता के कारण इस ओर उनका ध्यान आकृष्ट नहीं हुआ। सल्तनतकालीन महत्वाकांक्षी शासकों ने अपनी सैनिक क्षमता की वृद्धि के लिए व्यापार वाणिज्य के कुछ नये नियम बनाये। जिससे उनकी साम्राज्यवादी लालसा पूर्ण हो सके।

मुगल काल में आर्थिक नीतियों में परिवर्तन न कर उनमें सुधार के प्रयत्न किये गए एवं स्थिर सुदृढ़ प्रशासन की स्थापना कर व्यापारिक प्रक्रियाओं को नियमितता प्रदान की गई। उन्होंने सशक्त विनिमय के साधनों का विस्तार कर मुद्रा प्रणाली में वृद्धि की एवं उसके स्वरूप को नया आधार दिया। बैंकिंग प्रणाली के विकास ने व्यापारी वर्ग को नये व्यापार के लिए जोखिम उठाने के लिए प्रोत्साहित किया।

इन्हीं प्रयासों का प्रभाव जीवन के विभिन्न पहलुओं पर पड़ा और भारत की आर्थिक समृद्धि के चर्मोत्कर्ष का उदय हुआ।

4.3.1 भारतीय व्यापार एवं वाणिज्य

मध्यकालीन भारत अपने बुनियादी जीविकोपार्जन के लिए अनेक प्रकार के आर्थिक क्रियाकलापों पर निर्भर था। उनके साधनों में खेतीबाड़ी, कारीगरी, लघु कुटीर उद्योगों के साथ व्यापार और वाणिज्य की गतिविधियां शामिल थीं। समय के साथ आर्थिक गतिविधियों में परिवर्तन होता रहा। राज्य अपने अस्तित्व और विस्तार के लिए आर्थिक गतिविधियों में अपनी सहभागिता निभाते रहे। मध्यकालीन व्यापार एवं वाणिज्य के दो चरण हैं– प्रथम दिल्ली सल्तनत एवं द्वितीय मुगल सल्तनत।

(i) राज्य की व्यापार और वाणिज्य नीतियां– सल्तनतकालीन शासकों द्वारा व्यापार को अनेक प्रकार से प्रोत्साहन व संरक्षण प्रदान किया गया। उन्होंने यात्रियों की सुविधाओं के लिए पुलों, कुओं, सरायों का निर्माण किया। व्यापारिक मार्गों को सुरक्षित किया तथा उसे चोरों, डाकुओं से सुरक्षित किया एवं निर्विरोध यातायात के लिए कड़े कदम उठाये। व्यापारियों की समृद्धि के लिए व्यापारिक मार्गों की सुरक्षा के उचित प्रबंध किये।

(ii) परिवहन और संचार– गांवों से शहरों की ओर खाद्यान्नों तथा अन्य व्यापारिक माल को ले जाने का कार्य बंजारे करते थे। वे स्थल मार्ग से घोड़ों, बैलों द्वारा माल लाद कर इधर–उधर पहुंचाते थे। इसके अतिरिक्त बंजारे शाही सेनाओं के अभियानों में भी माल पहुंचाने का कार्य करते थे। बैलगाड़ियां व ऊँट परिवहन के मुख्य साधन थे। व्यापारी कारवां, काफिला तथा समूह बनाकर चला करते थे।

(iii) व्यापारी एवं महाजनों का वर्ग– उत्तरवर्ती काल में व्यापारी वर्ग शक्ति संपन्न थे। मुसलमान व्यापारी समुद्री व्यापार करते थे। इसके अलावा उत्तर पश्चिम क्षेत्र में बोहरा व्यापारी, दक्षिण भारत में सेट्टी या चेट्टी व्यापारी आसफ खां एवं

टिप्पणी

मीरजुमला भी व्यापारी थे। सर्राफ व्यापारी पैसे के लेन–देन के काम में लगे थे। इस समुदाय का उल्लेख सल्तनत काल से मिलता है। दलाल भी व्यापारी वर्ग था। ये दो व्यापारिक गतिविधियों या लेन–देन में मध्यस्थ की तरह काम करते थे।

(iv) उत्पादन– ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र दोनों में उत्पादन की कार्य प्रणाली होती थी। वहां कारखाने स्थापित किये जाते थे। उपयोग एवं निर्यात की वस्तुओं का उत्पादन किया जाता था। फिच के अनुसार "बिहार में नदी के रेत से सोना निकाला जाता था।" इब्नबतूता, बरनी, अबुल फजल तत्कालीन उत्पादन प्रणाली का वर्णन करते हुए सूती वस्त्र, रेशमी वस्त्र, चीनी, चावल, हाथी दांत, औषधि आदि वस्तुओं का उल्लेख करते हैं। कारखानों में बहुत ही कुशल कारीगरों को नियुक्त किया जाता था जिससे उत्पादन में वृद्धि हो सके।

(v) उद्योग धंधे– मध्य काल में उद्योग–धंधों तथा दस्तकारियों का विकास हुआ। औद्योगिक दृष्टि से भारत सुसंगठित था। गांवों तथा नगरों में अनेक शिल्प संघ थे जिनका काम व्यापार करना था। उद्योगों के दो प्रकार थे– शासकों का जिन्हें संरक्षण प्राप्त था तथा दूसरा वे जिनमें निजी स्वामित्व था। सोना, चांदी तथा कशांदा आदि के लिए अनेक कारखाने थे। इसके अतिरिक्त सूती, ऊनी, रेशमी वस्त्रों, शक्कर, धातु, ईंट, पत्थर के अनेक कारखाने थे।

(vi) व्यापार– आंतरिक एवं बाह्य दोनों प्रकार के व्यापार विकसित थे। इब्नबतूता, निकोली कोण्टी, राल्फ फिच आदि मध्यकालीन व्यापार का उल्लेख करते हैं। डॉ. के एम अशरफ ने लिखा है– "व्यापारिक प्रतिष्ठानों के संचालन के लिए कोई सैद्धांतिक नियमावली नहीं थी। मुल्तानी व गुजराती व्यापारियों के हाथों में प्रमुख व्यापार था। डा. श्रीवास्तव ने भी इस संदर्भ में लिखा है– "भारत का बाह्य जगत से घनिष्ठ व्यापारिक संबंध था। भारत का चीन मलाया, द्वीपसमूह तथा प्रशांत महासागर के अन्य देशों के साथ विदेशी व्यापार होता था। भूटान, तिब्बत, अफगानिस्तान, ईरान तथा मध्य एशिया के साथ स्थल मार्गों से व्यापार होता था अतः भारत का व्यापार उन्नतिशील था।"

(vii) चुंगी शुल्क– आयात एवं निर्यात पर 3.5% चुंगी लेते थे। सोना चांदी पर 2% चुंगी लेते थे। औरंगजेब के काल में मुसलमान व्यापारियों से 2.5% और हिंदू व्यापारियों से 5% चुंगी शुल्क लिया जाता था। फतुहात–ए–फिरोजशाही के अनुसार व्यापारियों से 36 प्रकार के कर लिए जाते थे।

(viii) बैंकिंग प्रणाली– मध्य काल में बैंकिंग प्रणाली का वर्तमान स्वरूप नहीं था। बैंकिंग गतिविधियों के लिए साहूकारों, महाजनों एवं सर्राफों का उल्लेख आता है जो बिना किसी लिखा पढ़ी के धन देने का कार्य करते थे। "खुलासत–उल–तवारीख" के लेखक सुजान राय इसका वर्णन करते हैं। यह वर्ग जरूरतमंदों के हिसाब से उन्हें ऋण देने का कार्य करता था। मध्यकालीन शासक वर्ग भी व्यापार वृद्धि के लिए व्यापारियों को ऋण देने का कार्य करते थे।

(ix) हुंडी एवं बीमा– हुंडी या विनियम पत्र को आधुनिक 'चेक' या ड्राफ्ट भी कहा जा सकता है। यह एक मध्यकालीन गतिविधि थी, इसमें एक व्यापारी दूसरे

व्यापारी को पैसा देता एवं लेता था। इसके लिए व्यापारी को पैसा साथ नहीं ले जाना पड़ता था। हुंडी को दिखाकर पैसा प्राप्त कर लिया जाता था।

बीमा का वर्तमान स्वरूप तो विकसित नहीं था फिर भी माल के नुकसान के बदले उनके स्वामित्व वाली फर्मों को उस माल की क्षतिपूर्ति करनी पड़ती थी। 'ओवोल' एक प्रकार की निवेश प्रणाली थी इसके अंतर्गत उधार लिया हुआ धन किसी विशिष्ट स्थान के लिए प्रस्थान कर रहे जहाजों में सामग्री के रूप में रख दिया जाता था।

मध्यकालीन व्यापार एवं वाणिज्य उन्नतिशील था व्यापार के सभी क्षेत्रों में शासकों द्वारा उन्नति के प्रयास किये गये और एक ऐसी अर्थव्यवस्था का विकास हुआ जिसमें सभी आर्थिक पक्ष एवं वाणिज्य पद्धतियां विद्यमान थी। इस विकसित अर्थव्यवस्था की प्रशंसा न केवल भारतीय इतिहासकारों ने की अपितु यूरोपीय इतिहासकारों ने भी की है।

इसी समृद्धता का परिणाम था यूरोपियन्स का भारत की ओर आकर्षित होना और उनसे व्यापार करने के लिए लालायित होना। परंतु यह आर्थिक समृद्धि सदैव कमजोर हाथों में जाने के कारण एक नई दासता की कहानी लिखी गई।

4.3.2 विनिमय के साधन (माध्यम)

मध्य काल में विनिमय के साधनों (माध्यमों) का विस्तार हुआ जिससे व्यापार करना आसान हुआ। मुद्रा को एक स्थान से दूसरे स्थान ले जाना सरल हुआ। व्यापार में जोखिम कम हो गया। यहां पर विनिमय के साधनों का उल्लेख किया जा रहा है।

हुंडी– अबुल फजल द्वारा हुंडी प्रणाली का वर्णन किया गया है। यह 'चिट्ठीनुमा पत्र की तरह होती थी' इसे 'विनियम पत्र' भी कहा जा सकता है। इस माध्यम से व्यापारी धन का आदान–प्रदान करता था और उसे नगद धन अपने पास भी नहीं रखना होता था। इस पत्र को दिखाकर व्यापारी पैसा प्राप्त कर सकता था। हुंडी से तीन प्रकार के लोग जुड़े होते थे (i) हुंडी जारी करने वाला व्यक्ति (ii) भुगतान करने वाला व्यक्ति (iii) हुंडी लेने वाला व्यक्ति। हुंडी भी दो प्रकार की होती थी। (i) दर्शनी– इसमें भुगतान तुरंत करना पड़ता था। (ii) मियादी– इसमें भुगतान के लिए दिनों को निश्चित किया जाता था। इसका कारण यह था भुगतान की उतनी रकम वर्तमान में उपलब्ध न हो, अथवा हुंडी को अपने गंतव्य स्थान पर पहुंचने में अधिक समय लग जाये। इस प्रकार नगद धन को ले जाने के जोखिम से बचा जा सकता था।

यह प्रणाली विश्वास पर आधारित थी। इसमें मुहर एवं किसी की गवाही की आवश्यकता नहीं थी। 'खुलासत–उत–तवारीख' के लेखक 'सुजानराय' ने इसका उल्लेख किया है– वह लिखते हैं– "मार्गों में अनेक खतरे होते थे और यदि कोई व्यक्ति धन लेकर निकट व दूर स्थानों पर जाना चाहता था तो सर्राफ उससे धन लेकर एक कागज का टुकड़ा दे देता था जो 'हिंदवी' में लिखा जाता था, इस कागज को इस देश की भाषा में हुंडी कहा जाता था। इस पर न कोई मुहर होती थी और न कोई लिफाफा इस्तेमाल होता था। सर्राफ के अनेक नगरों में एजेंट या गुमाश्ते होते थे जो इस कागज को देखकर इस पर लिखी धनराशि का बिना किसी हिचकिचाहट के भुगतान कर देते थे।

हुंडी का प्रयोग रकम भेजने के अलावा अल्प समय के ऋण के लिए भी होता था। 'सर्राफ' रुपये के लेन–देन का कार्य करता था। यह हुंडी का भी कार्य करता था। वह वर्तमान निजी बैंक की तरह होता था। वीर जी बोहरा एक धनी व्यापारी था। उसने देश के विभिन्न भागों में जब अपने व्यापारिक केंद्र स्थापित किये तब हुंडी प्रणाली द्वारा विनियम में बहुत सहायता मिली। अबुल फजल भी हुंडी से भुगतान के उल्लेख का वर्णन करता है– "दक्षिण में शाही सेना के लिए हुंडी से भुगतान किया गया, गोलकुंडा का राजस्व जब औरंगाबाद भेजा गया तो हुंडी का उपयोग किया गया। जगत सेठ 18वीं शताब्दी का धनी व्यापारी था जो अंग्रेजों से लेन–देन इसी माध्यम से करता था।"

मध्यकाल में बीमा प्रणाली का भी उल्लेख मिलता है इसका वर्णन–'सुजान राय खत्री' ने अपनी पुस्तक में किया है। वस्तुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुंचाने का दायित्व होता था। रास्ते में माल का नुकसान होने पर नुकसान की जिम्मेदारी बीमा धारकों पर होती थी। इस व्यवस्था ने व्यापार में जोखिम को कम कर दिया।

ऋण सुविधायें भी मध्यकाल में उपलब्ध थीं। साहूकार, महाजन, सर्राफ एवं शासक वर्ग व्यापार के प्रोत्साहन के लिए ऋण प्रदान करते थे। "ऋण की दादनी" प्रथा प्रचलित थी। इसके अंतर्गत शिल्पियों को अग्रिम भुगतान कर दिया जाता था तथा शिल्पियों को निश्चित मात्रा में निश्चित अवधि तक व्यापारियों को माल तैयार करके देना होता था। महाजनों द्वारा आगरा और सूरत में ब्याज की दर 6% से 12% तक होती थी एवं समुद्रतटीय क्षेत्रों में यह दर 18% से 36% तक होती थी।

इस काल में निवेश प्रणाली का भी उल्लेख मिलता है 'जो ओवोल' कहलाती थी। इसमें धन को जहाजों में सामग्री के रूप में रखा जाता था। आगरा में ब्याज की दर 5% से 7½% होती थी। इस धन को 1 से 2½% दर से व्यापार में लगाते थे। विभिन्न क्षेत्रों में ब्याज की दरें अलग–अलग होती थी। मुगल बादशाह आयात एवं निर्यात पर 3.5% चुंगी लेते थे। सोना–चांदी पर यह 2% होता था। सूरत की वस्तुओं पर यह 3 से 5% होती थी। औरंगजेब के शासन काल में हिंदुओं से 5% तथा मुस्लिमों से 2.5% तक व्यापारिक शुल्क लिया जाता था।

4.3.3 मुद्रा प्रणाली

प्राचीन काल से ही सभ्यता के विस्तार के साथ वित्तीय आदान–प्रदान का प्रचलन रहा है। इसमें प्रचलित प्रणाली 'वस्तु विनिमय' थी। जिसके पास जिस वस्तु की अधिकता होती थी वह उस वस्तु को अपनी जरूरत की वस्तु लेकर आदान–प्रदान कर लेता था। 'इसका प्रमुख कारण' प्रारंभिक अर्थव्यवस्था का आधार उपयोग तक सीमित था। इसका अर्थ अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप वस्तुओं का उत्पादन करना था। उत्पादन में व्यापारिक दृष्टिकोण का अभाव था।

कालान्तर में व्यापार वाणिज्य के विकास की प्रक्रिया ने 'मुद्रा प्रणाली' को जन्म दिया। प्राचीन काल की प्रारंभिक मुद्रा 'पंचमार्क' से इसकी शुरुआत होती है। बाद के शासकों द्वारा मुद्रा प्रणाली में सुधार कर इसका और अधिक विस्तार किया गया। मध्य काल तक इस व्यवस्था में परिवर्तन आ गया। उसका प्रमुख कारण भारत का सत्ता हस्तांतरण अब नवीन वर्ग के हाथों में था। जनसंख्या एवं व्यापार के कारण नवीन नगरों

जैसे आगरा, दिल्ली, लाहौर, अहमदाबाद आदि क्षेत्रों का तेजी से नगरीकरण हुआ। धीरे–धीरे मुद्रा आधारित अर्थव्यवस्था का तीव्र विस्तार हुआ।

विनिमय के साधनों में सिक्कों अथवा मुद्रा दोनों का चलन था। मुद्रा सोने, चांदी, तांबे से बनायी जाती थी। कुछ राज्यों में कौड़ी भी विनिमय का साधन थी। सल्तनतकालीन शासकों द्वारा मुद्रा सुधार संबंधी अनेक प्रयास किये गए। इल्तुतमिश ने नवीन मुद्रा चला कर मुस्लिम राज्य को स्थायित्व प्रदान किया। तुगलक काल में मोहम्मद तुगलक के द्वारा मुद्रा के क्षेत्र में नवीन प्रयोग किये गए। इसलिए इतिहासकारों द्वारा उसे 'धनवानों का राजकुमार' की संज्ञा दी है। नगद वेतन देने की प्रथा ने भी मुद्रा प्रणाली का तेजी से विस्तार किया।

मुगलों की मौद्रिक व्यवस्था और भी सुव्यवस्थित हो गई। इसका कारण अधिकतर व्यापारिक लेन–देन का आधार नगद था। शेरशाह और अकबर ने मुद्रा को नियमित करने का प्रयास किया। विलियम हाकिंस के विवरण से पता चलता है कि जहांगीर के शासन काल में 250 करोड़ रुपये चलन में थे। अबुल फजल ने 'आईन–ए–अकबरी' में साम्राज्य की अनुमानित आय 90 करोड़ रुपये आंकी थी।

इन समस्त विवरण से यह कहा जा सकता है कि तत्कालीन मुद्रा व्यवस्था विश्व की सर्वश्रेष्ठ व्यवस्थाओं में से एक थी।

4.3.4 सिक्के

भारतीय सिक्कों का इतिहास ऐतिहासिक दस्तावेजों की एक अद्वितीय श्रृंखला प्रदान करता है। भारत में सिक्कों का इतिहास बहुत पुराना है। साम्राज्यों के उत्थान और पतन की कहानियां इन सिक्कों से परिलक्षित होती हैं। मध्यकाल के सिक्कों के अध्ययन के दो चरण हैं। प्रथम दिल्ली सल्तनत (1206 से 1526), द्वितीय मुगल सल्तनत (1526 से 1857) तक। सिक्कों से राजाओं के आदर्श, आर्थिक स्थिति, व्यक्तिगत रुचि आदि की जानकारी मिलती है।

सल्तनतकालीन सिक्के– सल्तनतकालीन सिक्कों का इतिहास इल्तुतमिश से मिलना शुरू होता है। इसने चांदी का 'टंका' और तांबे का 'जीतल' प्रचलित किया एवं टकसाल के नाम खुदवाने की परंपरा की शुरुआत की। फिरोजशाह तुगलक ने सिक्कों पर तिथि अंकित करवाई। मुद्रा प्रणाली के विकास के दृष्टिकोण से तुगलक काल अत्यधिक महत्वपूर्ण है। इस काल में 'शशगनी' 'अद्धा' नामक सिक्का चलाया गया। लोदी काल में जीतल के स्थान पर 'बहलोली' सिक्का जारी किया गया। राइट ने इस काल में दो प्रकार के सिक्कों– मिश्रित धातु तथा तांबे के सिक्कों का उल्लेख किया है।

सल्तनत काल में सोने और चांदी के सिक्कों का तांबे के सिक्कों के रूप में मूल्य निर्धारित करने की पद्धति बनी रही। शासक वर्ग हमेशा से प्रयासरत रहता था कि सिक्कों की शुद्धता की गुणवत्ता बनी रहे। इस काल के सिक्कों में धार्मिकता का समावेश था। सिक्कों पर कलमा और खलीफाओं का नाम भी अंकित किया जाता था। धातुओं में सोने, चांदी तांबे के सिक्कों का चलन था। मुहम्मद तुगलक ने मुद्रा के क्षेत्र में नवीन प्रयोग किया परंतु वह असफल रहा।

टिप्पणी

सल्तनत काल में, प्रशासनिक शिथिलता के कारण सिक्कों का चलन सुव्यवस्थित नहीं हो सका। कालान्तर में इस क्षेत्र में मुगल काल में सुधार किया गया।

मुगलकालीन सिक्के– मुगलों के शासन काल में मौद्रिक व्यवस्था पूरी तरह सुव्यवस्थित थी। धातुओं की शुद्धता बनाये रखने में काफी सफलता प्राप्त कर ली गई थी। मुगल मुद्रा को 'त्रिपदात्मक' कहा गया है। तीन प्रकार के सिक्के ढाले जाते थे– 'तांबा, चांदी एवं सोना। चांदी के सिक्कों का चलन मुगलों के पूर्व से ही था। अबुल फजल ने 42 टकसालों का उल्लेख किया है जिनमें तांबे के सिक्के ढाले जाते थे। 14 टकसालों में चांदी के एवं 4 टकसालों में सोने के सिक्के बनते थे। दिल्ली में एक शाही टकसाल थी जिसका प्रमुख 'अब्दुल समद था। मुगल काल में टकसालें केंद्रीय नियंत्रण में थीं, फिर भी कोई भी व्यक्ति 5 से 6% शुल्क देकर सिक्कों को ढलवा सकता था। 'सोने के सिक्के की शुद्धता शत प्रतिशत होती थी। राज्य की प्रमुख टकसालें आगरा, फतेहपुर सीकरी, इलाहाबाद, दिल्ली, पटना आदि स्थानों पर थीं। हांकिम लिखता है– 'एक अशरफी 10 रुपये के बराबर थी।'

बाबर द्वारा कंधार में 'बाबरी' नाम का सिक्का चलाया गया, उसके सिक्कों में एक ओर कलमा, खलीफाओं के नाम थे, तो दूसरी ओर बादशाह की उपाधि अंकित थी। हुमायुँ ने अपने सिक्कों में किसी भी प्रकार का परिवर्तन नहीं किया।

शेरशाह ने पहली बार चांदी के सिक्के का मानकीकरण किया जिसे रुपया कहा जाता था। चांदी का सिक्का 178 ग्रेन तथा तांबे का सिक्का 330 ग्रेन का था। उसने रुपये के आधे चौथाई, आठवें और सोलहवें भाग के भी सिक्के चलाये। उसने सोने के सिक्कों को भी चलवाया परंतु वे अधिक प्रचलित नहीं थे। अकबर ने शेरशाह द्वारा जारी सिक्कों के प्रचलन को नियमित करने का प्रयास किया। उसने सोने, चांदी, तांबे के सिक्के चलाये। सोने के सिक्के अलग–अलग वजनों एवं मूल्यों के थे एवं 26 प्रकार के थे। उसके समय में लगभग 175 ग्रेन का चांदी का रुपया मूल्य में दो शिलिंग तीन पेंस (स्टर्लिंग) के बराबर होता था। उसने 'जलाली चांदी का सिक्का' चलाया। अकबर के समय तांबे का प्रमुख सिक्का 'पैसा' या 'फुलूम' कहलाता था। यह विनिमय का प्रमुख आधार था– निर्धन एवं धनी वर्ग दोनों के लिए। अकबर के सिक्के शुद्धता, वजन की पूर्णता तथा कलात्मक संपादन की दृष्टि से उत्तम थे। जहांगीर ने 'निसार' नामक सिक्का चलाया।

अकबर के सिक्कों पर राम–सीता की आकृति तथा सूर्य–चंद्रमा की महिमा में वर्णित कुछ पद्य भी मिलते हैं। जहांगीर के कुछ सिक्कों पर उसे हाथ में शराब का प्याला लिए हुए दिखाया गया है। औरंगजेब ने सिक्कों पर कलमा खुदवाना बंद करा दिया। उसने कुछ सिक्को पर 'मीर–अब्दुल बाकी' शाहबई द्वारा रचित पद्य अंकित करवाया।

औरंगजेब के शासन काल में तांबे के दाम का वजन 1/3 घटा दिया गया। औरंगजेब के शासन काल के अंतिम समय में 'बीजापुर' और 'गोलकुंडा' के सिक्कों का चलन था। मुगलकालीन चांदी के सिक्कों के संदर्भ में 'थेवेनी' का मत है– "महान मुगलों की चांदी की मुद्रा किसी दूसरी प्रचलित चांदी की मुद्रा से कहीं अधिक अच्छी थी और इसलिए जब कभी कोई विदेशी मुगल राज्य में प्रवेश करता था तो वो समस्त

टिप्पणी

चांदी के सिक्कों को यहां की मुद्रा में परिवर्तित करवा लेता था जो पुनः गलाकर नये और सुंदर सिक्कों में ढाल दी जाती थी।"

भारत में चांदी का आयात किया जाता था इसलिए इसके मूल्य में स्थिरता नहीं रहती थी। अकबर के समय में दाम का वजन 320 ग्रेन था तो औरंगजेब के समय 109 से 215 ग्रेन था। अकबर के 207/8 माशे की अपेक्षा दाम का वजन 14 माशे निर्धारित किया गया। अकबर के राज्य काल की शुरुआत में एक रुपये में 35 और फिर 38 दाम होते थे। 'आइन–ए–अकबरी' की रचना के समय 40 दाम एक रुपये के बराबर माना जाता था। शाहजहां के शासन काल में एक रुपये में 26 या 27 दाम माने जाते थे। 1640 ई. में एक रुपया 28 दाम के बराबर माना जाता था। औरंगजेब के समय एक रुपया 15 दाम का माना जाता था। शासकों के हिसाब से दाम का मूल्य परिवर्तित होता रहता था।

सारांश में यह कहा जा सकता है कि मुगलकाल भारतीय इतिहास की 'मुद्रा व्यवस्था' के विकास का चर्मोत्कर्ष था। उन्होंने न केवल मुद्रा प्रणाली में सुधार किया बल्कि पूर्व में चली आ रही अस्थिर नीतियों, प्रणालियों को सुदृढ़ किया।

इसका प्रमुख श्रेय शेरशाह सूरी को जाता है, उसने परिष्कृत मुद्रा प्रणाली स्थापित की जिसे कालान्तर में 1835 तक ईस्ट इंडिया कंपनी ने जारी रखा।

4.3.5 मध्यकालीन बैंकिंग प्रणाली

बैंकिंग प्रणाली के साक्ष्य भारत में प्राचीन समय से ही मिलते हैं। इसका प्रमाण वेदों में 'कुसीदिन', जातक कथाओं में उधार में धन दिये जाने का उल्लेख तथा कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी ऋण पत्रों के रूप में मिलता है किंतु यह व्यवस्था वर्तमान से कुछ भिन्न थी। प्रोफेसर इरफान हबीब ने अपने लेख 'बैंकिंग इन मुगल इंडिया' में प्रमाणित किया है– "मुगल काल में भारतीय बैंकिंग व्यवस्था अत्यंत विकसित थी और मुगलकालीन सर्राफ आधुनिक बैंकिंग के प्रायः सभी कार्यों का निष्पादन करते थे।"

इतिहासकार एल.सी. जैन द्वारा रचित पुस्तक 'बिजनेस बैंकिंग इन इंडिया' में वर्णन करते हैं– "भारत में देशी बैंकिंग का प्रचलन पांचवीं सदी ई.पू. से ही देखने को मिलता है और मुगल काल में यह अत्यंत विकसित अवस्था में था।"

मध्य काल में बैंकिंग व्यवस्था का कार्य 'महाजन', 'सर्राफ', 'सेठ' करते थे। इसके अतिरिक्त विशेष क्षेत्रीय वर्ग का भी प्रमुख योगदान था जैसे– गुजराती, मारवाड़ी, अग्रवाल। इनकी व्यापार और बैंकिंग प्रणाली राज्यस्तरीय होती थी।

> **कार्य–हुंडी**– यह एक प्रकार का विनिमय पत्र होता था जिसके द्वारा एक व्यापारी दूसरे व्यापारी को पैसा देता एवं लेता था। इसके द्वारा व्यापारी को पैसा साथ लेकर नहीं आना पड़ता था। हुंडी को दिखाकर व्यापारी पैसा प्राप्त कर लेता था।

मुगलकालीन दस्तावेजों में दो तरह के ऋण पत्रों का उल्लेख मिलता है–

(i) दस्तावेज–ए–इन्दुतलाब– यह पत्र मांग पर जारी किया जाता था।

(ii) दस्तावेज–ए–मियादी (आधुनिक एफ.डी.) एक खास समय के पश्चात ही धन निकाला जा सकता था। ये दस्तावेज शाही खजाने से ही जारी किये जाते थे। 'हुंडी' को प्राचीन 'क्रेडिट कार्ड' भी कहा जा सकता है।

टिप्पणी

बीमा– बीमा का स्वरूप वर्तमान की तरह नहीं था फिर भी माल के नुकसान के बदले उनके स्वामित्व वाली फर्मों को उस माल की क्षतिपूर्ति करनी पड़ती थी। बीमा की किश्त साधारण लोगों पर अधिक थी। जनसामान्य से 25% वार्षिक दर से ब्याज लिया जाता था। औरंगजेब कट्टर धर्मपरायण शासक था। ब्याज लेना इस्लामी परंपरा के अनुकूल नहीं समझता था।

जहांगीर के समय वीर जी वोहरा धनी व्यापारी था जो ईस्ट इंडिया के कर्मचारियों को ऋण देता था। इसके व्यापार का क्षेत्र बुरहानपुर, अहमदाबाद, आगरा था।

मुर्शिदाबाद के 'जगत सेठ' की अथाह संपत्ति थी। इसका अपना बैंकिंग का क्षेत्र था। 'कानर्वालिस' ने इसकी तुलना "बैंक ऑफ इंग्लैण्ड" से की है।

ब्याज की दर– अलग–अलग क्षेत्रों में ब्याज दर भी भिन्न थी। लाहौर सूरत में सवा प्रतिशत, अहमदाबाद में 1 से डेढ़ प्रतिशत, बुरहानपुर में ढाई प्रतिशत और पटना में 7 से 10 प्रतिशत थी। जोखिम वाले व्यापार में ब्याज की अतिरिक्त दर होती थी।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि मध्यकाल में किसी न किसी रूप में बैंकिंग प्रणाली की सुविधा थी, भले ही उसका स्वरूप आधुनिक नहीं था। व्यापारिक गतिविधियों के लिए मुद्रा विनिमय एवं ऋण संबंधी सुविधायें बढ़ते हुए व्यापार के लिए समुचित वित्तीय सहयोग एवं ऋण संबंधी सुविधाओं का होना नितांत आवश्यक था।

अपनी प्रगति जांचिए

6. जहांगीर ने कौन–सा सिक्का चलवाया था?
   (क) निसार (ख) चांदी
   (ग) शाहजहां (घ) औरंगजेब
7. किस शासक ने 'राम–सीता' युक्त सिक्के चलवाये?
   (क) शाहजहां (ख) अकबर
   (ग) जहांगीर (घ) बाबर
8. 'खुलासत–उल–तवारीख' का लेखक कौन था?
   (क) अल्बरुनी (ख) अबुल फजल
   (ग) हसन निजामी (घ) सुजान राय
9. जगत सेठ कहां का व्यापारी था?
   (क) अहमदाबाद (ख) पटना
   (ग) मुर्शिदाबाद (घ) दिल्ली
10. 'बहलोली' सिक्का किस शासक के द्वारा चलाया गया।
    (क) सिकंदर लोदी (ख) बहलोल लोदी
    (ग) अकबर (घ) अलाउद्दीन खिलजी

4.4 नगरों तथा कस्बों का विकास– प्रकृति तथा वर्गीकरण, जनांकिकी परिवर्तन, प्रशासन, शहरी समुदाय तथा नगरों की संरचना

भारत में नगरों की विकास प्रक्रिया प्राचीन काल से चली आ रही है। इसके उदाहरण सिंधु घाटी सभ्यता एवं मौर्य काल में देखने को मिलते हैं। नगरीकरण की प्रक्रिया 'मानव सभ्यता' के विकसित इतिहास की कहानी कहती है।

तुर्कों के आगमन ने शहरीकरण को नई प्रगति दी। इतिहासकार 'इरफान हबीब' दिल्ली सल्तनत को तृतीय नगरीकरण की शुरुआत मानते हैं। वे मानते हैं कि इस काल में शहरी क्रांति हुई। पुराने नगरों के खंडहरों पर नवीन नगरों की नींव रखी गई एवं नए आर्थिक ढांचे का निर्माण हुआ। इस प्रक्रिया में प्रशासनिक व्यवस्था, जनांकिकी परिवर्तन की नई प्रणाली विकसित हुई। दो प्रकार के सामाजिक वर्गों का उदय हुआ– उच्च जीवन के अभ्यस्त मुस्लिम अमीर वर्ग एवं पराजय का दंश झेल रहे हिंदुओं का वर्ग।

4.4.1 मध्यकालीन भारत में नगरों एवं कस्बों का विकास : प्रकृति तथा वर्गीकरण

तुर्कों की विजय के पश्चात शहरीकरण की प्रक्रिया को बल प्राप्त हुआ। उनके आगमन के पूर्व भारत में शहरों का ह्रास हो रहा था। विजेता तुर्क नगरों में रहते थे इससे नगरों के विकास तथा नगरीय अर्थव्यवस्था की प्रक्रिया तेज हो गयी। डा. यूसूफ हुसैन ने लिखा है– "सारे देशों में बड़े नगरों का उत्थान मध्यकालीन भारतीय इतिहास की एक असाधारण घटना है। सल्तनत की स्थापना के साथ ही पुराने नगरों का विकास होने लगा, नये नगरों का निर्माण हुआ, तथा शहरों पर आधारित नये आर्थिक ढांचे का विकास हुआ।"

नगरीयकरण की प्रक्रिया ने सामाजिक एवं आर्थिक बदलाव किये इससे शहरों की संख्या तथा आकार में वृद्धि हुई, उद्योग तथा व्यापार का विकास हुआ।

मध्य कालीन नगरों के विकास की प्रक्रिया के दो चरण हैं– (1) दिल्ली सल्तनत में नगरीकरण (2) मुगल सल्तनत में नगरीकरण।

दिल्ली सल्तनत में नगरीकरण– अरब इतिहासकार 'इब्नखदुम' का विश्वास था कि नगर के निर्माण तथा इसकी योजना के लिए राजकीय सत्ता तथा राजवंश अनिवार्य थे। बड़े नगर और स्मारक केवल शक्तिशाली और प्रभावशाली सत्ता के प्रयासों से ही बन सकते हैं। इस प्रकार 'इब्नखलदूम' नगरों के बीच कारण (राजवंश) तथा प्रभाव (नगरों) के संबंध को देखते हैं।

सल्तनतकालीन नगरों का वर्गीकरण– सल्तनतकालीन नगरों की तीन श्रेणियां थीं– (1) तीर्थ स्थानों वाले प्राचीन नगर (2) प्रशासनिक एवं व्यापारिक नगर (3) कुछ मध्यस्थ नगर जहां मूलभूत परिवर्तन कर प्राचीन शहरों में मुसलमान बस गये।

मुसलमानों के द्वारा जो नगर बसाये गये उन्हें मुख्य मार्ग या नदियों के किनारे ऊंचे स्थान पर बसाया जाता था। उन शहरों में मस्जिद, मदरसे, हम्माम, बाजार तथा

टिप्पणी

अन्य सार्वजनिक भवनों का निर्माण होता था, चहारदीवारी तथा उसमें निकासी द्वार होते थे।

नगरों की सुरक्षा– नगरों के निर्माण में आंतरिक एवं बाह्य सुरक्षा का विशेष ध्यान रखा जाता था। नगर के चारों ओर दीवारें बनायी जाती थी जिससे बाह्य आक्रमण से नगर की सुरक्षा की जा सके। प्रशासनिक व्यवस्था के लिए सरकारी कार्यालय, बावर्चीखाने, कर्मचारियों के निवास स्थान होते थे। शहर की शांति व सुरक्षा के लिए 'कोतवाल' की नियुक्ति की जाती थी 'मुहल्लादार नगर की सुरक्षा का एक अन्य कर्मचारी था' जो नगर व्यवस्था की जानकारी देने का कार्य करता था।

सल्तनतकालीन मुख्य नगर– सल्तनतकालीन नवीन नगर मुसलमानों की सुविधाओं के आधार पर निर्मित किये गये थे। इसमें मस्जिद, बड़े–बड़े प्रासाद, महल, बाजार एवं कब्रिस्तान निर्मित किये गए थे। 'दिल्ली' सबसे प्रमुख नगर था जिसे सल्तनतकालीन राजधानी का दर्जा प्राप्त था– हसन निजामी 'ताज–उल–मासिर' ने दिल्ली को हिंदुस्तान के प्रमुख नगरों में से एक कहा है।

बर्नी ने दिल्ली की भव्यता का वर्णन करते हुए लिखा है– "शाही राजधानी दिल्ली एक महान नगर के रूप में उभरी थी और बगदाद के लिए ईर्ष्या का स्रोत थी तथा मिस्र के लिए द्वेष का कारण बनी, ज्ञान की प्रत्येक शाखा में कुस्तुनतुनियां के बराबर थी और बैत अलमुक्दिस (जेरुसलेम) के समतुल्य थी।"

किलोखेड़ी नगर का विकास 'कैकुबाद' के समय हुआ। शहर के चारों ओर दीवार से घेर कर 12 से 13 द्वार बनाये गये। यहां धार्मिक, मध्यवर्ग एवं निम्न वर्ग सभी तरह के लोग निवासरत थे। 'सीरी' का निर्माण अलाउद्दीन खिलजी ने किया, यह दिल्ली के समीप स्थित था। यहां कपड़े का बाजार एवं पानी की व्यवस्था के लिए 'हौज–ए–शम्मी का निर्माण कराया गया। दिल्ली की बढ़ती आबादी को बसाने के लिए 'गयासुद्दीन तुगलक' द्वारा 'तुगलकाबाद' की स्थापना की गई। 'जहांपनाह' नगर की विशेषता उसकी चौड़ी व मोटी चहारदीवारी व झील के ऊपर सतपुला था। इस नगर में "हौज–ए–खास" था जिनमें 80 गुंबद थे। फिरोजशाह तुगलक ने यमुना नदी पर स्थित 'कापीन गांव' एवं दिल्ली के पास 'फिरोजाबाद' बसाया था।

सिकंदर लोदी द्वारा 'आगरा' नगर की स्थापना की गई। अन्य शहरों में लाहौर, जौनपुर, बदायुँ, अमरोहा आदि थे जिनका विकास किया गया। मध्य प्रदेश के नगर मालवा, ग्वालियर, गुजरात के खम्भात थाना तथा अहमदशाह द्वारा साबरमती नदी के तट पर 'अहमदाबाद' नगर बसाया। 'महमूदशाह' मुस्तफाबाद, बंगाल में लखनौती, सुनार गांव आदि सल्तनतकालीन प्रमुख नगर थे।

नगरों की प्रकृति– इतिहासकारों ने सल्तनतकाल के नगरों के विकास के संदर्भ में भिन्न–भिन्न दृष्टिकोण प्रस्तुत किये हैं। 'नकवी' का कहना है नगरों का विकास व्यापारिक नगरों के रूप में हुआ। उनका कहना है कि नगरीकरण दिल्ली में स्थापित अत्यधिक केंद्रीकृत प्रशासन प्रणाली का परिणाम था। इरफान हबीब इसे 'नगरीय क्रांति' की संज्ञा देते हैं। 'आन्द्रे विन्क' ने सल्तनतकालीन कस्बों को 'सैन्य नगर' के रूप में रेखांकित किया है। इसका कारण 'इक्ता' व्यवस्था को बताया है।

टिप्पणी

सारांश में यह कहा जा सकता है कि मध्यकालीन नगरीकरण ने प्राचीन नगरों के वैभव को प्रायः नष्ट कर दिया एवं मुस्लिम परंपराओं की अवधारणा के अनुकूल नवीन नगरों की स्थापना हुई।

कस्बों का विकास

ग्रामीण तथा नगरीय व्यवस्था को जोड़ने की प्रमुख कड़ी कस्बे होते हैं। उन्हें उपनगर भी कह सकते हैं। 'ग्रामीण सभ्यता' जब अर्धविकसित रूप में आती है तो 'कस्बे' का रूप धारण कर लेती है।

मध्य काल में नवीन आर्थिक व्यवस्था, प्रौद्योगिकी, लघु उद्योग, कुटीर उद्योग एवं जनसंख्या वृद्धि के कारण ग्राम कस्बों में परिवर्तित हो गये।

कस्बे का महत्व राजकीय राजस्व की मांग को पूरा करने के लिए, अन्न के विक्रय के लिए प्रमुख बाजार थे। बढ़ते हुए कुलीन वर्ग जिसमें जागीरदारों के एजेण्ट, साहूकार, अन्न व्यापारी, जमींदार, कनिष्ट अधिकारी और धार्मिक व्यक्ति भी शामिल थे, ने वहां अपने निवास स्थापित किये।

भारत के समस्त क्षेत्रों में कस्बों का विकास हुआ परंतु गंगा यमुना दोआब अर्थात् वर्तमान उ.प्र. पंजाब के क्षेत्र में राजस्थान की अपेक्षा अधिक कस्बों का विकास हुआ।

मुगल सल्तनत में नगरीकरण– एक शहर के दो लक्षण होते हैं। प्रथम शहर में जनसंख्या घनी होती है। द्वितीय शहर के निवासियों का व्यवसाय कृषि नहीं होता है। इस प्रकार जनसंख्या का घनत्व और व्यक्तियों का व्यवसाय कृषि न होना शहर को ग्राम से पृथक करता है। इरफान हबीब के अनुसार "उत्पादन के साधनों में उन्नति होने से भी शहरों के निर्माण में सहायता हुई।"

मुगलकालीन शहरों का विभाजन– इस काल के शहरों को चार भागों में विभाजित किया जा सकता है– (1) प्रशासनिक नगर (2) वाणिज्यिक या व्यापारिक नगर (3) सैनिक महत्व के नगर (4) धार्मिक नगर।

आगरा, दिल्ली, लाहौर मुख्यतः प्रशासनिक नगर थे। वाणिज्यिक नगरों में पटना, अहमदाबाद, मुल्तान, कंधार, गुजरात, पाटन, इसी श्रेणी के नगर थे। सैनिक महत्व के नगरों में अटक एवं असीरगढ़ जैसे नगर इसी वर्ग में आते थे। धार्मिक नगरों में बनारस, मथुरा प्रमुख थे।

नगरीकरण की विशेषताएं– राक्षेत महल–गढ़ जो क्षेत्रीय प्रशासन केंद्रों के रूप में कार्य करते थे और सैन्य परेडों के लिए खुले मैदान जैसी सैन्य विशेषताएं इनमें होती थी। इनमें मस्जिद, मजार और मदरसों जैसी धार्मिक इमारतें तथा ईरान और तुर्किस्तान की शैलियों से बने बाजार और सराय जैसी इमारतें भी शामिल हैं। भारत के पुराने शहरों की तुलना में नए शहर विशाल दीवारों और द्वारों से संरक्षित होते थे।

नगरीकरण का विकास– केंद्रीय शासन के सुदृढ़ीकरण के कारण मुगल काल में नगरीकरण की प्रक्रिया तेज और सुव्यवस्थित हुई। ग्रामीण स्तर पर कृषि की प्रधानता थी तो नगर में व्यापार का महत्व था। योग्य प्रशासकों का संरक्षण, यातायात के साधनों का विस्तार, तकनीक का प्रयोग, यूरोपीय व्यापारियों से संपर्क के परिणाम से

नगरीकरण का विस्तार हुआ। शेरशाह द्वारा यमुना नदी के किनारे नगर बसाया गया। अकबर द्वारा फतेहपुर सीकरी शहर को बसाया गया। अकबर के समय 120 नगरों एवं 3200 कस्बों की जानकारी मिलती है। मुगल काल में दिल्ली एवं आगरा महानगर की तरह थे। 'राल्फफिच' कहता है– "आगरा और लाहौर लंदन और पेरिस से बड़े शहर थे।" बर्नियर भी कहता है– दिल्ली पेरिस से कम नहीं था और आगरा दिल्ली से बड़ा था। इसके अलावा कुछ नवीन शहर बने थे– इलाहाबाद, फतेहपुर सीकरी, कटक, फरीदाबाद आदि। मुगलों के राज्य की सीमाओं के बाहर भी अनेक पुराने शहरों और बंदरगाहों का विस्तार तथा नवीन शहरों का निर्माण हुआ जैसे विजयनगर, बीजापुर, गोलकुंडा आदि। अनेक शहर व्यापारिक केंद्रों के रूप में विकसित हुए जहां वस्तुओं की बड़ी–बड़ी मंडियां थीं।

सारांश में मुगल शासक वर्ग शहरी जीवन की तरफ आकर्षित थे। बढ़ती हुई भारत की समृद्धि शहरों के विकास और नवीन शहरों के निर्माण के लिए उत्तरदायी थी। इसके कारण प्रशासनिक, सैनिक, भौगोलिक एवं धार्मिक थे। शहरों का जीवन आरामदायक और विकासपूर्ण था। बढ़ते हुए उद्योग और आंतरिक तथा विदेशी व्यापार उन्नति के मुख्य कारण थे।

4.4.2 मध्यकालीन भारत में जनांकिकी परिवर्तन

नगरीकरण की प्रक्रिया में जनांकिकी परिवर्तन का भी महत्वपूर्ण योगदान था। आइने अकबरी में लगभग 3200 कस्बों की संख्या बताई गई है। मुगलकालीन जनसंख्या के आंकड़ों के बारे में इतिहासकारों के विभिन्न मत हैं। मोरलैण्ड 16वीं शताब्दी में भारत की जनसंख्या 1 करोड़ बताता है। सरदेसाई के अनुसार 16वीं शताब्दी में 64.9 से 88. 3 लाख जनसंख्या थी। शिरीन मूसती 108.4 लाख जनसंख्या का विवरण देता है। के. डेविस 16वीं शताब्दी में भारत की जनसंख्या के बारे में 125 लाख का विवरण देता है इसमें 85% ग्रामीण एवं 15% शहरी जनसंख्या थी। 'तबकाते–ए–अकबरी' के लेखक के अनुसार अकबर के साम्राज्य में 120 बड़े शहर थे।

जनसंख्या के ये आंकड़े बताते हैं कि किस प्रकार जनसंख्या वृद्धि ने उत्पादन को बढ़ावा दिया एवं अधिक उत्पादन के लिए तकनीकी एवं प्रौद्योगिकी का उपयोग शुरू हुआ। उद्योगों की स्थापना की गई। इन सभी से कृषि पर निर्भरता कम हुई और उद्योगों की स्थापना ने नवीन नगरों की पृष्ठभूमि का निर्माण किया।

नगरीकरण के कारण

मध्य काल में नगरों के विकास के पीछे अनेक कारण उत्तरदायी थे। 'इरफान हबीब' ने इसके कारणों का वर्णन किया है। "तुर्कों के आने से पहले नगरों में उच्च वर्गों के लोग निवास करते थे, जबकि श्रमिक वर्ग के लोग गांवों तथा इन नगरों के बाहर परकोटों में रहते थे। तुर्कों के आने के बाद शहर में काम करने वाले श्रमिकों के साथ किए जाने वाले सभी विभेद मिटा दिये गये। तुर्कों के आने के साथ ही हिंदू श्रमिकों को भी नगरों में प्रवेश मिल गया। नई शासन व्यवस्था में नगर उद्योग तथा व्यवसाय के समृद्धशाली केंद्र बन गए। औद्योगिक तथा प्रशासनिक उपक्रमों के लिए श्रमिक तथा मध्यम वर्ग की आवश्यकता पड़ी।"

मध्य काल में नगरीकरण के कारण आर्थिक, धार्मिक एवं प्रशासनिक थे। इन्हीं कारणों से नए शहरों की संख्या में वृद्धि तथा पुराने शहरों का विस्तार हुआ। कुटीर उद्योगों में वृद्धि, व्यापारीकरण, कृषि का विकास, जनसंख्या में वृद्धि, नये शहरों के विकास का कारण बनी। इस्लामी देशों से आये हुए लोगों के कारण भी नए शहरों की संख्या बढ़ती चली गई। औद्योगिक विकास भी शहरों की संख्या में वृद्धि का कारण था। औद्योगिक विकास के कारण प्रशासनिक अधिकारियों तथा श्रमिकों की संख्या में भी वृद्धि हुई। शहरों का विकास हुआ।

समकालीन ऐतिहासिक स्रोतों व विदेशी पर्यटकों के द्वारा दिए गए विवरण से ज्ञात होता है कि प्रत्येक शहर में अलग–अलग देशों, प्रदेशों, जातियों, उपजातियों, समुदायों, व्यवसायों के लोग निवास करते थे जिनका जीवन स्तर ग्रामीण जीवन से उच्च स्तर का था।

4.4.3 प्रशासन : दिल्ली सल्तनत एवं मुगल काल के अंतर्गत प्रशासन

दिल्ली सल्तनत की स्थापना के साथ ही भारत में एक नई राजनीतिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था की शुरुआत हुई। यह नगरीय प्रशासन तंत्र 'शरीयत' से प्रभावित था। बाद में इसमें भारतीय तत्वों का भी समावेश होने लगा और नई संस्थाओं एवं संकल्पनाओं का जन्म हुआ। जिसने एक नये प्रकार के मिश्रित नगरीय वातावरण का विकास किया।

केंद्रीय प्रशासन

अमीर वर्ग

उलेमा वर्ग

केंद्रीय अधिकारी

वजीर (दीवाने विजारत)

आरिज–ए–मुमालिक (दीवान–ए–अर्ज)

दीवान–ए–इंशा

दीवान मुस्तखराज

दीवान रियासत

दीवान अमीर कोही

सद्र–उस सुदुर

काजी–डल कुजात

बरीद–ए–मुमालिक

दीवाने रियासत

वकीले दर

टिप्पणी

अमीर ए आखुर

शाही कारखाना

मुगल काल में केंद्रीय नगर प्रशासन

मुगल शासन व्यवस्था का आधार अपने राजाओं की परिपाटियों और तरीकों पर था जो कि बाहर से आये हुए विदेशी थे। वे एक विशिष्ट शासन प्रणाली के अभ्यस्त थे और जब ये भारत आए तो उन्होंने यहां भी उसका अनुसरण किया।

जदुनाथ सरकार के अनुसार– "मुगल शासन प्रणाली भारतीय और अभारतीय प्रणाली का एक मिला–जुला सम्मिश्रण था अथवा वास्तविक रूप से यह फारस और अरब की प्रणाली थी जो भारतीय परिस्थितियों में प्रयोग की गई थी।"

मुगल सरकार पूर्णरूप से केंद्रीय एकछत्र राज्य था। सम्राट ही सारे शासन तंत्र की धुरी होता था जिसके इर्द–गिर्द सारी शासन व्यवस्था कार्य करती थी।

- केंद्रीय प्रशासन
- मंत्री
- वकील
- दीवाने / वजीर
- मीर बक्शी
- सद्र–ए–सद
- प्रधान काजी
- मीर आतिश
- मुहतसिब
- दरोगा ए डाक चौकी
- मीर सामा
- प्रांतीय प्रशासन

4.4.4 समुदाय

मध्य काल में दिल्ली सल्तनत एवं मुगल सल्तनत में समुदायों को दो भागों में विभक्त किया गया था– (i) मुस्लिम समुदाय (ii) हिंदू समुदाय।

सल्तनत कालीन नगरीय समुदाय

(1) मुस्लिम समुदाय– शासक वर्ग से संबंधित होने के कारण मुसलमान अपने आपको श्रेष्ठ समझते थे। उनमें जाति प्रथा का प्रचलन तो नहीं था परंतु जन्म, नाम और धर्म के आधार पर वर्गों में बंटे हुए थे।

(A) विदेशी मुसलमान– राज्य के समस्त महत्वपूर्ण पदों पर इनको ही नियुक्त किया जाता था। इनको पांच भागों में विभाजित किया गया– (i) शासक वर्ग (ii) सामंत एवं अमीर (iii) उलेमा (iv) मध्यम वर्ग (v) जनसाधारण वर्ग।

(i) **शासक वर्ग**– यह सबसे महत्वपूर्ण था। शासन की समस्त बागडोर उसके हाथों में थी उसे सुल्तान, शासक, बादशाह कहा जाता था।

(ii) **सामंत एवं अमीर**– ये सुल्तानों की शक्ति का आधार थे। अमीरों की शक्ति शासक की निरंकुशता एवं स्वेच्छाचारिता पर अंकुश का कार्य करती थी। ये अमीर अपनी बहुमुखी प्रतिभा एवं तकनीकी ज्ञान के कारण राज्य के आधार स्तम्भ थे।

(iii) **उलेमा**– इस वर्ग का न्याय, धर्म तथा शिक्षा संबंधी समस्त उच्च पदों पर अधिकार था। वे राजनीति में भी हस्तक्षेप करते थे। वैधानिक विषयों के साथ–साथ राजनीतिक मामलों में सुल्तान को सलाह देते थे।

(iv) **मध्यम वर्ग**– उच्च वर्ग के पश्चात मध्यमवर्गीय समाज था जिसकी आर्थिक स्थिति अच्छी थी एवं उन्हें सम्मान भी प्राप्त था। यह वर्ग शासक वर्ग और जनसाधारण वर्ग के बीच की कड़ी था।

(v) **जनसाधारण वर्ग**– इस वर्ग में कारीगर, छोटे दुकानदार, किसान एवं मजदूर वर्ग आता था। इस वर्ग की दशा अत्यंत ही दयनीय थी।

(2) **भारतीय मुसलमान**– भारतीय मुसलमानों की स्थिति अच्छी नहीं थी। उन्हें घृणा की दृष्टि से देखा जाता था। वे न तो पूर्णतः हिंदू वर्ग में शामिल थे, न ही मुस्लिम वर्ग में प्रशासन में उनकी भागीदारी थी।

दास– मध्यकालीन भारत में दास प्रथा प्रचलित थी। हिंदू और मुसलमान दोनों ही दास रखते थे। दासों के हाट लगते थे, जहां उनकी पशुओं के समान बिक्री होती थी। दास–दासियां अफ्रीका, चीन, तुर्किस्तान आदि देशों से आयात किये जाते थे। 'फिरोज तुगलक' ने एक अलग दास विभाग की स्थापना की थी।

हिंदू समाज– मुसलमानों के भारत में प्रवेश करने के पश्चात से हिंदू–समाज के आंतरिक ढांचे में परिवर्तन आने लगा। तुर्कों के प्रभाव एवं प्रभुत्व के बढ़ने के साथ–साथ हिंदू समाज की पुरानी परम्पराएं तथा प्रथाएं समाप्त होने लगीं। हिंदुओं को अपने ही देश में अपने अस्तित्व की रक्षा करने के लिए लंबा संघर्ष करना पड़ा। तत्कालीन मुस्लिम इतिहासकारों एवं यात्रियों ने भारतीय सामाजिक स्थिति का चित्रण सही अर्थों में नहीं किया। हमारी परंपराओं एवं संस्कृति को वे समझने में असमर्थ थे और उन्होंने उनके सिर्फ नकारात्मक पक्ष का चित्रण किया है जो सर्वथा अनुचित है।

मुगलकाल में नगरीय समुदाय

(i) **मुस्लिम समुदाय**– मुगल कालीन मुस्लिम समाज का आधार सामंतवादी ढांचा था जिसमें सर्वोच्च स्थान पर बादशाह स्वयं आसीन था।

(ii) **भारतीय मुसलमान**– मुगलकालीन मुस्लिम समाज में भारतीय मुसलमानों की दशा सम्मानजनक नहीं थी। राज्य में कोई भी महत्वपूर्ण पद उन्हें प्राप्त नहीं था। वे छोटे–छोटे कार्यों के द्वारा अपना जीवनयापन करते थे और विदेशी मुसलमानों की दया पर ही जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य थे।

टिप्पणी

(iii) सामंत वर्ग– इस समुदाय में अनेक मनसबदार और अमीर होते थे। इन पदों पर भारतीय मुसलमानों, विदेशी मुसलमानों की नियुक्ति होती थी। 'अकबर' के शासन काल में हिंदुओं को भी उच्च पदों पर नियुक्त किया गया।

(iv) अमीर एवं उलेमा वर्ग– ये धार्मिक वर्ग के व्यक्ति थे जो राजनीति में भी हस्तक्षेप करते थे।

(v) अमीर वर्ग– इस वर्ग में मनसबदार, प्रांतपति, सेना के उच्च अधिकारी आते थे।

(vi) मध्यम वर्ग– इसमें व्यापारी, राज्य कर्मचारी, धार्मिक वर्ग के प्रमुख व्यक्ति आते थे।

(vii) निम्न वर्ग– इसमें श्रमिक, मजदूर, कारीगर, दास आदि आते थे।

हिंदू समाज– मुगलकाल तक आते–आते हिंदुओं की स्थिति में परिवर्तन आया। दोनों ही वर्गों ने अपने दृष्टिकोण में बदलाव कर एक–दूसरे के प्रति सहयोगात्मक रवैया अपनाया। मुगल शासकों की नीतियों ने हिंदुओं की स्थिति में सुधार किया। वे जानते थे। कि बिना उनके सहयोग से हिंदू बहुल क्षेत्र में शांति–पूर्ण शासन नहीं किया जा सकता। अकबर ने अपनी साम्राज्यवादी महत्वकांक्षा की पूर्ति के लिए हिंदुओं को हिंदुओं के विरुद्ध उपयोग किया और एक केंद्रीयकृत शासन की स्थापना की।

इस वर्ग में भी उच्च वर्ग, मध्यम वर्ग एवं निम्न वर्ग थे। इसके अतिरिक्त साहूकार, कवि, बढ़ई, नाई आदि भी शामिल थे।

4.4.5 नगरों की संरचना

नगरों की संरचना में उसकी सुरक्षा का विशेष ध्यान रखा जाता था। उसके चारों तरफ मजबूत दीवारों का निर्माण किया जाता था। रक्षित महल, गढ़ जो क्षेत्रीय प्रशासन केंद्रों के रूप में भी कार्य करते थे और सैन्य परेडों के लिए खुले मैदान जैसी सैन्य विशेषताएं भी प्रदान करते थे। इनमें विभिन्न सरकारी कार्यालय, कारखाने, बावर्चीखाने, कर्मचारियों के लिए निवास स्थान, खाद्यान्न भंडार, बाजार, मस्जिद, मकबरे, मदरसे, खानखाहे तथा दरगाहें होती थीं। प्रशासनिक केंद्र के पास दुर्ग तथा दुर्ग के आसपास सरकारी अधिकारी अपनी हवेली महल बनवा कर रहते थे।

प्रत्येक शहर में कोतवाल होता था, जो शहर की शांति व सुरक्षा व्यवस्था देखता था। इस कार्य के लिए वह विभिन्न कर्मचारी नियुक्त करता था, जिन्हें 'मुहल्लादार' कहते थे। वह 'मुहल्लादारों' से व्यवस्था की पूरी जानकारी लेता था।

शहरों की सामाजिक संरचना– मध्यकाल की सामाजिक संरचना दो भागों में विभाजित थी।

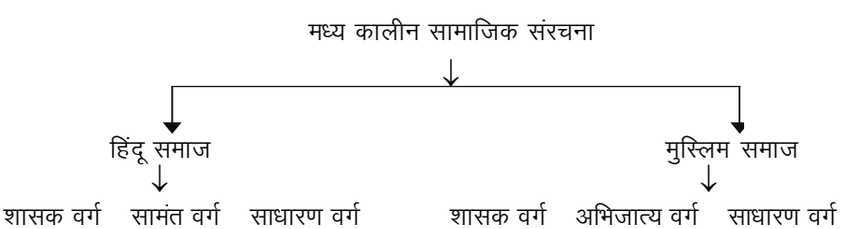

हिंदू समाज– मध्यकालीन समाज विभिन्न जातियों एवं उपजातियों में विभाजित था। मुस्लिम सत्ता की स्थापना से उनके विशेषाधिकारों का अंत हो गया और वे अपने देश में ही पराये हो गये तथा उन्हें अपने घर में रहने का किराया (जजिया) देना पड़ा। तुर्क अफगान शासकों ने उनके ऊपर बहुत अत्याचार किया। मुगल काल में उनकी स्थिति में सुधार आया परंतु उनकी नीतियां स्वार्थ से भरी हुई थी वे जानते थे हिंदू बहुल देश में उनके विरोध के साथ सुदृढ़ केंद्रीय शासन की स्थापना नहीं की जा सकती है।

मुस्लिम समाज– भारतीय राजनीति के इतिहास में इस्लामी आक्रमण ने एक नए शासक वर्ग को स्थापित किया। यह वर्ग प्रभुत्वशाली एवं सत्तासीन था। अतः समाज में भी एक नए वर्ग का उदय हुआ। मुसलमानों में जाति व्यवस्था जैसी प्रथा प्रचलित नहीं थी परंतु भारतीय मुसलमान एवं विदेशी मुसलमान दो वर्ग थे। विदेशी मुसलमान अपने को श्रेष्ठ समझते थे। भारतीय मुसलमानों को घृणा की दृष्टि से देखते थे।

सामाजिक रीति–रिवाज– मध्यकाल में हिंदू और मुस्लिम दो धर्मों और संस्कृतियों का मिलन हुआ। दोनों ही संस्कृतियों में विभिन्नताएं थी, वे एक दूसरे को कभी आत्मसात नहीं कर पाये। उनका रहन सहन, धर्म, संस्कृति, खान–पान तीज त्यौहार सभी में विभिन्नता थी।

मध्यकालीन समाज दो वर्गों में बंटा था– धनी वर्ग एवं जनसाधारण वर्ग। धनी वर्ग में जागीरदार, जमींदार तथा राजकीय संरक्षण प्राप्त अधिकारी आते थे। साधारण वर्ग में किसान, दस्तकार एवं श्रमिक आते थे। बाबर ने अपनी आत्मकथा (तुजुक–ए–बाबरी) में साधारण वर्ग का वर्णन करते हुए लिखा है– "यहां के किसान तथा निम्न वर्ग के लोग लगभग नंगे रहते हैं।" राल्फ फिच ने भी लिखा है– "बनारस में पुरुष कमर में एक छोटे से कपड़े को छोड़कर नंगे रहते थे।"

स्त्रियों की दशा– प्राचीन काल में समाज में स्त्रियों को अत्यधिक सम्मान प्राप्त था। मुस्लिमों के आगमन से उनकी स्थिति में परिवर्तन आ गया। अमीर खुसरो ने उनकी स्थिति का वर्णन करते हुए लिखा है– "स्त्रियों का जीवन नियन्त्रित था। पुत्री के रूप में माता–पिता, पत्नी के रूप में पति और विधवा के रूप में अपने पुत्र के संरक्षण में रहती थी।" इस समय पर्दा प्रथा, बाल–विवाह, विधवा विवाह का निषेध था। बहु–विवाह तथा दहेज प्रथा जैसी कुरीतियां थी। इन्हें अकबर ने दूर करने का प्रयास किया। मुगल काल की स्त्रियां जिन्हें सम्मान प्राप्त था उनमें 'माहम अनगा' बख्तुन्निसा, नूरजहां आदि थीं।

रहन–सहन–आभूषण– अमीर एवं जनसाधारण वर्ग के रहन–सहन एवं पहनावे में भिन्नता थी। उच्च वर्ग के लोग बहुमूल्य वस्त्र एवं सोने चांदी के आभूषण पहनते थे। वहीं साधारण वर्ग धोती, लंगोटी, साड़ी, पहनता था। साधारण वर्ग सामान्य धातुओं के आभूषण पहनते थे।

खानपान– शाकाहारी एवं मांसाहारी दोनों प्रकार का खानपान प्रचलित था। हिंदू सामान्यतः शाकाहारी थे। गेहूं, दाल, चावल, दूध, दही, मक्खन का प्रयोग करते थे। वहीं

टिप्पणी

मुस्लिम मांसाहार में बकरी, मछली, भेड़ आदि के मांस का सेवन भोजन के रूप में करते थे।

बर्तन– गरीब वर्ग मिट्टी के बर्तनों का प्रयोग करते थे। धनिक वर्ग सोने और चांदी के बर्तनों का इस्तेमाल करते थे। तुलनात्मक दृष्टि से मुसलमान स्वच्छता की दृष्टि से हिंदुओं से पिछड़े हुए थे और रसोई के नियमों का कठोरता से पालन नहीं करते थे। हिंदू मुस्लिम दोनों अतिथि सत्कार में विश्वास करते थे।

आमोद प्रमोद– हिंदू समाज में बसंत, रक्षा बंधन, होली, दीपावली, दशहरा आदि त्यौहार धूमधाम से मनाये जाते थे। मनोरंजन के लिए खेलकूद, द्वंद्व–युद्ध, शिकार, पशु–पक्षियों के युद्ध और चौपड़ आदि भी प्रमुख थे। मुसलमान ईद, शब्बेरात और नौरोजे के त्यौहार मनाते थे। संगीत, नृत्य एवं नाटक आदि मनोरंजन के साधन थे।

अर्थव्यवस्था– मध्यकालीन अर्थव्यवस्था में परिवर्तन आया और नवीन नगरों का विकास हुआ। व्यापार जल तथा थल मार्ग दोनों से होता था। आंतरिक एवं बाह्य व्यापार दोनों विकसित थे। धातु उपयोग, वस्त्र उद्योग, कागज, चीनी उद्योग आदि उन्नतिशील अवस्था में थे। सूरत, दिल्ली, आगरा, कालीकट उस समय के प्रमुख व्यापारिक केंद्र थे।

इस प्रकार नगरों की सामाजिक संरचना में अंतर था। प्रारंभ में हिंदू–मुस्लिम के बीच वैमनस्यता थी परंतु कालान्तर में दोनों ने एक–दूसरे के साथ रहना सीख लिया था।

नगरों की प्रकृति एवं वर्गीकरण

विद्वानों ने नगरों की चार श्रेणियां वर्णित की हैं– आगरा, दिल्ली, लाहौर मध्यकालीन महानगरों की श्रेणी में आते थे। वहां से पूरे राज्य का प्रशासन संचालित होता था।

दूसरी श्रेणी में व्यापारिक–वाणिज्यिक नगर आते थे। इन नगरों में व्यापारिक गतिविधियों की प्रधानता रही है। जैसे– पटना, अहमदाबाद, सूरत, भड़ौच, गोवा आदि। बयाना अपनी नील की खेती के लिए प्रसिद्ध था जबकि अवध में खैराबाद और दरियाबाद अपने वस्त्रों के लिए प्रसिद्ध थे।

तृतीय श्रेणी में धार्मिक नगर आते थे। बनारस, मथुरा, अजमेर प्रमुख थे। बनारस एवं मथुरा हिंदुओं की प्राचीन धार्मिक नगरी थी। 'अजमेर' भारत में नवनिर्मित धार्मिक नगर था। मुइनुद्दीन चिश्ती ने इस नगर को अपनी साधना का केंद्र बनाया। कालान्तर में यह मुस्लिमों के धार्मिक नगर के रूप में प्रसिद्ध हो गया।

चतुर्थ श्रेणी में शिल्पकारी से संबंधित नगर थे जिन्हें निर्माण प्रक्रिया में विशेषज्ञता प्राप्त थी। ये अपनी विशेष वस्तु निर्माण तकनीक तथा कला–कौशल अथवा खास किस्म के स्थानीय उत्पादन के लिए प्रसिद्ध था।

सारांश में यह कहा जा सकता है हर नगर अपनी कुछ विशिष्टताओं को समेटे हुए था। ये सारी चीजें भारत को श्रेष्ठ बनाती थीं।

अपनी प्रगति जांचिए

11. 'सिकंदर लोदी' ने किस नगर की स्थापना की है?
    (क) दिल्ली (ख) आगरा
    (ग) लाहौर (घ) अहमदाबाद
12. 'फतेहपुर सीकरी' किसने बसाया?
    (क) बाबर (ख) शाहजहां
    (ग) जहांगीर (घ) अकबर
13. 'आइने अकबरी' में कस्बों की संख्या वर्णित है?
    (क) 1800 (ख) 2200
    (ग) 3200 (घ) 1000
14. 'आगरा' था?
    (क) प्रशासनिक नगर (ख) धार्मिक नगर
    (ग) व्यापारिक नगर (घ) शिल्प नगर
15. अकबर के समय प्रांतों की संख्या थी?
    (क) 15 (ख) 20
    (ग) 18 (घ) 16

4.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (ग)
2. (क)
3. (क)
4. (क)
5. (ग)
6. (क)
7. (ख)
8. (घ)
9. (ग)
10. (ख)
11. (ख)
12. (घ)

13. (ग)
14. (क)
15. (ग)

4.6 सारांश

भारत की आर्थिक समृद्धि का स्तंभ उसका व्यापार रहा। जो प्राचीन काल से ही उन्नत था। मध्य काल में व्यापारिक प्रतिष्ठा स्थापित रही। तत्कालीन शासकों के द्वारा भी इसके प्रयास में कमी नहीं की गई। व्यापार के आयात–निर्यात ने आवश्यकताओं की वस्तुओं की पूर्ति की। मुस्लिम काल में अत्यंत तनाव, युद्ध संघर्ष एवं अवसाद का वातावरण था फिर भी व्यापार गतिमान स्थिति में था।

आर्थिक समृद्धि ताकत और कमजोरी दोनों का प्रतीक है। अरब व्यापारियों के आगमन के साथ औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप यूरोपियन्स भी पूर्व से व्यापार करने के लिए आतुर हो उठे। पुर्तगाली, डच अंग्रेज, फ्रांसिसी व्यापारी अपनी व्यापारिक महत्वकांक्षाओं को पूरा करने हेतु भारत की धरती पर कदम रखने लगे।

मध्य काल का अंतिम समय व्यापारिक वृद्धि का था, या उसके अवनति का काल, यह एक विचारणीय प्रश्न है। यूरोपीय कंपनियों की प्रतिस्पर्धा ने तथा भारत की आर्थिक समृद्धि कमजोर शासकों के हाथों में निहित होने के कारण भारत शीघ्र ही दासता की जंजीरों में बांध दिया गया और भारत की 'स्वर्णिम' विरासत बिखर कर रह गई।

धन पर आधारित अर्थव्यवस्था जिसका प्रमुख स्तंभ 'मुद्रा प्रणाली' थी इसका विस्तार मध्य काल में हुआ। वाणिज्यिक गतिविधियों को गति देने वाले तत्व हुंडी, बीमा, बैंकिंग उस समय अस्तित्व में थे। इन विशेषताओं से युक्त भारतीय व्यापार में पूंजी का अभाव था जिसका प्रमुख कारण भारतीयों की भोग की प्रकृति का न होना था अतः व्यापारिक उत्पादन भी अपेक्षाकृत कम था।

भारतीय उत्पादन प्रणाली उन्नतिशील तो थी परंतु तकनीकी विकास से बहुत दूर थी। इसका परिणाम यह हुआ कि शीघ्र ही इस व्यवस्था पर यूरोपीय व्यवस्था के बादल मंडराने लगे और शीघ्र ही काले बादलों ने इसे घेर लिया।

मध्यकालीन भारत में मुस्लिमों के आगमन से नगरीकरण की प्रक्रिया तेज हुई जिसका प्रमुख कारण जनसंख्या वृद्धि थी। जनसंख्या वृद्धि ने वस्तुओं की मांग में वृद्धि की जिससे उत्पादन क्षमता में बढ़ोत्तरी हुई। इसमें योगदान तात्कालीन शासकों का भी था जिन्होंने सुदृढ़ केंद्रीय शासन की स्थापना कर व्यापार को बढ़ावा दिया। नये नगरों की स्थापना के साथ उनकी सामाजिक संरचना में भी बदलाव आया और हिंदू एवं मुस्लिम दो वर्गों में समाज विभक्त हो गया। जिनके धर्म, संस्कृति, रीति–रिवाज एक–दूसरे से भिन्न थे। मुगलकाल तक आते–आते दोनों ही वर्गों ने एक–दूसरे के साथ मिलकर रहना सीख लिया।

4.7 मुख्य शब्दावली

- **समृद्धि** : खुशहाली
- **काफिला** : समूह
- **वितरित** : बांटना
- **प्रोत्साहन** : बढ़ावा देना
- **सौदागर** : व्यापारी
- **आकांक्षा** : इच्छा
- **परास्त** : हारना
- **दासता** : गुलामी
- **हुंडी** : चिट्ठीनुमा पत्र
- **गुमाश्ते** : एजेंट
- **प्रतिस्पर्धा** : मुकाबला, प्रतियोगिता
- **समतुल्य** : समान
- **श्रमिक** : मजदूर

4.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. अरब व्यापारी की विशेषताएं बताइए।
2. पुर्तगाली व्यापारियों की सफलता का एक उदाहरण दीजिए।
3. बैंकिंग प्रणाली के लाभ बताइए।
4. बीमा व्यवस्था के लाभों का वर्णन कीजिए।
5. सल्तनत कालीन सिक्कों का विवरण दीजिए।
6. हुंडी के महत्व पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
7. मध्यकालीन भारत में 'जनांकिकी परिवर्तन' को अपने शब्दों में वर्णन कीजिए।
8. नगरीय समुदाय से क्या तात्पर्य है? समझाइए।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. मुगलकालीन आंतरिक एवं बाह्य व्यापार का विश्लेषण कर व्याख्या कीजिए।
2. मध्यकाल में व्यापारिक संरचना की व्याख्या कीजिए।
3. जलमार्गों द्वारा व्यापार की विस्तृत व्याख्या कीजिए।
4. भारत में आने वाले व्यापारियों का परिचय देकर उनके भारत से व्यापारिक संबंधों का विश्लेषण कर व्याख्या कीजिए।

5. मध्य कालीन विनिमय के साधन कौन–कौन से थे? विवेचना कीजिए।
6. मध्य काल की मुद्रा एवं बैंकिंग प्रणाली का विश्लेषण कीजिए।
7. सल्तनत कालीन और मुगलकालीन सिक्कों में क्या विशेषताएं थी? विवेचना कीजिए।
8. मध्यकालीन भारत में नगरों के विकास की प्रक्रिया पर निबंध लिखिए।
9. मुगल कालीन प्रशासनिक व्यवस्था को समझाइए।
10. मध्यकालीन नगरीय समुदायों का विश्लेषणात्मक वर्णन कीजिए।

4.9 सहायक पाठ्य सामग्री

1. चंद्र सतीश, मध्यकालीन भारत, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली–1990
2. चंद्र सतीश, मध्यकालीन भारत में इतिहास लेखन : धर्म और राज्य का स्वरूप ग्रंथ शिल्पी दिल्ली 1999
3. राधेशरण, इतिहास और इतिहास लेखन, मध्य प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी भोपाल 2003
4. वर्मा हरिचंद्र, मध्यकालीन भारत खण्ड–1 एवं 2 हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय 1993
5. श्रीवास्तव बी.के. इतिहास लेखन अवधारणा, विधाएं एवं साधन, साहित्य भवन पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स प्रा.लि. आगरा 2005
6. 'इतिहास लेखन धारणाएं तथा पद्धतियां' लक्ष्मीनारायण अग्रवाल आगरा
7. वरे– डॉ. एस.एल. इतिहास लेखन की अवधारणा कैलास पुस्तक सदन भोपाल
8. बुद्ध प्रकाश– इतिहास लेखन की अवधारणा हिंदी समिति प्रयाग
9. लाल के.एस. खिलजी वंश का इतिहास विश्व प्रकाशन दिल्ली
10. जैन डॉ. राजीव– भारत का इतिहास कैलास पुस्तक सदन भोपाल
11. वार्डर ए.के. भारतीय इतिहास लेखन की भूमिका हरियाणा साहित्य अकादमी चंडीगढ़
12. जैन संजीत– पूर्व एवं उत्तर मध्यकालीन भारत का आर्थिक एवं राजनीतिक इतिहास कैलाश पुस्तक सदन भोपाल

इकाई 5 उद्योग और उत्पादन तकनीक एवं अठारहवीं शताब्दी

संरचना

5.0 परिचय
5.1 उद्देश्य
5.2 मध्यकालीन उद्योग और उत्पादन तकनीक
  5.2.1 मध्यकालीन वस्त्र उद्योग
  5.2.2 कृषि उद्योग
  5.2.3 धातु–कर्म तकनीकी
  5.2.4 दस्तकारी
  5.2.5 मध्य काल में व्यापारिक समूह और उत्पादन में उनकी भूमिका
5.3 अठारहवीं शताब्दी की व्याख्या
  5.3.1 अठारहवीं शताब्दी का सामान्य चित्रण
  5.3.2 अठारहवीं शताब्दी में सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक स्थिति
  5.3.3 अठारहवीं शताब्दी के चित्रण के कारण और परिणाम
5.4 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
5.5 सारांश
5.6 मुख्य शब्दावली
5.7 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
5.8 सहायक पाठ्य सामग्री

5.0 परिचय

मध्यकालीन आर्थिक ढांचा उसके व्यापार एवं वाणिज्य पर आधारित था। व्यापार उन्नति की निर्भरता उसकी उत्पादन तकनीक से संबंधित है। कृषि व्यवस्था का आधार जितना मजबूत होगा, उत्पादन प्रणाली की क्षमता उतनी ही अधिक होगी। ये सभी तत्व व्यापार वाणिज्य की वृद्धि में सहायक होते हैं।

आर्थिक संरक्षण में मध्यकालीन शासकों का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है जिन्होंने आर्थिक श्रृंखला की शुरुआत की। ग्राम समुदाय से लेकर व्यापारिक नगरों तक सुव्यवस्थित शासन प्रणाली थी। धातु उद्योग भी उन्नतशील थे। इन सभी में व्यापारिक समूह की भूमिका मुख्य थी जो ग्रामीण कृषि व्यवस्था को शहरी अर्थव्यवस्था से जोड़ने वाली कड़ी के रूप में कार्य करते थे। अन्यथा प्राचीन अर्थव्यवस्था लाभ पर आधारित न होकर सीमित उपभोग से संबंधित थी। मध्यकाल में इसमें बदलाव आया और कृषि उत्पादन से लेकर औद्योगिक तकनीकों का विस्तार संभव हो पाया।

प्रस्तुत इकाई में इन पहलुओं का अध्ययन विस्तार से किया जायेगा।

5.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- मध्यकालीन उद्योग और उत्पादन तकनीक से अवगत हो पाएंगे;

टिप्पणी

- मध्यकालीन वस्त्र उद्योग की जानकारी प्राप्त कर पाएंगे;
- मध्यकालीन व्यापारिक समूह और उत्पादन में उनकी भूमिका के महत्व को समझ पाएंगे।
- अठारहवीं शताब्दी के भारत की स्थितियों को समझ पाएंगे;
- अठारहवीं शताब्दी की सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक स्थिति का विवेचन कर पाएंगे;
- इतिहास के रंग–मंच पर अंग्रेजों की राजनीतिक भूमिका को समझ पाएंगे;
- अठारहवीं शताब्दी के इतिहास से संबंधित तथ्यों से अवगत हो पाएंगे।

5.2 मध्यकालीन उद्योग और उत्पादन तकनीक

मध्यकाल में कृषि तथा उद्योग के स्वरूप में उल्लेखनीय परिवर्तन आया। सुल्तान, अमीर अधिकारी, सैनिक सभी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ होने के कारण विलासितापूर्ण जीवन व्यतीत करने लगे। आवश्यकताओं ने नये–नये उद्योग धंधों को जन्म दिया तथा कुटीर उद्योगों एवं कृषि गृह उद्योगों का स्वरूप विकसित होने लगा।

डॉ. ईश्वरी प्रसाद ने लिखा है– "राज्य वस्तुओं के अधिक से अधिक उत्पादन के लिए विशेष प्रयत्न करता था। उसकी ओर से स्थान–स्थान पर कारखाने खोले गये थे, जहां बहुमूल्य वस्तुएं बनायी जाती थीं। लाहौर, आगरा, फतेहपुर सीकरी तथा अहमदाबाद कारखानों के लिए प्रसिद्ध थे।"

उद्योगों के प्रकार– उद्योग मुख्यतः दो प्रकार के होते थे– (1) राज्य द्वारा संचालित (2) निजी स्वामित्व द्वारा संचालित। शम्से सिराज अफीफ ने अपने ग्रंथ 'तारीख–ए–फिरोजशाही' में लिखा है– "सुल्तान के पास 36 कारखाने थे और उसने वस्तुओं का संग्रह करने के लिए पर्याप्त प्रयास किया।" कारखाने का सर्वोच्च अधिकारी 'मुतसरिफ' 'खान' अथवा 'मलिक' होता था। 'आइने–अकबरी' में भी 36 कारखानों का उल्लेख है। अकबर के शासन काल में उद्योगों का अत्यधिक विकास हुआ। 'बर्नियर' द्वारा भी वर्णन किया गया है– "किलों के अंदर अनेक स्थानों पर बड़े–बड़े कमरे हैं जो कि कारखाना अथवा कारीगरों की उद्योगशाला कहे जाते हैं।"

इस प्रकार मध्य काल में अनेक उद्योग संचालित थे–

(1) **चीनी उद्योग**– पूरे भारत में गन्ने की खेती अच्छी होने के कारण, चीनी उद्योग विकसित अवस्था में था। 'बर्नियर' मैनरिक ने दिल्ली व आगरा में अनेक मिठाइयों की दुकानों का वर्णन किया है 'बंगाल' चीनी उद्योग के लिए जाना जाता था। यहां से चीनी निर्यात की जाती थी।

(2) **धातु उद्योग**– अबुल फजल ने लिखा है– "भारतीय विभिन्न धातुओं व मिश्रित धातुओं से वस्तुओं के निर्माण में सिद्धहस्त थे।" आयुध निर्माण पंजाब व गुजरात में होता था। सोमनाथ तलवारों के लिए प्रसिद्ध था।

टिप्पणी

(3) पत्थर व ईंट उद्योग– "मध्य काल में बनी सुंदर इमारतें भारत के कलाकारों की दक्षता को प्रकट करती हैं। अमीर खुसरो ने लिखा है दिल्ली के पत्थर काटने वाले समस्त मुस्लिम देशों के संगतराशों की तुलना में श्रेष्ठ थे।"

अलाउद्दीन खिलजी के यहां 70,000 शिल्पकार व मजदूर कार्य करते थे। फिरोजशाह तुगलक ने लगभग 4,000 दासों को शिल्पकारी सीखने में लगाया था। बाबर ने भी भारत के कारीगरों की बड़ी संख्या का वर्णन किया है। मुस्लिम शासकों के अलावा हिंदू राजाओं ने भी भवन निर्माण कला को प्रोत्साहन दिया।

(4) कागज उद्योग– कागज का प्रयोग प्रशासन में एवं पुस्तकों की प्रतिलिपि तैयार करने में होता था। मुगल काल में 'सियालकोट, कश्मीर व गया में कागज का निर्माण होता था। अमीर खुसरो 'शामी कागज' का उल्लेख करता है। बंगाल में पेड़ की छाल से चमकदार कागज बनाया जाता था।

(5) चमड़ा उद्योग– इस कार्य के लिए एक विशिष्ट जाति को दक्षता प्राप्त थी। चमड़े से जूते, तलवार की म्यानें, मश्क, वस्त्र आदि का निर्माण किया जाता था। 'गुजरात' से चमड़े के वस्त्र अरब देशों को निर्यात किये जाते थे। यहां पर चमड़े की चटाई पर पशु–पक्षियों के चित्रों की कढ़ाई की जाती थी।

(6) रंगाई उद्योग– मध्यकाल में रंगाई उद्योग प्रचलन में था। यहां लोग रंगीन वस्त्र पहनते थे। 'एडवर्ड टेरी' ने भी भारत में रंगीन वस्त्रों के उपयोग का वर्णन किया है। इसके लिए 'मछलीपट्टम' प्रसिद्ध था। एडवर्ड टेरी ने रंगाई के काम की प्रशंसा करते हुए लिखा है– "वस्त्र पर छपाई का कार्य इतना सुंदर होता था कि वह धुल नहीं सकता था।"

(7) कृत्रिम आभूषण उद्योग– हाथी दांत तथा मूंगे के आभूषण बनते थे। गुजरात से मूंगों का निर्यात होता था। फतेहपुर सीकरी, बरार, बिहार में कांच के कारखाने थे।

(8) इत्र उद्योग– इत्र तथा सुगंधित तेल का प्रचलन था। कन्नौज, जौनपुर तथा गाजीपुर इत्र के लिए प्रसिद्ध थे। जौनपुर एवं गुजरात में सुगंधित तेल बनाया जाता था। दिल्ली के गुलाब जल की शाही दरबार में बहुत मांग थी। नूरजहां की मां अस्मत बेगम ने इत्र बनाने की विधि का आविष्कार किया था।

(9) मदिरा उद्योग– प्राचीन काल से मदिरा व नशीली वस्तुओं का प्रयोग होने के कारण अनेक प्रकार की मदिरा व नशीली वस्तुओं का चलन था। शक्कर, जौ, चावल तथा महुआ से शराब बनाई जाती थी। 'गंगा–यमुना दोआब के कलार शराब बनाने के लिए प्रसिद्ध थे।

(10) लकड़ी उद्योग– लकड़ी का कार्य देश के भिन्न–भिन्न भागों में किया जाता था।

(11) जहाज निर्माण उद्योग– 'आइन–ए–अकबरी' के अनुसार जहाज तथा नौका निर्माण का कार्य भी मुगलकाल में होने लगा। 'कालीकट' जहाज निर्माण का प्रमुख केंद्र था। भारत में यह कार्य उन्नत अवस्था में नहीं था। फिर भी भारत के व्यापारियों ने उन्नत किस्म के जहाज बनाने का प्रयत्न किया।

टिप्पणी

इसके अतिरिक्त नमक, जूट, केसर, अफीम नील उत्पादन तथा बारूद बनाने के उद्योग थे। मध्य कालीन उद्योग एवं व्यापार उन्नत अवस्था में था। जिस कारण से भारत के व्यापारिक संबंध आंतरिक एवं बाह्य रूप से अत्यधिक मजबूत थे। इस बात का अवलोकन हमें तत्कालीन शासकों के ऐश्वर्य एवं विलासपूर्ण जीवनशैली से प्रतीत होता है।

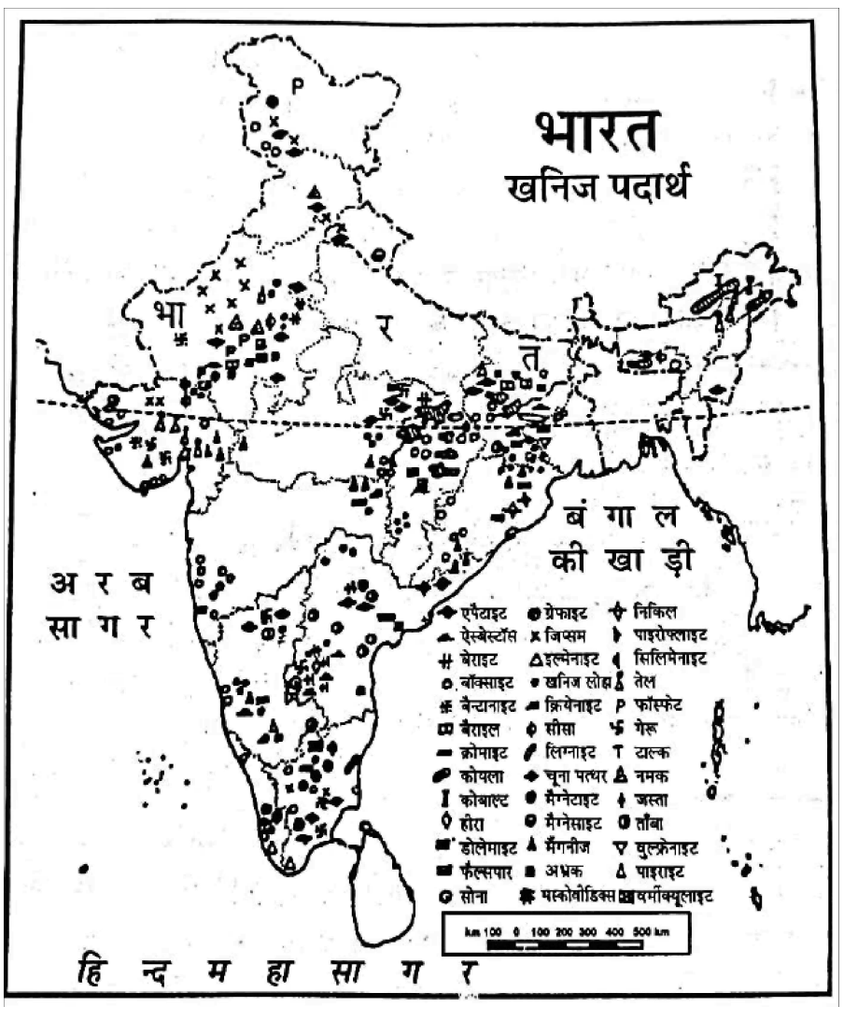

उत्पादन तकनीक– मध्य काल में अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में तकनीकी का विकास हुआ, जिससे उत्पादन क्षमता में वृद्धि हुई। 'रहट' का वर्णन बाबरनामा में मिलता है जिसका उपयोग सिंचाई के लिए किया जाता था। वस्त्र उद्योग में यांत्रिक उपकरण 'चरखे' का महत्व रहा। इसका वर्णन इमामी की फतूह–उस–सलातीन में मिलता है। रेशम के कीड़े, सिक्कों का निर्माण, कागज निर्माण की तकनीकी का भी विकास हुआ। फिरोज तुगलक द्वारा समय सूचक उपकरणों का आविष्कार किया गया।

मुगलकाल में तकनीकी के विकास के परिणामस्वरूप 'जहाज निर्माण' की शुरुआत हुई। बंगाल में नौसैनिक अड्डे की स्थापना हुई, सिंध, इलाहाबाद, लाहौर में जहाज निर्माण का कार्य होता था। समुद्र में अपनी यात्रा के कष्ट को कम करने के

लिए भारतीय नाविकों ने 'नौसंचालन मानचित्रकारी' (Cartograph) की खोज की। 15वीं शताब्दी में गुजरात, मालवा तथा दक्कन जैसे प्रदेशों में आग्नेय अस्त्रों का इस्तेमाल किया गया। भारत में पहली बार तोपों का प्रयोग पुर्तगालियों ने शुरू किया परंतु इस तकनीक का प्रयोग मुगल शासकों द्वारा भी किया गया। इसका उदाहरण गोलाकुण्डा के किले में रखी हुई औरंगजेब की फतेहरहब तोप एवं 'मालिका–ए मैदान की तोपों के रूप में मिलते हैं। भवन निर्माण में 'नक्शा' बनाने की शुरुआत हुई जिसे 'खाका' कहा जाता था। अनाज पीसने के लिए अहमदाबाद में पवन चक्की लगाई गई। अबुल फजल के अनुसार पानी को ठंडा करने में 'शोरे' का उपयोग होता था। नूरजहां की मां 'अस्मत बेगम' ने इत्र बनाने की विधि का आविष्कार किया।

इस प्रकार मध्यकाल में तकनीकी विस्तार हुआ परंतु यह इतना विकसित नहीं हुआ कि यूरोपीय तकनीकी का सामना कर सके। कालान्तर में यूरोपीय तकनीक भारतीय व्यापार एवं वाणिज्य पर हावी होती गई और भारतीय व्यापार लगभग पतनोन्मुख अवस्था में पहुंच गया।

5.2.1 मध्यकालीन वस्त्र उद्योग

कपड़ा उत्पादन भारत का सबसे बड़ा उद्योग था और प्राचीन काल से चला आ रहा था। इसमें सूती कपड़े, ऊनी कपड़े एवं रेशमी कपड़े का उतपादन शामिल था। सूती कपड़े को दो श्रेणियों में बांटा जा सकता था– मोटा (कमीन), पतला (महीन)। मोटा कपड़ा जिसे 'पट' भी कहा जाता था, गरीब एवं फकीर पहनते थे। यह अकसर गांवों में घरों में ही बनता था किंतु कुछ क्षेत्रों में इसका व्यावसायिक उत्पादन भी होता था। गुजरात में उत्तम सूती कपड़े का उत्पादन होता था। बारबोसा उल्लेख करता है कि कैम्बे मखमल, साटन, ताफता अथवा मोटी दरी के कई सस्ते प्रकारों के अतिरिक्त सभी प्रकार के महीन एवं मोटे सूती कपड़े के उत्पादन का केंद्र था।

बंगाल कपड़ा बुनने का महत्वपूर्ण केंद्र था। गुजरात भी महत्वपूर्ण केंद्र था 'यहां का रेशमी कपड़ा भी प्रसिद्ध था। अलाउद्दीन खिलजी ने बाजार नियंत्रण करते समय उसमें एकाधिकार स्थापित कर लिया था। बंगाल में रेशम के कीड़े पाले जाते थे तथा बाहर से भी आयात किया जाता था। इसके अतिरिक्त जरी, कढ़ाई, छपाई–रंगाई उद्योग भी भारत के हर हिस्से में संचालित थे। उत्तम प्रकार के कपड़ों में 'तस्वीह' तबरेजी, सुनहरे काम के कपड़े, देहली खज, कमरब्बाब शुशतारी, हरीरी आदि थे। दिल्ली कपड़े की प्रसिद्ध मंडी थी। इब्नबतूता मसलिन कपड़े का मूल्य 100 टका बताता है।

अमीर खुसरो ने खजाइनुल फूतूह में दिल्ली में दारुल अदल में प्रत्येक प्रकार के कपड़े मिलने का उल्लेख करता है। बंदरगाह होने के कारण 'गुजरात' व बंगाल से सबसे अधिक वस्त्रों का निर्यात होता था। खम्भात का रेशमी वस्त्र, बंगाल की मलमल, जरी के काम की टोपियां तथा रेशम के रूमाल काफी प्रसिद्ध थे। इसके अलावा गुजरात पटोला व रेशम के कपड़ों व सोने के तार कढ़ाई के लिए प्रसिद्ध था।

मुगल काल में भी वस्त्र उद्योग उन्नत था। जार्ज फॉस्टर ने लिखा है– संपूर्ण भारत में सर्वाधिक सुंदर कपड़ा 'सोनार गांव' में बनाया जाता था। छींट बुरहानपुर, गोलकुंडा व सिरोज में तैयार की जाती थी। मुगल–काल में आगरा, फतेहपुर सीकरी,

टिप्पणी

अमृतसर, कश्मीर और मुल्तान ऊनी वस्त्रों के लिए प्रसिद्ध थे। मुल्तान में सुंदर फूलदार कालीन बनते थे और कश्मीर ऊनी कालीन तथा रेशमी व ऊनी कालीन तथा रेशमी व ऊनी वस्तुओं के लिए प्रसिद्ध था। पंजाब, उत्तर प्रदेश तथा देश के अन्य भागों में कढ़ाई का काम होता था। सिरोज, बुरहानपुर, अहमदाबाद और आगरा में छपे हुये कपड़े तैयार होते थे। फतेहपुर सीकरी, अलवर और जौनपुर में कालीन बनते थे। स्यालकोट में तंबु बनते थे।

इस समय कताई के लिए 'चर्खे' का उपयोग किया जाता था। एक अन्य अविष्कार 'नद्दाफ या धुनिया' जिससे रूई को बीज से अलग किया जाता था। इन वस्त्र उद्योग में बड़ी संख्या में जुलाहे कार्य करते थे। 1620 में हरिहर (उड़ीसा) में 3000 जुलाहे और 1640 में बनारस और उसके उपनगरों में 7000 जुलाहे थे।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है 'वस्त्र उद्योग' एक बहुत ही रोजगारमुखी व्यवसाय था। भारत के समस्त क्षेत्रों में महिलाएं एवं पुरुष इस क्षेत्र में कार्यरत थे। वस्त्र उद्योग का क्षेत्र केवल भारत तक ही सीमित नहीं था बल्कि उसे अंतर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा प्राप्त थी।

5.2.2 कृषि उद्योग

मध्य काल में उद्योगों के दो प्रकार थे– कृषि पर आधारित उद्योग तथा गैर–कृषि पर आधारित उद्योग। कृषि आधारित उद्योगों में वे उद्योग शामिल थे जो कृषि उत्पादों पर आधारित थे। धान की कुटाई, तेल पेराई, रस्सी बटाई, डलिया बनाना, रेशम के कीड़े पालकर उनसे रेशम निकालना, कपास से बिनौला निकालना, गुड़ एवं शक्कर बनाना, नील बनाना, शोरा बनाना, सूत एवं रेशम की कटाई करना आदि प्रमुख कृषि आधारित उद्योग थे।

मध्य काल में सूती वस्त्र उद्योग सबसे अधिक उन्नत था जिस पर सरकार का पूरा नियंत्रण रहता था और विदेशों में निर्यात किया जाता था। 'भारत में निर्मित' कपड़ों को 'केलीको' कहा जाता था जहांगीर ने अमृतसर में उनी वस्त्रोद्योग को प्रारंभ किया। गुड़ एवं चीनी उद्योग बंगाल, गुजरात एवं पंजाब में संचालित थे। रेशम उद्योग आगरा, लाहौर, दिल्ली, ढाका और बंगाल में विकसित था। रेशमी कपड़ों को 'पटोला' कहा जाता था।

मुगल काल में खाद्य पदार्थों में– गेहूं, चावल, बाजरा और दाल प्रमुख थे। 'आइने–अकबरी' में रबी की 16 फसलों तथा खरीफ की 25 फसलों की जानकारी मिलती है। आगरा के निकट 'बयाना' तथा गुजरात में 'सरखेज' से सर्वोत्तम किस्म की नील पैदा की जाती थी। 'पेलासार्ट' ने इसका वर्णन किया है।

भारत में तम्बाकू 1604 के अंत में पुर्तगालियों द्वारा लायी गई। इस प्रकार तम्बाकू के प्रचलन ने नये उद्योग को जन्म दिया। इसी के साथ कॉफी का भी प्रचलन बढ़ा। मसालों के क्षेत्र में भारत सदैव अग्रणी रहा।

कृषि से संबंधित एक अन्य उद्योग पशुपालन था। कृषि कार्य हेतु किसानों को अनेक प्रकार के पशुओं की आवश्यकता होती थी, जिसके कारण वे पशुपालन करते थे।

टिप्पणी

पशुओं का प्रयोग कृषि एवं दूध के विक्रय के लिए किया जाता था। प्राकृतिक कारणों से कृषि उत्पादन में अस्थिरता की स्थिति के कारण पशुओं का अत्यधिक महत्व था।

प्रस्तुत विवरण से यह स्पष्ट है कि राज्य की आय का प्रमुख स्रोत कृषि था। उससे संबंधित उद्योग पर्याप्त विकसित थे क्योंकि राज्य की ओर से कृषि के उत्थान के लिए समय–समय पर प्रयास किये जाते थे। विपत्ति के समय पर किसानों को आर्थिक सहायता भी दी जाती थी।

5.2.3 धातु–कर्म तकनीकी

भारत में धातुकर्म की बहुत पुरानी परंपरा रही थी, जिसकी पुष्टि मेहरौली (दिल्ली) के लौह–स्तंभ से होती है। यह आज भी अपनी चमक के लिए जाना जाता है। तांबा अथवा मिश्र धातुओं की बनी बहुत सी मूर्तियां भी भारतीय धातुकर्मियों की दक्षता की साक्षी हैं। भारतीय तकनीकों से अलंकृत तलवारें और कटारें भी प्रसिद्ध थीं।

मध्य काल में लोहे को गलाकर शुद्ध करने की तकनीक का विस्तार हो चुका था। इसे इस्पात के रूप में शुद्ध किया जाता था एवं वस्तुओं का निर्माण किया जाता था। राजस्थान, मध्य प्रदेश, मैसूर, आन्ध्र प्रदेश और बिहार की खानों से बड़ी मात्रा में तांबा निकाला जाता था और शुद्ध किया जाता था। तांबा और मिश्र धातु को मिलाकर 'कांसा' बनाया जाता था। कांसे और तांबे के बर्तनों की पश्चिम एशिया में स्थायी मांग रहती थी।

ढलाई– मध्य काल में धातु को पिघलाकर मूर्ति बनाने का काम भी होता था। दक्षिण भारत में चोल–राजाओं के समय ठोस ढलाई की मूर्तियां बनाई जाती थीं। 'मानसोल्लास' या अभिलाषितार्थक चिंतामणि जो कर्नाटक के चालुक्य राज्य वंश के शासक सोमेश्वर की कृति है इसमें मूर्ति ढालने की प्रक्रिया का वर्णन है। विजयनगर साम्राज्य में विभिन्न प्रकार की कांस्य वस्तुओं का व्यापार बड़ी उन्नति पर था।

अस्त्रों का निर्माण– 15वीं सदी में गुजरात, मालवा तथा दक्कन जैसे कुछ क्षेत्रों में अस्त्रों के निर्माण की शुरुआत हुई। भारत में पहली बार तोपों का प्रयोग 1526 में बाबर ने किया। दक्षिण भारत में पहली बार तोपों का प्रयोग पुर्तगालियों ने किया। संस्कृत की रचना 'शुक्रनीति' छोटी–बड़ी तोपों एवं बारूद के उपयोग के प्रश्न पर प्रकाश डालती है। गोलकुंडा के किले में रखी औरंगजेब की 'फतेह रब' तोप एवं 'मलिका–ए–मैदान' तोप इसका उदाहरण है। मोहम्मद–बिन हसन रूमी ने 1549 में 'मलिका–ए–मैदान' तोप को बनाया। इसे पंच धातु से बनाया गया है। इसका वजन 55 टन है। अबुल फजल के अनुसार अकबर की आयुध शाला में लोहे की तोपों और बंदूकों के नाल बनाये जाते थे। सोमनाथ की तलवारें प्रसिद्ध थीं।

टिप्पणी

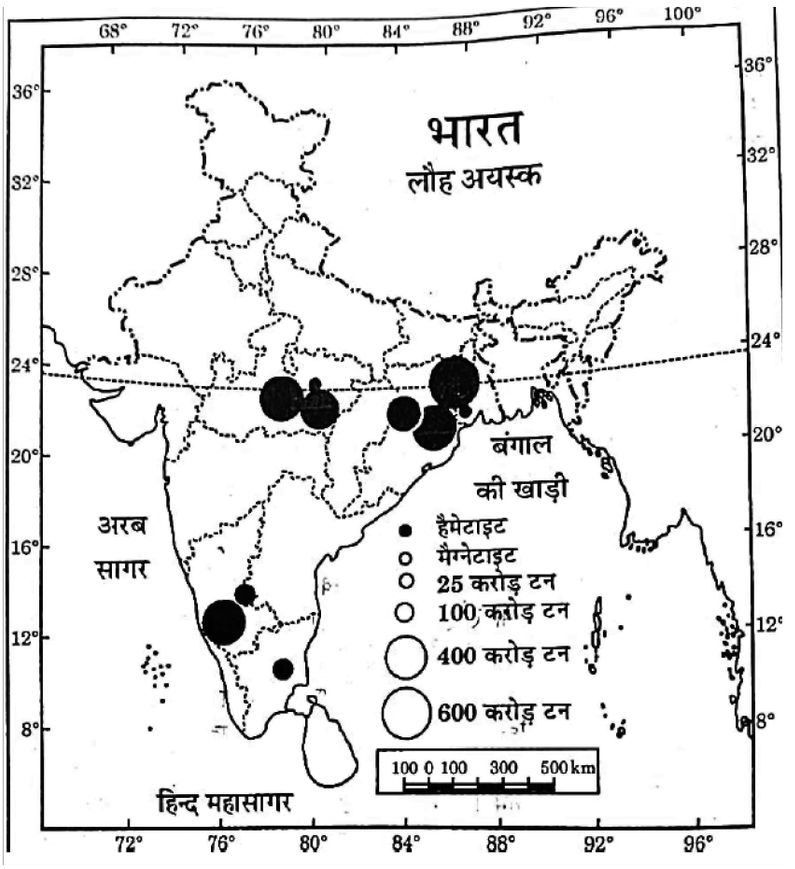

जस्ता– अबुल फजल जस्ता उत्पादन के लिए राजस्थान के जाबर क्षेत्र का वर्णन करता है। 14वीं शताब्दी की एक हस्तलिपी 'रसरत्न समुच्चय' में धातु के रूप में जस्ते का उल्लेख मिलता है। इसका खनन मुख्य रूप से जाबर में होता था 'कर्नल जेम्स टॉड' और स्वयं इस लेखक ने इस स्थान की यात्रा के दौरान पाया कि वहां धातु निकालने का कार्य होता था। वहां जस्ता बनाने की प्रक्रिया के अवशेष और मलबे आज भी प्रभावित करते हैं।

सोना–चांदी– भारत में चांदी मैसूर की कोलार सोने की खानों से संबंधित थी। चांदी की कच्ची धातु 'गैलीना' आजेटिफेरस है। बिहार, उड़ीसा, भागलपुर, सिंघभूमि में चांदी मिलने के प्रमाण मिलते हैं। उत्तरी बर्मा के बाडबिन खदानों की चांदीयुक्त कच्ची धातु का आर्थिक महत्व है।

इसके अतिरिक्त अफगानिस्तान की फरजल खानों, आर्मिनिया की कुछ खानों एवं फारस की सीसा खदानों को भारत के लिए चांदी प्राप्ति का स्थान बताया है। 'कोलार और हुत्ती' की स्वर्ण खानों से सोना कच्चे रूप में निकाला जाता था। फिर इसे परिष्कृत कर सिक्के एवं आभूषण बनाये जाते थे। मध्य काल में सोना चांदी, हीरे जवाहरात सज्जा के साधन थे। इस काल में मीनाकारी का भी कार्य होने लगा। आभूषण निर्माण में भारतीय सुनार अपने श्रेष्ठ उत्पादन के लिए प्रसिद्ध थे जिनकी पुरुष और महिलाओं के बीच सदैव समान रूप से मांग बनी रहती थी। सिक्के भी भारतीय धातुकर्मियों की दक्षता के प्रमाण हैं।

टिप्पणी

इसके अतिरिक्त सस्ते तांबे के बर्तनों में कलई करना जिसके कारण उनका उपयोग खाना पकाने में किया जा सकता था। यूरोपवासी अपने साथ कांच के बने कई तरह के समान लेकर आये जैसे कांच के दर्पण चश्मे और लेंस आदि। रसेन्द्र चूड़ामणि लेखक सामदेव (13वीं शताब्दी) रसायन विज्ञान से संबंधित थे। उन्होंने अनेक यंत्रों का आविष्कार किया। 'रस प्रकाश सुधाकर' लेखक यशोधर के अनुसार इसमें स्वर्ण बनाने की विधि थी। 'रसार्णव' (लेखक अज्ञात) में कच्चे खनिज से शुद्ध धातुओं को प्राप्त करने की विधियां वर्णित हैं। 'रसेन्द्र सार संग्रह' (लेखक गोपाल भट्ट) से धातुओं के शोधन की तकनीक की जानकारी मिलती है। इस प्रकार मध्य काल में धातुकर्म का कार्य पर्याप्त विकसित था।

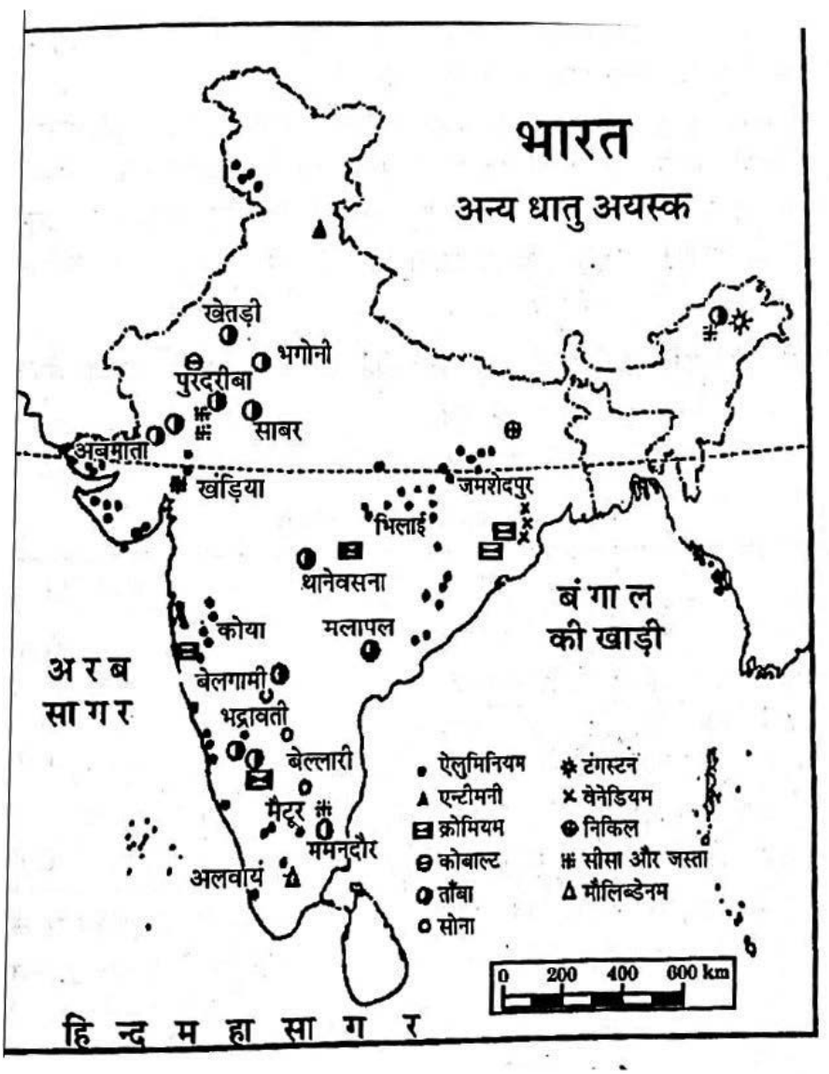

टिप्पणी

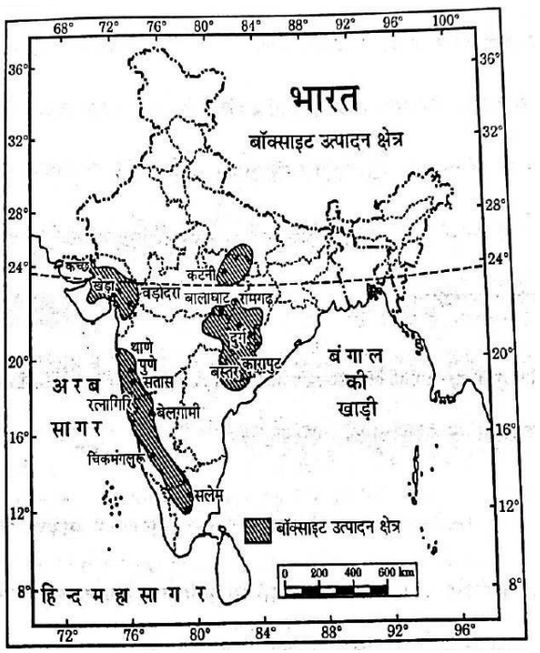

5.2.4 दस्तकारी

गांव और कस्बे दोनों स्थानों पर दस्तकारी के उत्पादन की व्यवस्था होती थी। वहां शाही कारखाने भी होते थे। ग्रामीण क्षेत्रों में कारीगर दैनिक उपयोग की वस्तुएं बनाते थे। ये कारीगर गांव के सामाजिक तंत्र का हिस्सा होते थे। शहरों में रहने वाले कारीगर ऐसी उपयोगी वस्तुओं के केंद्र में होते थे, जिनका उत्पादन बाजारों के लिए किया जाता था। प्रत्येक शिल्प के लिए एक विशिष्ट कारीगर होता था जो बाजार के लिए चीजें निर्मित करता था।

कैलबर्टन– "प्राचीन काल में जब रोम के निजी एवं सार्वजनिक भवनों में भारतीय कपड़ों, दीवारदरी, तामचीनी, मोजेक, हीरे जवाहरात आदि का उपयोग होता था, तब से औद्योगिक क्रांति के प्रारंभ तक उद्दीपक वस्तुओं के लिए सारा संसार भारत का मोहताज रहा।"

ग्रामीण दस्तकारी उद्योग– भारत में दस्तकारी उद्योग अत्यंत ही विकसित रहा है। मिर्जापुर, मेरठ में लाख के खिलौने, मिर्जापुर और बनारस में गलीचा, फिरोजाबाद में कांच की चूडियां, पंजाब, बंगाल में रेशम की बनी वस्तुएं विदेशों में भी निर्यात की जाती थीं।

नगरीय दस्तकारी– नगरों में होने वाली दस्तकारी में मुख्यतः ढांका का मलमल, कश्मीर तथा पंजाब में बनी ऊनी शाल एवं अन्य वस्तुएं प्रचलित थीं। बनारस पीतल व तांबे के कार्य के लिए, राजपूताना का क्षेत्र मीणा युक्त आभूषण तथा पत्थरों पर नक्काशी के लिए प्रसिद्ध था।

मुगल काल में लाहौर, आगरा, फतेहपुर सीकरी, अहमदाबाद, गुजरात आदि में स्थित कार्यशालाएं कारीगरी के अनेक सुंदर नमूने बनाती थीं। बंगाल के सूबेदार 'इस्लाम खां जब राजधानी ढाका ले गया तो वहां उसने अनेक कारखानों का निर्माण करवाया। शाहजहां के काल में कश्मीर और लाहौर का कालीन उद्योग श्रेष्ठता की पराकाष्ठा पर पहुंच गया। ऐसा उल्लेख मिलता है कि दिल्ली के एक कारखाने में 4000

टिप्पणी

से भी अधिक जुलाहे सिल्क का काम करते थे जो शाही हरम की महिलाओं के कपड़ों की आवश्यकता की पूर्ति करते थे।

प्रस्तुत विवरण से यह स्पष्ट होता है कि मध्यकाल में दस्तकारी उद्योग अत्यंत विकसित था। शासक वर्ग भी उनके रखरखाव के प्रति सजग थे तथा हस्तशिल्प कर्मियों को प्रोत्साहन दिया जाता था 'बरनी' ने उल्लेख किया है कि उसने बड़े–बड़े कमरों को देखा जहां हस्तशिल्प, कलाकार अपनी योग्यतानुसार वस्तुओं का निर्माण करते थे। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि कारखानों के साथ–साथ मध्य काल में दस्तकारी शिल्प भी देश की अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करते थे।

5.2.5 मध्य काल में व्यापारिक समूह और उत्पादन में उनकी भूमिका

मध्यकालीन भारत की संपूर्ण कालावधि के दौरान भारत में व्यापारिक समुदाय ने समकालीन अर्थव्यवस्था और समाज में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

व्यापारिक समुदाय– सल्तनत काल के दौरान 'कारवानी या नायक व्यापारी होते थे, जो ग्रामीण क्षेत्रों में अनाज ढोने के विशेषज्ञ थे। बाद में इन्हें बंजारे कहा गया। उत्तर भारत और दक्कन 'बनिया' पंजाब में 'खतरी' और गोलकुंडा में 'कोमाती' ये व्यापार के साथ–साथ ऋण देने का भी काम करते थे। मुगल काल में 'बोहरा' गुजरात, उज्जैन और बुरहानपुर में इनकी संख्या अधिक थी। थोक व्यापारियों को सेठ, मोदी कहा जाता था जबकि खुदरा व्यापारियों को व्यापारी व 'वामिक' कहा जाता था। दक्षिण भारत में चेट्टी व्यापारिक समुदाय था।

बरनी ने व्यापारियों के अन्य वर्ग का भी उल्लेख किया है जिन्हें 'दलाल' कहा जाता था। ये दलाल कमीशन एजेंट होते थे जो खरीदने वाले और बेचने वाले को मिलाने के कार्य के लिए शुल्क लिया करते थे। उनका उदय दिल्ली में व्यापार की वृद्धि का सूचक था। 'नाखुदा' व्यापारी जहाज मालिक के एजेंट होते थे।

दिल्ली के मुस्लिम व्यापारी विदेशी थे। इराकी, ईरानी, खुरासानी थे ऐसा इब्नबतूता कहता है। भारत में सभी विदेशी व्यापारी खुरासानी थे। मुस्लिम व्यापारियों का अन्य समूह अफगानों का था। वे 'कारवां' और घोड़े के व्यापार में माहिर थे। गांवों से शहरों की ओर खाद्यानों तथा अन्य वयापारिक माल को ले जाने का कार्य बंजारे करते थे। वे स्थल मार्ग से घोड़ों, बैलों द्वारा माल लाद कर इधर–उधर पहुंचाते थे। इसके अतिरिक्त बंजारे शाही सेनाओं के अभियानों में भी माल पहुंचाने का कार्य करते थे। अर्थव्यवस्था में व्यापारियों की महत्वपूर्ण भूमिका थी। ओविगंटन ने व्यापारियों का वर्णन करते हुए लिखा है– "अपने माल का प्रदर्शन करने वाले बनिया समूह और अन्य वाणिज्यिक वर्ग की संख्या इतनी अधिक होती थी कि उनके बीच में से होकर निकलना मुश्किल होता था। वे सिर पर गठरी रखे रहते थे तथा वे उधर से गुजरने वालों को माल खरीदने के लिए आवाज लगाते थे।"

प्रमुख व्यापारी– मध्य काल में कुछ व्यापारी वर्ग अत्यधिक धनी थे जिनमें 'विरजी बोहरा' सूरत का एक बहुत धनी व्यापारी था। उसके पास विशाल जहाजी बेड़ा था। सूरत के अब्दुल गफूर और अहमद चैलाबी, गोलकुंडा के 'मीरजुमला' तथा कोरोमंडल तट के मलयचेट्टी, काशी वीरन्ना तथा सुनका राम चेट्टी एवं मध्यम कोटि के व्यापारी

टिप्पणी

वर्ग में 'बालासोर के खेमचंद्र,' हुगली के मथुरादास प्रमुख थे। ये ईस्ट इंडिया के एजेंट के रूप में कार्य करते थे।

17वीं शताब्दी में मारवाड़ी साहूकार हीराचंद साहू बिहार में मानसिंह का सूबेदार था। इसी का पुत्र जगत सेठ, मानिक चंद्र, मुर्शिद कुली खां सूबेदार था। प्लासी के युद्ध का प्रमुख पात्र 'अमीन चंद' पटना टकसाल का मालिक था।

शासकों द्वारा व्यापारियों को संरक्षण

मुहम्मद बिन कासिम ने सिंध विजय के पश्चात व्यापारियों को संरक्षण प्रदान किया। भारतीय शासकों ने भी उन्हें संरक्षित किया। 'अलबरुनी' ने मुस्लिम व्यापारी का कश्मीर के 'राजौरी' तक के व्यापार का वर्णन किया है। कुतुबुद्दीन ऐबक ने व्यापारियों को सभी सुविधायें प्रदान की। इल्तुतमिश के समय विदेशी व्यापारियों का विवरण मिलता है। बलबन ने मेवात के जंगलों को साफ करवाया। यातायात मार्ग की सुरक्षा की दृष्टि से जलालुद्दीन एवं अलाउद्दीन खिलजी ने मुख्य मार्गों को सुरक्षित करवाया। मुहम्मद तुगलक ने व्यापारियों की सुविधा के लिए अनेक करों को समाप्त किया। फिरोज तुगलक ने अनेक नगरों का निर्माण कर व्यापारियों को वहां बसाया। 'लोदी' स्वयं व्यापारी थे। मुगलकाल में अकबर ने आंतरिक व्यापार पर लगने वाले राहदरी शुल्क को समाप्त किया एवं उन्हें 'मुसादात' ऋण उपलब्ध कराया।

इस प्रकार मध्यकाल में भारतीय एवं विदेशी दोनों समुदाय के व्यापारी वर्ग थे। उनकी प्रत्यक्ष भागीदारी से व्यापारिक गतिविधियों में तेजी आई और मध्यकालीन अर्थव्यवस्था को समृद्ध किया।

अपनी प्रगति जांचिए

1. 'आइने–अकबरी' में कारखानों की संख्या कितनी है?
   (क) 20 (ख) 40
   (ग) 36 (घ) 32
2. सोमनाथ में मुख्यतः किसका व्यापार होता था?
   (क) बंदूक (ख) तोप
   (ग) तीर (घ) तलवार
3. 'मलिका–ए–मैदान' तोप का निर्माण किसने किया?
   (क) मोहम्मद बिन हसन रुमी (ख) मीरनुमला
   (ग) अब्दुल गफूर (घ) सुनका राम
4. अकबर के समय तोड़दार बंदूकों का आविष्कार किसने किया?
   (क) टोडरमल (ख) मीर फतहउल्ला भीराजी
   (ग) मानसिंह (घ) मुल्ला दो प्याजा
5. 'विरजी वोहरा' कहां का धनी व्यापारी था।
   (क) बंगाल (ख) सूरत
   (ग) अहमदाबाद (घ) लाहौर

टिप्पणी

5.3 अठारहवीं शताब्दी की व्याख्या

अठारहवीं शताब्दी का चित्रण इस ओर इंगित करता है– 'इतिहास सिर्फ विजेताओं' का होता है, पराजित या असफलता की कोई भूमिका नहीं होती है। प्राचीन काल में हिंदू विजेता थे, मध्यकाल में मुस्लिम विजेता थे, आधुनिक काल के विजेता अंग्रेज थे। इस प्रकार इतिहास लेखन में तत्कालीन विजेताओं की भूमिका स्पष्ट परिलक्षित होती है।'

परंतु अठारहवीं शताब्दी में साम्राज्यवादी एवं मार्क्सवादी लेखकों ने अनेक पूर्वाग्रहों से ग्रसित होकर अपना लेखन कार्य किया है और उन्हीं तथ्यों को उजागर किया है जिसने इतिहास को कलुषित किया है। 'फूट डालो और शासन करो' की नीति से प्रभावित होकर एवं साम्राज्यवादी हितों की रक्षा के उद्देश्य से भारतीय इतिहास को मनमाने ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

इन सभी में केवल विदेशी तत्वों को दोषारोपण करना सही नहीं होगा। कहीं न कहीं हम भारतीयों की कमी भी उजागर होती है। मुट्ठी भर अंग्रेजों ने किस प्रकार अपनी कूटनीति से हिंदुस्तान की दो शक्तियों (हिंदू+मुस्लिम) को पराधीनता की बेड़ियों में जकड़कर गुलामी का मुकुट पहना दिया।

यहां उन समस्त तथ्यों का पुनरावलोकन करने की जरूरत है कि बाहरी शक्तियों ने हमारे ऊपर शासन स्थापित किया तो उसके पीछे विशिष्ट कारण क्या थे?

क्या वर्तमान में हमारा देश उस विचारधारा से बाहर निकल पाया है। सबसे शोचनीय बात यह है कि हिंदी हमारी मातृभाषा है परंतु वर्तमान में शिक्षण संस्थानों में मात्र एक विषय बन कर रह गयी है। इस मानसिकता के साथ हम अपने इतिहास को परिवर्तित कर सकते हैं क्या?

5.3.1 अठारहवीं शताब्दी का सामान्य चित्रण

इस समय भारत अनेक गतिविधियों से गुजर रहा था। 'मुगल साम्राज्य' के पतन के खंडहरों पर अनेक क्षेत्रीय राज्यों की नींव रखी जा रही थी। क्षेत्रीय राज्यों के उदय ने तत्कालीन राजनीति को अनेक भागों में विभाजित कर ईर्ष्या एवं प्रतिस्पर्धा को जन्म दिया। इन लोगों ने पूर्व युग की शक्तिशाली केंद्रीय सत्ता व साम्राज्यवादी आकांक्षाओं को रखने वाले शासकों के बनाये गये साम्राज्य को सुरक्षित रखने में असमर्थता दिखाई। यूरोपीय सत्ता के समक्ष एक के बाद एक सभी क्षेत्रीय शक्तियां धराशायी होती चली गईं। हमारी राजनीतिक शक्तियों की कमजोरी प्रकट होने के साथ यूरोपीय शक्तियों की श्रेष्ठता सिद्ध हो गई।

एक लेखक के अनुसार– "मुगल–साम्राज्य के खण्डों से भारत में विभिन्न स्वतंत्र अथवा अर्द्ध–स्वतंत्र राज्यों का निर्माण हुआ।" (उनमें से कुछ बहुत शक्तिशाली बने, सबसे अधिक शक्तिशाली राज्य का निर्माण मराठों ने किया)। मराठों के अतिरिक्त दक्षिण भारत में 'निजाम–उल–मुल्क' ने हैदराबाद और उसके बाद हैदर अली ने मैसूर में राज्य बनाए। इसी तरह से उत्तरी भारत में, औरंगजेब की मृत्यु के कुछ वर्ष पश्चात ही बंगाल, बिहार और उड़ीसा एवं अवध में स्वतंत्र राज्यों का निर्माण हुआ। अठारहवीं शताब्दी के अंतिम चरण में रणजीत सिंह द्वारा सिक्खों का स्वतंत्र राज्य बनाया जाना,

टिप्पणी

राजस्थान में राजपूतों के स्वतंत्र राज्य व छोटे राज्यों में कर्नाटक, रुहेलखंड, केरल व भरतपुर के राज्य प्रमुख रहे। ये सभी बड़े और छोटे राज्य आंतरिक दुर्बलताओं से ग्रस्त रहे। इनमें से कोई भी भारत को राजनीतिक एवं आर्थिक स्थिरता प्रदान न कर सका। वे न तो स्वयं अपनी और न ही अपने नागरिकों के सम्मान और आर्थिक साधनों की रक्षा कर सके। इस कारण धीरे–धीरे सभी अंग्रेजों से परास्त हुए।

वैभवशाली राजनीतिक एवं आर्थिक परंपरा में कहां क्या कमी रह गयी कि भारतीय शक्तियों ने अपने जीवन के उद्देश्य को सिर्फ एशो–आराम तक सीमित कर लिया और शासक के अपने राज्य के प्रति क्या उत्तरदायित्व होते हैं उनको वे भूल गये। परिणामस्वरूप उनकी इस विचारधारा का विपरीत प्रभाव पड़ा और राजनीतिक अस्थिरता और प्रशासनिक शिथिलता ने राज्य की आर्थिक स्थिति को कमजोर कर दिया।

भारत के सभी पक्षों में यह दुर्बलता स्पष्ट दिखाई देती है। जनसाधारण का शोषण करने वाले वर्गों अंग्रेज, जमींदार आदि में वृद्धि होती गई। प्रश्न यह भी है कि मुगलों की समृद्धशाली परंपरा देश को राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक उत्थान को चर्मोत्कर्ष पर लाई परंतु उत्तरकालीन कोई भी मुगल सम्राट इस परंपरा का निर्वहन करने में सक्षम क्यों नहीं हो पाये?

इतिहासकारों द्वारा 18वीं शताब्दी को अंधकारमय युग के रूप में वर्णित किया गया है। इसका कारण– अव्यवस्था एवं अराजकता का शासन तथा देश प्रेम, राष्ट्रवाद जैसी भावना का अभाव था। कैम्ब्रिज स्कूल के इतिहासकारों ने और उनके समर्थक इतिहासकारों ने 18वीं शताब्दी को अंधकारमय युग कहा है। उन्होंने ब्रिटिश शासन को भारत के लिए वरदान कहा है। जदुनाथ सरकार ने अपनी पुस्तक 'हिस्ट्री ऑफ बंगाल भाग–1 में लिखा है– "23 जून, 1757 को भारत के मध्य युग का अंत हुआ तथा आधुनिक युग का प्रारंभ प्लासी से 'वारेन हेस्टिंग' तक के 20 वर्षों में पश्चिम की नयी गतिशीलता के संपर्क में आने से सभी पुनर्जीवित हो उठे।"

इस प्रकार साम्राज्यवादी, मार्क्सवादी, पश्चिमी पर्यटकों तथा इस विचारधारा के भारतीय समर्थकों ने 18वीं शताब्दी का गलत चित्रण किया है। इसमें परिवर्तन की आवश्यकता है।

5.3.2 अठारहवीं शताब्दी में सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक स्थिति

सामाजिक दृष्टि से भारत में विविधताएं और असमानताएं थीं। आर्थिक आधार पर भारत विभिन्न वर्गों एवं धर्मों में विभक्त था। इसके अतिरिक्त समाज, भाषा, क्षेत्र आदि के आधार पर भी भारतीयों में विभाजन था। भारत का बहुसंख्यक वर्ग हिंदू था जो चार वर्णों के आधार पर ही नहीं सैंकड़ों जातियों में बंटा हुआ था। जाति व्यवस्था कठोर थी और विभिन्न जातियों में पारस्परिक खान–पान और विवाह संबंध संभव नहीं थे। जाति परिवर्तन संभव नहीं था यद्यपि धन और शक्ति प्राप्त करके व्यक्ति समाज में सम्मान अवश्य पा सकता था।

भारतीय समाज का दूसरा महत्वपूर्ण वर्ग मुसलमानों का था। मुसलमान भी धर्म, धन, व्यवसाय आदि के आधार पर विभाजित थे। उनका विभाजन का एक मुख्य आधार विदेशी या भारतीय मुसलमान होना था। विदेशी मुसलमान, भारतीय मुसलमानों से अपने

टिप्पणी

को श्रेष्ठ समझते थे। इस प्रकार भारतीय समाज विभाजित, प्रतिस्पर्धापूर्ण और विभिन्न कुरीतियों से ग्रस्त था।

आर्थिक स्थिति– 18वीं शताब्दी के संदर्भ में इतिहासकारों में मतभेद है। राजनीतिक एकता और स्थायित्व के अभाव में भारत आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से पिछड़ गया जिसके कारण भारत में विदेशी सत्ता स्थापित हो गई। डॉ. सतीशचंद्र ने 1959 ई. में इस धारणा को खंडित करने का प्रयास किया और व्यापारिक उन्नति की बात कही है। उनके अनुसार "भारत में परिवर्तन की सम्भावनाएं थी और उसकी स्थिति आर्थिक दृष्टि से जड़ता की नहीं मानी जा सकती जिसके कारण उसे अंधकारमय सदी माना जा सके। कुछ इतिहासकारों के अनुसार सामंत व्यवस्था पतनोन्मुख थी जिसके कारण आर्थिक विकास के पूंजीवाद के चरण के उदय होने की पूरी संभावना थी। इसके अतिरिक्त सभी इतिहासकार यह स्वीकार करते हैं कि यूरोप–निवासियों के आने से भारत के व्यापार में उन्नति हुई जिसका प्रभाव भारतीय उद्योगों पर भी लाभदायक पड़ा और भारत की आर्थिक स्थिति में उन्नति हुई।"

इस बात को भी नकारा नहीं जा सकता कि अंग्रेजों द्वारा बंगाल को हस्तगत करने के पश्चात वहां आर्थिक शोषण की शुरुआत हुई और वहां भयानक अकाल पड़ा।

सामान्यतः यह कहा जा सकता है कि अठारहवीं शताब्दी में राजनीतिक और आर्थिक परिवर्तन हुए जिनके कारण इस पूरे समय में भारत की आर्थिक स्थिति समान नहीं रही और न ही भारत के सभी क्षेत्रों में समान रही। यह युग आर्थिक क्षेत्र में उतार–चढ़ाव का रहा।

सांस्कृतिक स्थिति– सांस्कृतिक दृष्टिकोण से यह युग उन्नत नहीं था। मध्य काल में शिक्षा, साहित्य और ललित कलाओं को संरक्षण प्रदान करके शासकों ने उन्नति में सहयोग किया। 18वीं शताब्दी में यह संभव नहीं हो सका। धन का उपयोग व्यक्तिगत विलासिता और स्वार्थ पूर्ति के लिए किया गया। इसलिए सांस्कृतिक एवं स्थापत्य की दृष्टि से गिरावट आई।

इस काल में शासक वर्ग की तरफ से शिक्षा व्यवस्था का कोई भी समुचित प्रबंधन नहीं किया गया। इस क्षेत्र में भारत की सबसे बड़ी दुर्बलता विज्ञान और तकनीकी शिक्षा का अभाव था। भारत के किसी भी शासक द्वारा इस ओर ध्यान नहीं दिया गया और यह जानने का प्रयत्न नहीं किया कि विदेशों में क्या तकनीकी परिवर्तन हो रहे हैं। इस कारण भारत आर्थिक रूप से पिछड़ गया। वैज्ञानिक दृष्टिकोण के अभाव में भारत परंपरावादी बने रहे और किसी भी क्षेत्र में नवीन दृष्टिकोण को नहीं अपना सके। जो उनकी अवनति का प्रमुख कारक बना।

इस प्रकार 18वीं शताब्दी में सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक उन्नति का वह रूप दृष्टिगोचर नहीं होता जो उसके पूर्व में था। इसका प्रमुख कारण केंद्रीय सत्ता का अभाव एवं भारतीयों का आधुनिक तकनीकी से दूर होना था।

5.3.3 अठारहवीं शताब्दी के चित्रण के कारण और परिणाम

18वीं शताब्दी का चित्रण अंधकारमय युग के नाम से क्यों किया गया इसमें इतिहासकारों में मतभेद है। इसका क्या कारण हो सकता है? उस समय राष्ट्र के किसी

टिप्पणी

क्षेत्र में विशिष्ट उन्नति का न होना एवं साम्राज्यवादी ताकतों ने उसे अपने दृष्टिकोण से देखा और उसी का वर्णन किया।

हमारा इतिहास सदैव विदेशियों के दृष्टिकोण से ही लिखा गया है। पहले मुस्लिम इतिहासकारों द्वारा फिर आधुनिक समय में मार्क्सवादी एवं साम्राज्यवादी दृष्टिकोण से लिखा गया। इतिहास के हमारे आंतरिक दृष्टिकोणों को एक बाहरी व्यक्ति कभी भी सही रूप में रूपांतरण नहीं कर सकता है।

नालंदा विश्वविद्यालय, तक्षशिला विश्वविद्यालय एवं विक्रमशिला विश्वविद्यालय की लाखों पुस्तकों का क्या हुआ? उसका ज्ञान कहां चला गया? यह एक विचारणीय प्रश्न है। हम कुछ विदेशी एवं विदेशी विचारधारा के समर्थक इतिहासकारों के लिखे गये इतिहास से अपने देश को प्रतिबिंबित नहीं कर सकते हैं। जरूरत है नये शोध और अध्ययन की।

अंग्रेजों के भारत में दो उद्देश्य थे। भारत का शोषण करना एवं असभ्य भारतीयों को सभ्य बनाना। मार्क्स का मानना था मानव का वास्तविक इतिहास साम्यवाद के आगमन से शुरू होता है। उसका मानना था उसके पहले सारी दुनिया पिछड़ी हुई थी। भूमि उत्पादन का मुख्य साधन थी जिस पर सामंत वर्ग का अधिकार था और वे औद्योगिक प्रगति से बहुत दूर थे। व्यापारिक उन्नति सीमित अवस्था में थी। राजा एवं सामंत का प्रयास केवल अपनी सत्ता तक ही सीमित रहता था, प्रगति की ओर नहीं, इस कारण देश का विकास नहीं हो पाया और जनता गरीबी, भुखमरी, अकाल का शिकार हो गई। इस प्रकार मार्क्सवादियों ने केवल साम्यवाद के दृष्टिकोण से 18वीं शताब्दी का चित्रण किया है।

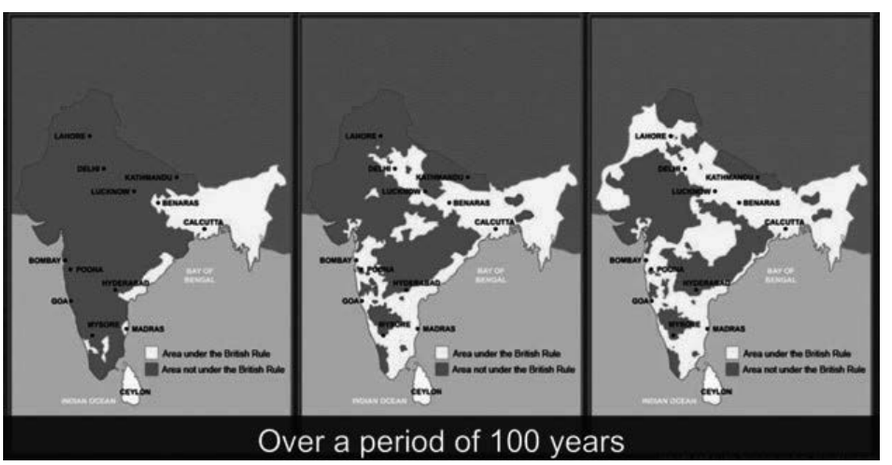

औपनिवेशिक विचारधारा के विद्वानों ने उन्हीं तथ्यों को उजागर किया जिससे ब्रिटिश साम्राज्य को स्थायित्व प्रदान किया जा सके। उनका मानना था भारतीय समाज की जड़ता को ब्रिटिश शासन एवं उसके कानूनों द्वारा तोड़ा जा सकता है। मार्क्सवादी विचारकों ने ब्रिटिश पूर्व भारत को सामंतीय समाज माना है एवं अंग्रेजों के आने के पश्चात उसे पूंजीवादी गति मिली। यूरोपीय इतिहास के लिए ये तथ्य सत्य थे क्योंकि वहां इस प्रकार की गतिविधियां निर्मित हुईं। परंतु भारतीय संदर्भ में यह सच नहीं है। भारतीय सदैव गतिशील रहे, परंपरावादी रहे हैं। उन्होंने अपनी सफलताओं, ज्ञान और

टिप्पणी

अन्य चीजों का प्रदर्शन नहीं किया जो इन विद्वानों के अनुसार 'ठहरे हुये समाज' या गतिहीनता का सूचक था जो सत्यता के निकट नहीं है।

प्राचीन काल से ही हमने भारत को विदेशियों के दृष्टिकोण से देखा है। हेरोडोटस, मेगस्थनीज, फाहयान, हवेनसांग, इंत्सिग आदि, मध्यकाल में अल्बरुनी, इब्नबतूता, बर्नियर, मार्कोपोलो, राल्फ फिच आदि तथा 18वीं शताब्दी के भारत को विदेशों के समक्ष प्रस्तुत करने वाले 'इसाई मिशनरीज' भी थे। वास्तविक स्थिति का अध्ययन क्या ये बाहर से आने वाले पर्यटक कर सकते हैं?

'होल्डन फर्बर विद्वान ने भी इस क्षेत्र में अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है कि भारत, एशिया, अफ्रीका के संदर्भ में जो भी विश्व के समक्ष परोसा गया है वो इन्हीं ईसाई मिशनरीज अथवा कंपनी के कर्मचारियों द्वारा प्रस्तुत किया गया है। 1914 तक पाश्चात विद्वानों की भारत अथवा एशिया के बारे में जानकारी उन्हीं यात्रियों, मिशनरियों, कर्मचारियों, पर्यटकों, व्यापारियों के द्वारा छोड़े गये दस्तावेजों पर टिकी थी। उन्होंने भारत के संदर्भ में विशेष अध्ययन की आवश्यकता को कभी जरूरी नहीं समझा और उसी को आधार मानकर इतिहास को लिखा गया। इस प्रकार भारतीय इतिहास की वास्तविकता और सच्चाई को कभी सही ढंग से प्रस्तुत नहीं किया गया।

जिस प्रकार मध्यकाल तक यूरोपीय परिवेश पिछड़ा हुआ था, यही आकलन विदेशियों ने भारत के संदर्भ में किया है जबकि ऐसा कुछ नहीं रहा है। हमारा देश कभी आक्रान्ता नहीं रहा है और न ही यहां के जनसाधारण वर्ग द्वारा अपने अधिकारों के लिए अपने राजाओं के विरुद्ध क्रांति की गई है। उसका प्रमुख कारण भारत का आर्थिक रूप से समृद्ध होना एवं राजा और प्रजा के बीच 'पितृतुल्य संबंध' होने के उदाहरण हमारे प्राचीन इतिहास में भरे पड़े हैं।

हमारे देश के विकास की गति न तो धीमी थी और न ही तीव्र थी, बल्कि मध्यम थी जो सदैव गतिमान रही है। यह अलग बात है कि औद्योगिक क्रांति की शुरुआत इंग्लैण्ड में हुई और उसके इस दृष्टिकोण को विश्व के समस्त राष्ट्रों द्वारा अपनाया गया। भारत में हमेशा से आर्थिक समृद्धि थी इसलिए उन्होंने तकनीकी विस्तार की तरफ ध्यान नहीं दिया।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात जब भारतीयों का अपना दृष्टिकोण लेखन के क्षेत्र में विकसित हुआ तो अनेक प्रश्न सामने आये। जैसे– भारत वैश्विक गतिविधियों में कभी शामिल क्यों नहीं हुआ? वैज्ञानिक तकनीकी, व्यापारिक प्रतिस्पर्धा, यातायात के साधनों के विस्तार में शामिल क्यों नहीं हुआ? भारत के पिछड़ेपन के क्या कारण थे? जबकि कुछ इतिहासकारों का मानना था अंग्रेजों का आगमन भारत के लिए वरदान की तरह था। उसने उसे अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का हिस्सा बना दिया। परंतु कालान्तर में यह सिद्धांत खोखला साबित हुआ और हम भारतीय पूरी तरह मध्यकाल एवं पाश्चात्य संस्कृति के होके नहीं रह गए और आज भी लट्टू की तरह गोल–घूम रहे हैं कि हमारे लिए सही क्या है?

टिप्पणी

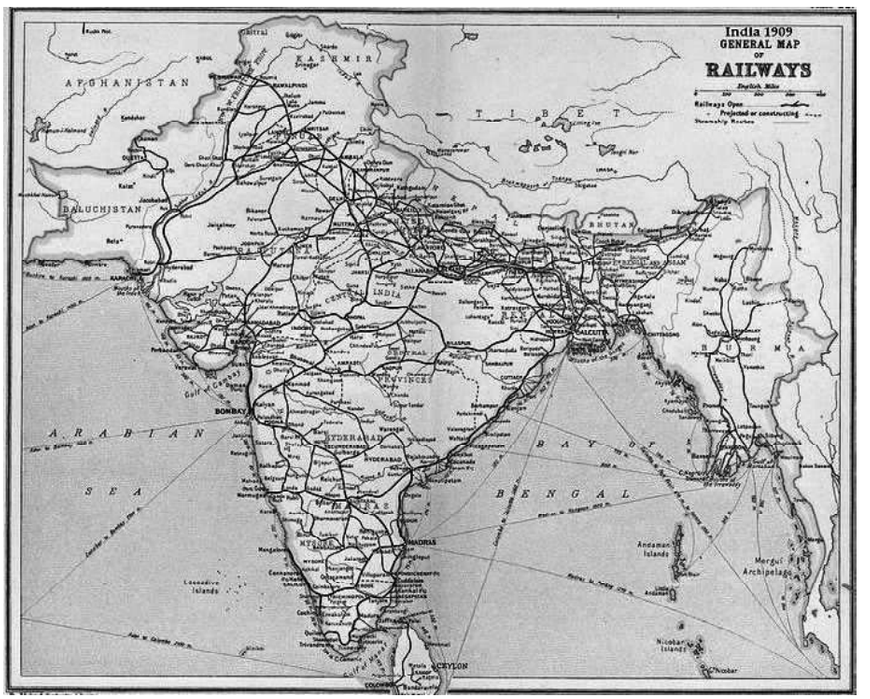

इन सब प्रश्नों के उत्तर खोजना जरूरी है कि भारत विकास की प्रक्रिया में क्यों धीमा रहा? विकास पर चलने का भारत का सही रास्ता क्या हो सकता है? इसकी वजह ढूंढना आवश्यक है एवं मार्क्सवादी औपनिवेशिकवादी दृष्टिकोण से हटकर कुछ नया शोध करना जिसमें 18वीं शताब्दी की वास्तविक व्याख्या भारतीय दृष्टिकोण से की जा सके। मार्क्सवादी अवधारणा वर्ग संघर्ष को इंगित करता है जबकि भारत में कभी भी वर्ग संघर्ष जैसी परिकल्पना थी ही नहीं।

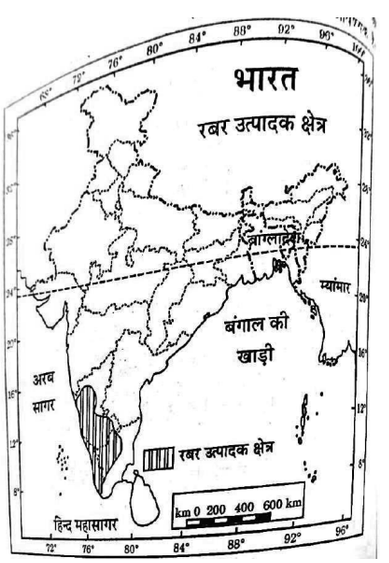

कुछ अन्य तथ्य– अठारहवीं शताब्दी के स्वरूप को समझना अत्यंत ही जरूरी है। पूर्व में विकसित भारत उत्तरवर्ती काल में विकास की गति में शामिल क्यों नहीं हो पाया? के.एन. चौधरी, धर्मपाल, तपन राय चौधरी, ए. दासगुप्ता, एच फर्बर, ओमप्रकाश आदि विद्वानों ने अपनी शोध परिकल्पनाओं से भारत का चित्रण किया है, उनके लिए ऐसा

टिप्पणी

करना नितांत आवश्यक है। यह वर्ग भारत के संदर्भ में नये दृष्टिकोणों को सामने लाने की बात करते हैं।

विकास के आर्थिक सिद्धांतों और धारणाओं के संदर्भ की समीक्षा करें तो स्पष्ट होता है कि समस्त प्रतिफल मार्क्सवादी सिद्धांतों पर आधारित है। जबकि भारत में वर्ग–संघर्ष पूंजीवाद, सामंतवाद या शोषणवादी अवधारणा थी ही नहीं फिर मार्क्सवादी सिद्धांत भारत के संदर्भ में लागू नहीं होते हैं।

धर्मपाल जी ने यूरोपियन अभिलेखागारों में रहकर अंग्रेजों से पूर्व के भारत पर गहन शोध किया गया है "उनका मानना था भारत की अपनी पारंपरिक व्यवस्था रही है और कृषि, शिक्षा, संस्कृति सभी अवस्थाओं में वह यूरोप से बहुत आगे था। इसलिए अंग्रेजों ने उसे सुनियोजित तरीके से तोड़ने का प्रयास किया। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भी हम उनके मानसिक, आर्थिक गुलाम हैं और इस गुलामी में हमें गर्व महसूस होता है। अंग्रेजी बोलने में सभ्यता समझी जाने लगी है और हिंदी बोलने का अर्थ है पिछड़ापन। इससे बड़ा गुलामी का और क्या उदाहरण होगा।" इसाई मिशनरीज द्वारा संचालित संस्थायें अंग्रेजी और पाश्चात्य संस्कार हमारे ऊपर थोप रही हैं और हम उस पर गर्व महसूस कर रहे हैं।

इस सदी में भारत का व्यापार सुरक्षित रहा। भारत का आंतरिक एवं बाह्य व्यापार सुरक्षित रहा और भारत के पक्ष में रहा। यूरोपीय निवासियों के भारत में आने से आरंभ में भारत को विदेशी व्यापार का लाभ था। यद्यपि अंग्रेजों द्वारा अपने सभी यूरोपियन प्रतिद्वंद्वियों को भारत के व्यापार से वंचित कर देने और 1765 ई. में बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी प्राप्त कर लेने से यह लाभप्रदता बनी नहीं रह सकी परंतु यह कहना सत्य नहीं है कि 18वीं शताब्दी में भारत एक निर्धन देश था। के.एन. चौधरी की पुस्तक "ट्रेडिंग वर्ल्ड ऑफ एशिया" में 18वीं शताब्दी की विस्तृत जानकारी मिलती है इसमें भारतीय अर्थव्यवस्था के बारे में फैलाये भ्रामक तत्वों का खंडन किया गया है।

टिप्पणी

इस प्रकार ब्रिटिश पूर्व भारत का जो इतिहास हमारे सामने प्रस्तुत किया गया वह कलुषित मानसिकता का द्योतक है। उन्होंने बिना किसी प्रमाण एवं साक्ष्यों के आधार पर हमारे समक्ष सामग्री को प्रस्तुत कर दिया जो सत्यता के बिल्कुल भी निकट नहीं है और बाद में उन्हीं दस्तावेजों पर भारतीय इतिहास की आधारशिला रखी गई। उन्हीं मनगढंत किस्सों को भारत के अल्पविकसित रह जाने के कारणों का आधार बनाया गया। इस प्रकार एक विकृति दूसरी विकृति का आधार बनती चली गई और सच्चाई की अवहेलना होती रही। केंद्रीय सत्ता की अवधारणा भारत में अधिकांशतः नहीं थी। प्राचीन काल चोल, चेर, पांड्य, सातवाहन मध्यकाल में विजयनगर, बहमनी, अवध, बंगाल, हैदराबाद स्वतंत्र सत्ता की तरह कार्य करते रहे फिर 18वीं शताब्दी के पिछड़ेपन के कारण मुगल सत्ता का पतन होना हो ही नहीं सकता है।

18वीं शताब्दी के संदर्भ में पूर्व प्रचलित अवधारणाओं एवं अनुमानों को समझकर इसकी स्पष्ट व्याख्या करना वर्तमान इतिहासकारों का उत्तरदायित्व है।

अपनी प्रगति जांचिए

6. किस युग को अंधकारमय युग कहा जाता है।
   (क) 16वीं सदी (ख) 17वीं सदी
   (ग) 18वीं सदी (घ) 15वीं सदी
7. 18वीं शताब्दी का हिंदू समाज कितने वर्णों में बंटा था।
   (क) 5 भागों में (ख) 4 भागों में
   (ग) 6 भागों में (घ) 2 भागों में
8. 18वीं शताब्दी में शक्तिशाली हिंदू साम्राज्य किसका था?
   (क) राजपूत राज्य (ख) विजयनगर राज्य
   (ग) मराठा साम्राज्य (घ) होयमल राज्य
9. हैदराबाद का संस्थापक था?
   (क) निजा–उल–मुल्क (ख) अब्दुल कादिर
   (ग) शेख फारुख (घ) मंगबरनी
10. मैसूर राज्य का संस्थापक था?
    (क) टीपू सुल्तान (ख) रणजीत सिंह
    (ग) उस्मान अली खां (घ) हैदर अली

5.4 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (ग) 2. (घ)
3. (क) 4. (ख)
5. (ख) 6. (ग)
7. (ख) 8. (ग)
9. (क) 10. (घ)

टिप्पणी

5.5 सारांश

मध्यकाल में उत्पादन और उद्योग दोनों ही उन्नति पर थे। विभिन्न प्रकार के उद्योग संचालित थे जिससे व्यापार विकसित अवस्था में था। यहां से आयात और निर्यात होता था जिसमें व्यापारिक समुदाय का महत्वपूर्ण योगदान था। अर्थव्यवस्था के मुख्य घटकों में तकनीकी विकास की भूमिका रहती है। धातुकर्म के क्षेत्र में तकनीकी के प्रयोग से कुछ नये उद्योग विकसित हुए। इस प्रकार मध्यकाल में उद्योग, वाणिज्य, व्यापार तकनीकी तथा उत्पादन आदि अच्छी अवस्था में थे। कृषि भी विकसित अवस्था में थी। हमारा देश धन्य–धान्य से परिपूर्ण था। कालान्तर में इसमें नजर लग गई और यूरोपियन्स ने इसे आर्थिक दृष्टि से खोखला कर दिया।

अठारहवीं शताब्दी का चित्रण हमारे समक्ष अनेक प्रश्न खड़े करता है। इस सदी का चित्रण अंधकारमय युग के रूप में किया गया है। हम भारतीयों में इतनी क्षमता नहीं थी कि हम इस विचारधारा का विरोध शक्ति के साथ करते। कुछ बाहरी तत्वों ने यहां आकर सदियों से हमारे वैभव को नष्ट करने का प्रयास किया। इसमें हमारी कमजोरियां ही स्पष्ट रूप से परिलक्षित हुई। 'राष्ट्रवाद सदैव एक विषय रहा है, भावनाएं नहीं बन पाया, शायद यही कारण था विदेशियों द्वारा भारत को गुलाम बनाने का और जो विजेता बनेगा, वह उस पर अपने चिन्ह छोड़ेगा, जिस पर उसने राज किया है।

ऐसा नहीं कि भारत की चेतना, वैज्ञानिकता किसी से कम थी। चंद्रगुप्त मौर्य, चाणक्य, समुद्रगुप्त, चंद्रगुप्त II एवं वराहमिहिर, आर्यभट्ट, चर्वाक जैसी चेतना और वैज्ञानिक परंपरा भारत में रही है। पर हम उस विरासत को आगे नहीं बढ़ा पाये। हमें अपने पतन के कारणों को खोजना होगा। धर्म, जाति सम्प्रदाय के स्थान पर हमें केवल तिरंगे पर टिके रहना होगा तभी हम सार्थक भारतीय इतिहास को अपने आने वाले वंशजों के समक्ष प्रस्तुत कर सकेंगे।

5.6 मुख्य शब्दावली

- **शृंखला** : कड़ी, चेन
- **क्षमता** : शक्ति, ताकत
- **आयुध** : हथियार
- **अवलोकन** : देखना
- **कृत्रिम** : बनावटी
- **टकसाल** : सिक्के आदि ढालने का कारखाना
- **दुर्बलता** : कमजोरी
- **शिथिलता** : थकावट, ढीलापन

5.7 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. मध्यकाल के प्रमुख उद्योग कौन से थे? वर्णन कीजिए।

टिप्पणी

2. उत्पादन तकनीक से आप क्या समझते हैं?
3. मध्यकाल के प्रमुख व्यापारी कौन थे? उल्लेख कीजिए।
4. 18वीं शताब्दी की स्थितियों के कारणों और परिणामों का वर्णन कीजिए।
5. 18वीं शताब्दी की आर्थिक स्थितियां स्पष्ट कीजिए।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. मध्यकाल के उद्योगों का विस्तार से वर्णन कीजिए।
2. कृषि पर आधारित उद्योगों की विवेचना कीजिए।
3. व्यापारिक समुदाय की उत्पादन के क्षेत्र में भूमिका का वर्णन कीजिए।
4. मध्य काल में दस्तकारों की अवस्था का विश्लेषण कीजिए।
5. अठारहवीं शताब्दी का विश्लेषण कीजिए।
6. अठारहवीं शताब्दी को अंधकारमय युग क्यों कहा जाता है? व्याख्या कीजिए।
7. अठारहवीं शताब्दी की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक व्याख्या कीजिए।
8. अठारहवीं शताब्दी के तथ्यों का विवेचन कीजिए।

5.8 सहायक पाठ्य सामग्री

1. चंद्र सतीश, मध्यकालीन भारत, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली–1990
2. चंद्र सतीश, मध्यकालीन भारत में इतिहास लेखन : धर्म और राज्य का स्वरूप ग्रंथ शिल्पी दिल्ली 1999
3. राधेशरण, इतिहास और इतिहास लेखन, मध्य प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी भोपाल 2003
4. वर्मा हरिचंद्र, मध्यकालीन भारत खण्ड–1 एवं 2 हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय 1993
5. श्रीवास्तव बी.के. इतिहास लेखन अवधारणा, विधाएं एवं साधन, साहित्य भवन पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स प्रा.लि. आगरा 2005
6. 'इतिहास लेखन धारणाएं तथा पद्धतियां' लक्ष्मीनारायण अग्रवाल आगरा
7. वरे– डॉ. एस.एल. इतिहास लेखन की अवधारणा कैलास पुस्तक सदन भोपाल
8. बुद्ध प्रकाश– इतिहास लेखन की अवधारणा हिंदी समिति प्रयाग
9. लाल के.एस. खिलजी वंश का इतिहास विश्व प्रकाशन दिल्ली
10. जैन डॉ. राजीव– भारत का इतिहास कैलास पुस्तक सदन भोपाल
11. वार्डर ए.के. भारतीय इतिहास लेखन की भूमिका हरियाणा साहित्य अकादमी चंडीगढ़
12. जैन संजीत– पूर्व एवं उत्तर मध्यकालीन भारत का आर्थिक एवं राजनीतिक इतिहास कैलाश पुस्तक सदन भोपाल